Vrat Katha-Index

Saptahik Vrat Katha-Index

आहोई आष्टमी व्रत

यह व्रत कार्तिक मास की कृष्ण-पक्ष अष्टमी के दिन किया जाता है।इस व्रत की आरोग्यता-प्राप्ती एवं दीर्घजीवी संतान होने के निमित्त किया जाता है।

व्रत-विधान एवं पूजन

इस व्रत को दिन भर निराहार रहकर स्त्रियों-द्वारा किया जाता है। रात्रि मे चंद्रोदय होने के बाद दीवार पर बनी अहोई माता के चित्र के सामने किसी एक लोटे मे जल भरकर रख दे। चाँदी-द्वारा निर्मित चाँदी की स्याऊ की मूर्ति और दो गुडिया रखकर उसे मौली मे गूंधले।तत्पश्चात रोली, अक्षत से उनकी पूजा करे। पूजा करने के बाद दूध-भात, हकवा आदि का उन्हे नैवेद्य अर्पित करे।

तदान्त पहके से रखे जलपूर्ण-पात्र से चन्द्रमा को अधर्यदान करे।इसके अनन्तर हाथ मे गेहूँ के सात दाने रखकर अहोई माता की कथा सुने। कथा श्रवण करने के बाद मौली मे पिरोयी गयी अहोई माता को गले मे पहन ले। अर्पित किये गये नैवेद्य को ब्राह्मण को दान कर दे। यदि ब्राह्मण न हो तो अपनी सास को ही देदे। इसके अनन्तर स्वयं भोजन करे।

प्रत्येक सन्तानोत्पत्ति के पश्चात एक-एक अहोई माता की मूर्ति बनवाकर पूर्व के गूथे हुए मौली मे बढाती जाए। प्रत्येक पुत्रो के विवाहोपरान्त भी इसी प्रकार की क्रिया दुहराये। जब भी गले से अहोई उतारने की आवश्यकता पडे तो किसी शुभ दिन मे उतार कर उन्हे गुड आदि का नेवेद्य देकर जल का आचमन कराकर रख दे। ऐसा करने से सन्तान मे वृद्धि होती है। अहोई अष्टमी -पूजन के बाद ब्राह्मण को कूष्माण्ड दान करने से विशेष फल की प्राप्ती होती है।

सेठ-सेठानी की कथा (१)

किसी नगर मे साहूकार रहता था। उसके सात पुत्र थे। एक दिन साहूकार की पत्नी खदान मे-से खोदकर मिट्टी लाने के लिए गयी। ज्यौं ही उसने मिट्टी खोदने के लिए कुगाल चलाई त्योही उसमे रह-रहे स्याऊ के बच्चे प्रहार से आहत होकर मृत हो गए। जब साहूकार की पत्नी ने स्याऊ को रक्तरंजित देखा तो उसे बच्चो के मर जाने का अत्याधिक दु:ख हुआ। परन्तु जो कुछ होना था वो हो चुका था। यह भूल उससे अनजाने मे हो गयी थी। अत: दु:खी मन से वह घर लौट आई। पश्चात्तप के कारण वह मिट्टी भी नही लाई।

इसके बाद स्याहु जब घर मे आई तो उसने अपने बच्चो को मृतावस्था मे पाया। वह दु:ख से कतार हो अत्यन्त विलाप करने लगी। उसने ईश्वर से प्रार्थना कि, जिसने मेरे बच्चो को मारा है उसे भी त्रिशोक-दु:ख भुगतना पड़े। इधर स्याऊ के श्राप से एक वर्ष के अन्दर ही सेठानी के सातों पुत्र काल-कलवित हो गए। इस प्रकार की दु:खद घटना देखकर सेठ-सेठानी अत्यन्त शोकाकुल हो उठे।

उस दम्पति ने किसी तीर्थ स्थान पर जाकर अपने प्राणो का विर्सजन कर देने का मन मे संकल्प कर लिया। मन मे ऐसा निश्चय कर सेठ-सेठानी घर से पैदल ही तीर्थ की ओर चल पड़े। उन दोनो का शररि पूर्ण रूप से अशक्त न हो गया तब तक वे बराबर आगे बढते रहे। जब वे चलने मे बिल्कुल असमर्थ हो गये,तो रास्ते मे ही मूर्छित हो कर भूमि पर गिर पड़े। उन दोनो की इस दयनीय दशा को देखकर करूणानिधि भगवान् उन पर दयार्द्र हो गये और अकाशवाणी की - 'हे सेठ ! तेरी सेठानी ने मिट्टी खोदते समय अनजाने मे ही सेही के बच्चो को मार डाला था। इस लिऐ तुझे भी अपने बच्चो का कष्ट सहना पड़ा। भगवान् ने आज्ञा दी- अब तुम दोनो अपने घर जाकर गाय की सेवा करो और अहोई आष्टमी आने पर विधि-विधान पूर्वक प्रेम से अहोई माता की पूजा करो। सभी जीवो पर दया भाव रखो, किसी को अहित न करो। यदि् तुम मेरे कहने के अनुसार आचरण करोगे, तो तुम्हे सन्तान सुख प्राप्त हो जायेगा।'

इस आकाशवाणी को सुनकर सेठ-सेठानी को कुछ धैर्य हुआ और वे दोनो भगवाती का सम्रण करते हुए अपने घर को प्रस्थान किये। घर पहुँचकर उन दोनो ने आकाशवाणी के अनुसार कार्य करनइ प्रारम्भ कर दिया। इसके साथ ईर्ष्या-द्वेष की भावना से रहित होकर सबी प्राणियो पर करूणा का भाव रखना प्ररम्भ कर दिया।

भगवत्-कृपा से सेठ-सेठानी पुन: पुत्रवान् होकर सभी सुखो का भोग करने लगे और अन्तकाल मे स्वर्गगामी हुए ।

साहुकार की कथा (२)

एक साहुकार के सात बेटे, सात बहुएँ एंव एक कन्या थी। उसकी बहुँए कार्तिक कृष्ण अष्टमी को अहोई माता के पूजन के लिए जंगल मे अपनी ननद के साथ मिट्‌टी लेने के लिए गयीं। मिट्‌टी निकालने के स्थान पर ही एक स्याहू की माँद थी। मिट्‌टी खोदते समय ननद के हाथ से स्याहू का बच्चा चोट खाकर मर गया। स्याहू की माता बोली, अब मै तेरी कोख बाँधूगी अर्थात अब तुझे मै सन्तान-विहीन कर दूँगी । उसकी बात सुनकर ननद ने अपनी सभी भाभियों से अपने बदले मे कोख बँधा लेने के लिए आग्रह किया, परन्तु उसकी सभी भाभियों ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । परन्तु उसकी छोटी भाभी ने कुछ सोच-समझकर अपनी कोख बँधवाने की स्वीकृति ननद को दे दी ।

तदान्तर उस भाभी को, जो भी सन्तान होती वे सात दिन के बाद ही मर जाती। एक दिन पण्डित को बुलाकर इस बात का पता लगाया गया ।

पण्डित ने कहा तुम काली गाय की पूजा किया करो । काली गाय रिश्ते मे स्याहू की भायली लगती है। वह यदि तेरी कोख छोड़ दे तो बच्चे जिवित रह सकते है। पण्डित की बात सुनकर छोटी बहु ने दुसरे दिन से ही काली गाय की सेवा करना प्रारम्भ कर दिया। वह प्रतिदिन सुबह सवेरे उठकर गाय का गोबर आदि साफ कर देती । गाय ने अपने मन मे सोचा कि, यह कार्य कौन कर रहा है, इसका पता लगाऊँगी। दूसरे दिन गाय माता तड़के उठकर क्या देखती है कि उस स्थान पर साहुकार की एक बहु झाडू बुहारी करके सफाई कर रही है। गऊ माता ने उस बहु से पूछा कि तू किस लिए मेरी इतनी सेवा कर रही है और वह उससे क्या चाहती है? जो कुछ तेरी इच्छा हो वह मुझ से माँग ले । साहुकार की बहु ने कहा - स्याहू माता ने मेरी कोख बाँध दी है जिससे मेरे बच्चे नही बचते है । यदि आप मेरी कोख खुलवा दे तो मै अपका बहुत उपकार मानूँगी । गाय माता ने उसकी बात मान ली और उससे साथ लेकर सात समुद्र पार स्याहू माता के पास ले चली । रास्ते मे कड़ी धूप से ब्याकुल होकर दोनो एक पेड़ की छाया मे बैठ गयी ।

जिस पेड़ के नीचे वह दोनो बैठी थी उस पेड़ पर गरूड़ पक्षी का एक बच्चा रहता था। थोड़ी देर मे ही एक साँप आकर उस बच्चे को मारने लगा । इस दृश्य को देखकर साहूकार की बहु ने उस साँप को मारकर एक डाल के नीचे छिपा दियाऔर उस गरूड़ के बच्चे को मरने से बचा लिया। इस के पश्चात् उस पक्षी की माँ ने वहाँ रक्त पड़ा देखकर साहूकार की बहू को चोंच से मारने लगीं ।

तब साहुकार की बहु ने कहा - मैंने तेरे बच्चे को नहीं मारा है । तेरे बच्चे को

क्रमश:

डसने के लिए एक साँप आया था मैने उसे मारकर तेरे बच्चे की रक्षा की है। मरा हुआ साँप डाल के नीचे दबा हुआ है । बहू की बातों से वह प्रसन्न हो गई और बोली - तू जो कुछ चहाती है मुझसे माँग ले । बहू ने उस से कहा - सात समुद्र पार स्याहू माता रहती है तू मुझे सउ टक पहूँचा दे । तब उस गरूड़ पंखिनी ने उन दोनों को अपनी पीठ पर बिठाकर समुद्र के उस पार स्याहू माता के पास पहुँचा दिया।

स्याहू माता उन्हे देखकर बोली - आ बहिन, बहुत दिनों बाद आयी है । वह पुन: बोली मेरे सिर मे जूँ पड़ गयी है। तू उसे निकाल दे। उस काली गाय के कहने पर साहूकार की बहू ने सिलाई से स्याहू माता की सारी जूँओ को निकाल दिया। इस पर स्याहू माता अत्यन्त खुश हो गयीं । स्याहू माता ने उस साहूकार की बहू से कहा - तेरे सात बेटे और सात बहूएँ हो । सुनकर साहूकार की बहू ने कहा - मुझे तो एक भी बेटा नही है सात कहाँ से होगें । स्याहू माता ने पूछा - इसका कारण क्या है ? उसने कहा यदि आप वचन दें तो इसका कारण बता सकती हूँ । स्याहू माता ने उसे वचन दे दिया । वचन-बद्ध करा लेने के बाद साहूकार की बहू ने कहा - मेरी कोख तुम्हारे पास बन्द पड़ी है, उसे खोल दें ।

स्याहू माता ने कहा - मै तेरी बातों मे आकर धोखा खा गयी । अब मुझे तेरी कोख खोलनी पड़ेगी । इतना कहने के साथ ही स्याहू माता ने कहा - अब तू घर जा । तेरे सात बेटे और सात बहुएँ होगीं । घर जाने पर तू अहोई माता का उद्यापन करना ! सात सात अहोई बनाकर सात कड़ाही देना । उसने घर लौट कर देखा तो उसके सात बेटे और सात बहुएँ बैठी हुई मिलीं । वह खुशी के मारे भाव-विभोर हो गयी । उसने सात अहोई बनाकर सात कड़ाही देकर उद्यापन किया। इसके बाद ही दिपावली आया। उसकी जेठानियाँ परस्पर कहने लगीं -सब लोग पूजा का कार्य शीध्र पूरा कर लो । कहीं ऐसा न हो कि, छोटी बहू अपने बच्चों का स्मरण कर रोना- धोना न शुरू कर दे । नहीं तो रंग मे भंग हो जायेगा । जानकारी करने के लिए उन्होने अपने बच्चो को छोटी बहू के घर भेजा । क्योकि छोटी बहू रूदन नही कर रही थी । बच्चों ने घर जाकर बताया की वह वहाँ आटा गूँथ रही है और उद्यापन का कार्यक्रम चल रहा है ।

इतना सुनते ही सभी जेठानियाँ आकरउससे पूछने लगी कि, तूने अपनी कोख कैसे खुलवायी । उसने कहा -स्याहू माता ने कृपाकर उसकी कोख खोल दी । सब लोग अहोई माता की जय-जयकार करने लगे । जिस तरह अहोई माता ने उस साहूकार की बहू की कोख को खोल दिया उसी प्रकार इस व्रत को करने वाली सभी नारियो की अभिलाषा पूर्ण करें ।

समाप्त

भैया दूज कथा प्रारम्भ

दीपावली के तीसरे दिन अर्थात् कार्तिक शुक्ल द्वितीया को भाई दूज के नाम से जाना जाता है। इस दिन भाई अपनी बहन के हाथो रोली-अक्षत लगवाकर मिठाई खाता और उसे दक्षिणा के रूप मे कुछ द्रव्य भी देता है । इस दिन भाई के लिए बहिन के घर का भोजन करने का विधान है। परन्तु कहीं-कहीं जिनके भहाई बहिन के घर नही पहुँच पाते उनकी बहिनें भाई के घर पर जा कर उन्हे टीका लगाकर मिठाइयाँ खिलाती है।
पौराणिक कथाओ के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि, एक बार यमुना (नदी) ने अपने भाईयमराज को मांगलिक द्रव्यो से टीका लगाकर उन्हे भोजन कराया था। जिस दिन यमुना ने भाई से आग्रह कर भोजन आदि से सन्तुष्ट किया था, उस दिन कार्तिक शुक्ल द्वितीया तिथि थी। तभी से इस पर्व को माना जाने लगा। बहिन की सेवा से सन्तुष्ट होकर यमुना से वरदान माँगने के लिए कहा। बहिन यमुना ने उत्तर दिया- आज की पुनीत तिथि के दिन जो भाई-बहिन एक साथ मेरे जल मे स्नान करें, उन्हे अन्त काल मे यम-यातना न भोगना पड़े और वह जीवनकाल मे सभी प्रकार से सुख - समृद्धि को प्राप्त हो । अपनी बहिन को अभीसत वरदान देकर यमराज अपने लोक को चले गए।

अत: हम सभी लोगों का नैतिक कर्तव्य है कि, इस पावन-पर्व को विधिवत् मनाए।

।। समाप्त ।।

राजा बलि की कथा

एक बार महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्री कृष्ण से विनयपूर्वक पूछा कि, हे भगवन्! आप मुझे कृपा कर कोई ऐसा व्रत या अनुष्ठान बतायें, जिसके करने से मै अपने नष्ट राज्य को पुन: प्राप्त कर सकूँ, क्योंकि राज्यच्युत हो जाने के कारण मैं अत्यन्त दु:खी हूँ।

श्री कृष्ण जी ने कहा – हे राजन् ! मेरा परमभक्त दैत्यराज बलि ने एक बार सौ अश्वमेघ यज्ञ करने का संकल्प किया। निनयानबे यज्ञ तो उसने निर्विघ्न रूप से पूर्ण कर लिये, परन्तु सौवाँ यज्ञ के पूर्ण होते ही उनहे अपने राज्य से निर्वासित होने का भय सताने लगा।

देवताओं को साथ लेकर इन्द्र क्षीरसागर निवासी भगवान् विष्णु के पास पहुँचकर वेद – मन्त्रों से स्तुति की और अपने कष्ट का सम्पूर्ण वृत्तान्त भगवान् विष्णु से कह सुनाया। सुनकर भगवान् ने उनसे कहा – तुम निर्भय होकर अपने लोक मे जाओ। मै तुम्हारे कष्ट को शीघ्र दूर करूँगा।

इन्द्र के चले जाने पर भगवान् ने वामन का अवतार धारण कर बटुवेश मे राजा बलि के यज्ञ मे प्रस्थान किया। राजा बलि को वचनबद्ध कर भगवान् ने तीन पग भूमि उनसे दान मे माँग ली। बलि द्बारा दान का संकल्प करते ही भगवान् ने अपने विराट् रूप से एक पग मे सारी पृथ्वी को नाप लिया। दूसरे पग से अंतरिक्ष और तीसरा चरण उसके सिर पर रख दिया। राजा बलि की दानशीलता से प्रसनन हो भगवान् ने उससे वर माँगने को कहा। राजा के कहा – कार्तिक कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी से अमावस्या तक अर्थात दीपावली तक इस धरती पर मेरा राज्य रहे। इन तीन दिनों तक सभी लोग दीप -दान कर लक्ष्मी जी की पूजा करें और कर्ता के गृह मे लक्ष्मी का वास हो।

राजा द्बारा याचित वर को देकर भगवान् ने बलि को पातालपुरी का राज्य देकर पाताल लोक को भेज दिया। उसी समय से देश के सम्पूर्ण नागरिक इस पूनित दीपावली पर्व को मनाते चले आ रहे है। अत: सभी प्राणियों के लिये इस पर्व को सदभावना पूर्वक मनाना आवश्क ही नही बल्कि अनिवार्य भी है।

एकादशी व्रत कथा

वर्ष मे २४ एकादशी होती है तथा अधिक मास मे २ कुल २६ एकादशी होती है, उनके नाम यह है – १. उत्पन्ना, २. मोक्षदा, ३. सफला, ४. पुत्रदा, ५. जया, ६. विजया, ७. पापमोचनी, ८. कामदा, ९. मोहिनी, १०. योगिनी, ११. पवित्रा, १२. पुत्रदा, १३. अजा, १४. इन्दिरा, १५. रमा, १६. पापांकुशा, १७. देवशयनी, १८. सफला, १९. निर्जला, २०. आमलकी, २१. परिवर्तिनी, २२. देवोत्थानी, २३. वरुथिनी २४. कामदा। इन नामो के अतिरिक्त अधिक मास मे पद्मिनी और परमा ये दो एकादशी होती है। यह नामानुसार फल देती है ।

श्री सूत जी महाराज ब्राह्मणो से बोले हे ब्राह्मणो ! इस विधि युक्त उत्तम माहात्म्य को श्रीकृष्ण जी ने कहा था, विशेष कर जो इस व्रत की उत्पत्ति भक्ति से सुनते है वह इस लोक मे अनेक प्रकार के सुख भोग कर अन्त मे दुष्प्राप्य विष्णुलोक को पाते है । पूर्व काल मे श्री भगवान् ने अर्जुन के प्रति एकादशी व्रत की उत्पत्ति विधि इत्यादि कही थी सो उन्ही के कथोपकथन रूप से मै कहता हूँ । अर्जुन ने पूछा कि हे जनार्दन ! जो रात्रि मे उपवास करते है तथा एक समय भोजन करते है उन्हे कैसा पुण्य मिलता है और उस उपवास करने की विधि क्या है? शो अब आप कृपा करके कहिए । यह सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि सबसे प्रथम दशमी की रात्रि को दन्तधावन करे अर्थात दिन के आठवे प्रहर मे जब सूर्य का तेज मन्द पड़ जाय तब दन्तधावन करना चाहिए और रात्रि को भोजन न करे, पुन: प्रात:काल निश्चिन्त चित्त होकर संकल्प करे, मध्यान्ह मे भी संकल्प पूर्वक स्नान करे । नदी, तालब और वापी कूप आदि मे स्नान करना चाहिए। स्नान के पहले मृत्तिका स्नान अर्थात मिट्टी का चन्दन लगाना चाहिए ।

क्रमश:

स्नान करने व्रती पुरूष पतित, चोर, पाखंडी, मिथ्या दूसरो का अपवाद करने वाला, देवता, वेद और ब्राह्मणो की निन्दा करने वाला और जो अगम्या गमन करने वाला, दुराचारी परद्रव्य चुराने वाला इन सबो से भात न करे, यदि दैवत् इनको देखले तो इस पाप को दूर करने के लिए सूर्य को देखे । स्नान के अनन्तर सादर नैवेद्य आदि अर्पण करे । उस दिन निद्रा और मैथुन न करे । दिन तथा रात्रि नृत्य गायन आदि सद्वार्ता से बितावे। भक्ति युक्त होकर ब्राह्मणो को दक्षिणा देवे और प्रणाम पूर्वक उनसे अपनी त्रुटि की क्षमा करावे । शुक्लपक्ष की और कृष्णपक्ष की एकादशी दोनो धार्मिको के लिए समान है, इन दोनो एकादशी मे भेद बुद्धि उचित नही है। इस प्रकार जो एकादशी व्रत करते है उन मनुष्यो को शंखोद्धार तीर्थ मे स्नान करके भगवान् के दर्शन से जो पुण्य होता है वह एकादशी व्रत के पुण्य के सोलहवे हिस्से के भी बराबर नही है, व्यतीपात योग मे सं,काति समय मे, चन्द्र-सूर्य ग्रहण मे, कुरूक्षेत्र मे स्नान से जो फल प्राप्त होता है, वह सब एकादशी के व्रत करने से मनुष्य को प्राप्त होता है ।अश्वमेघ यज्ञ करने से जो फल होता है उससे सौ गुना अधिक पुण्य एकादशी व्रत से भी होता है । जिस मनुष्य एक सहस्त्र तपस्वी साठ हजार वर्ष भोजन करे, उसे जो पुण्य प्राप्त होता है सो एकादशी व्रत से भी होता है । वेद वेदांग पूर्ण ब्राह्मण को एक हजार गौदान करने से जो पुण्य होता है उससे दस गुना अधिक पुण्य एकादशी व्रत से होता है। दस उत्तम ब्राह्मणो को भोजन कराने से जो पुण्य होता है। उससे दस गुना अधिक पुण्य एकादशी व्रत से होता है। दस उत्तम ब्राह्मणो को भोजन कराने से जो पुण्य होता है। उससे दस गुना अधिक ब्रह्मचारियो के भोजन से होता है इससे हजार गुना अधिक खन्या और भुमिदान से पुण्य है इससे दस गुना अधिक विद्यादान शे पुण्य है, विद्या दान से दस गुना अधिक पुण्य भूखे को अनन देने से होता है। अन्न दान के बराबर और दुसरा पुण्य नही है।

क्रमशः

इसके द्वारा स्वर्गीय पितर तृप्त होते है इसके पुण्य का प्रभाव देवताओ को भी जानना दुर्लभ है। नक्तव्रत करने का आधा फल एक भुक्त व्रत से होता है। एकादशी को इनमे से कोई करना चाहिए। तीर्थ तभी तक गर्जना करते है, दान नियम यम अपने फल की तभी तक घोषणा करता है, यज्ञो का फल तभी तक है जब तक की दस एकादशी प्राप्त नही हुई है। इस कारण अवश्य एकादशी व्रत करना चाहिए। शंख से जल नही पीना चाहिए । मछली और सूआ नही खाना चाहिए और अन्न नही खाना चाहिए, एक एकादशी के समान हजार यज्ञ भी नही है। अर्जुन ने पूछा हे देव! आप इस तीर्थ को सब तीर्थों से श्रेष्ठ तथा पवित्र कहते है। इसमे क्या कारण है ? भगवान् ने कहा कि- पहले सतयुग मे मुर नामक एक भयंकर दैत्य था जिसके भय से सभी देवता भयभीत थे। उसने इन्द्र आदि सभी देवताओ को जीतकर उन्हे उनके स्थान से भ्रष्ट कर दिया था। तब इन्द्र ने महादेव जी से कहा कि- हम लोग इस समय मुर दैत्य के अत्याचार से पीड़ित होकर मृत्युलोक मे अपना काल बिता रहे है और देवताओ की दशा तो कही नही जाती सो कृपा करके इस दु:ख से छुटने का उपाय बतलाइये। श्री महादेव जी ने कहा कि- देवो के राजा इन्द्र आप भगवान् विष्णु के पास जाइये । महादेव जी के वचन को सुनकर देवराज इन्द्र देवताओ को साथ लेकर क्षीर सागर मे जहां जगत्पति जनार्दन सोये थे, वहाँ गये। भगवान को सोये देखकर इन्द्र ने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की- हे देवताओ के देव ! हे देवपूजित ! आपको नमस्कार है। दैत्यो के नाशक मधुसूदन ! हे पुंडरीकाक्ष ! आप हम लोगो की रक्षा करे। हे जगन्नाथ ! दैत्यो से डरकर सब देवता मेरे साथ आपकी शरण मे आए है। आप हम लोगो की रक्षा करे । आप इस जगत् के स्थिति कर्ता, उत्पत्तिकर्ता और संहारकर्ता है। आप देवताओ के सहायक है तथा उन्हे सुख देने वाले है। आप पृथ्वी है, आकाश है और संसार के प्राणियो के उपकारक है। आप ही संसार है तथा सम्पूर्ण त्रैलोक्य

क्रमश:

की रक्षा करने वाले है। आप देवताओ के सहायक है तथा उन्हे सुख देने वाले है। आप ही सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, हव्य, मन्त्र, तन्त्र, यजमान, यज्ञ और समस्त कर्म फल भोक्ता ईश्वर भी है। इस सम्पूर्ण जगत मे ऐसा कोई स्थान नही है जहाँ आप न होवे । हे शरणद: ! आये हुओ के रक्षक हे देव- देव भगवान् ! आप हम लोगो की रक्षा करे । इस समय दानवो ने देवताओ को जीत लिया है और उन्हे स्वर्ग से निकाल दिया है, अब देवता लोग अपने स्थान को छोड़कर भुमि मे मार-मारे फिरते है, आप ही उन सबके रक्षक है। इस प्रकार से इन्द्र के वचनो को सुनकर भगवान बोले कि- वह कौन दैत्य है ? जिसने देवो को जीता है। वह कहा रहता है, उसका नाम क्या है और उसका बल क्या है ? हे इन्द्र ! यह सब विस्तार पूर्वक कहिए तथा भय छोड़ दो ।यह सुनकर इन्द्र कहने लगे कि हे देव ! पहले एक बड़ा भारी नाड़ीजंघ नामक दैत्य था। जिसकी उत्पत्ति ब्रह्मवंश मे थी और अपने बल से गर्वित होकर देवो को सर्वदा पीड़ित करता था। उसी का पुत्र मरू नामक दैत्य है जिसकी राजधानी का नाम चन्द्रावती है। वह नगरी अति सुन्दर है। वह दैत्य उपने प्रखर वीर्य से सम्पूर्ण विश्व को जीत कर और देवताओ को देवलोक से निकाल कर इन्द्र, अग्नि, यम, वरूण और चन्द्रमा आदि लोकपाल स्वयं बन बैठा है, स्वयं सूर्य बनकर जगत खो तपा रहा है, स्वयं पर्जन्य (मेघ) बन गया है। इस कारण आप देवताओ के लिए दर्द के लिए दर्दमनीय दानव को मारकर देवताओ को विजयी बनाये। श्री भगवान् इन्द्र से अत्याचार सुनकर अत्यन्त कुद्ध हुए तथा इन्द्र को सम्बोधन करके बोले कि- देवेन्द्र ! अब मै आप ळोगो को शत्रुभय से शीघ्र ही निर्मूल करूंगा और हे बलशाली देवो ! आप लोग सब मिल चन्द्रावती पुरी को जाओ। यह कह श्री भगवान् भी पीछे-पीछे चन्द्रावती को गए। वहा जाकर देखा कि दैत्याधिप मुरू अनेक दैत्यो से परिवेष्टित होकर संग्राम भुमि मे गरज रहा है। युद्ध प्रारंभ होने पर असंख्यात सहस्र दानव दिव्य अस्त्र शस्त्रो से सुसज्जित होकर लड़ने लगे। अंत मे देवता लोग दानवो से लड़ न सके तब दैत्यो ने देखा कि ह्रषिकेश भगवान् रणभूमि मे उपस्थित है । उन्हे देखकर अनेक दैत्य अस्त्र-शस्त्र से उन पर टूट पड़े। जब भगवान ने देखा कि देवता भाग

क्रमश:

गये है तब शंख च,क गदाधारी भगवान् अस्त्र-शस्त्रो से राक्षसो को विद्ध करने लगे। उन सर्प समान अस्त्रो से विद्ध अनेक दानव इस लोक से चिरदिन के लिए प्रस्थित हुए परन्तु दैत्याधिप निश्चल भाव से युद्ध करता रहा । भगवान् जिन-जिन अस्त्रो का प्रयोग उस पर करे वह सब उसके तेज से कुण्ठित होकर पुष्प के समान उसके अंगो मे मालूम पड़ते थे। अनेक शस्त्रो के प्रयोग उस पर करे वह सब उसके तेज से कुण्ठित होकर पुष्प के समान उसके अंगो मे मालूम पड़ते थे। अनेक शस्त्रो के प्रयोग करने पर भी जब भगवान् उसको न जीत सके तो तब,कुद्ध होकर परिघ तुल्य बाहुओ से मल्ल युद्ध करने लगे। देवताओ के हजार वर्ष भगवान् ने उससे युद्ध किया परन्तु वह नही हारा। तब भगवान् शांत होकर विश्राम करने की इच्छा से बदरिकाश्रम चले गए । वहां अवतालीस कोस की लम्बाई मे विस्तृत और एक द्वार युक्त हेमवती नामक गुफा मे शयन करने के अर्थ भगवान् ने प्रवेश किया। हे धनञ्जय ! मै उस गुफा मे सोया था। इह दानव भी मेरे पीछे-पीछे उस गुफा मे चला आया और मुझे सोता देखकर मारने के लिए उद्यत हुआ। वह समझता था कि आज मै दानवो के चिर शत्रु इनको मारकर उन्हे निष्कण्टक बनाउं । उसी समय मेरे शरीर से अ अत्यन्त सुन्दरी दिव्य अस्त्र लिए एक कन्या उत्पन्न होकर दानवराज के सन्मुख युद्ध के लिए उपस्थित हुई। दानवेन्द्र उससे युद्ध कइने लगा और युद्ध मे उसकी निपुणता देखकर सोचने लगा कि इस रूद्रास्वरूप स्त्री को किसने बनाया जिसके बाण बज्रों के समान है। पुन: उन दोनो मे घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। इस मुहूर्त मे ही उस कन्या ने दानव राज के अस्त्र शस्त्रो को काटकर उसे रथहीन कर दिया। वह दानव विरथ और नि:शस्त्र होकर आक्रमण करने के लिए दौड़ा परन्तु भगवती ने उसे मुष्टिक मारकर जमीन पर गिरा दिया। पुन: उटकर कन्या को मारने की इच्छा से दौड़ा, उसे आते देखकर भगवती ने उसका सिर धड़ से अलग करके उसे यमलोक को भेज दिया और उसके साथी भयभीत होकर पाताल को चले गये । तब भगवान् उठे और सामने हाथ जोड़ खड़ी हुई उस कन्या को देखकर परम प्रसन्न हुए और बोले कि सम्पूर्ण

कमशः

देव गन्धर्व नाग लोकेश सभी को जीतने वाले इस दुष्ट दानव को रण मे किसने मारा है ? जिसके भय से मैने इस कन्दरा का आश्रय लिया था सो किसने कृपाकर मेरी रक्षा की है। कन्या ने उत्तर दिया कि- हे प्रभो! आपको सोया देखकर वह आपको मारना चाहता था कि आपके अंश से उत्पन्न हुई मैने ही इस दानव का संहार करके देवताओ को निर्भय किया है। मै सर्व शुभद्मनकारिणी आपकी ही महाशक्ति हूं । हे प्रभो ! आप बतलाइए कि इसके मारने से आपको क्यो आश्चर्य हो रहा है ? भगवान् बोले कि- हे निष्पाप! एस दानव को मारने मे तुझ पर मै अत्यन्त प्रसन्न हूँ इस समय सभी देवता अत्यन्त हर्षित हो गये है और तीनो लोकों मे इस समय सभी देवता अत्यन्त हर्षित हो गये है और तीनो लोकों में इस समय आन्नद छा रहा है। अतएव निस्संकोच होकर तुम्हारी जो इच्छा हो सो वर मांगो । स्मरण रक्खो कि देवताओ को दुर्लभ वर भी तुम मांगोगी तो मै तुम्हे दूंगा। कन्या बोली कि भगवान ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है और यदि वर देना चाहते है तो मुझे वह वर दीजिए कि यदि कोई उपवास करे तो मै उसके पापों से उसे तारने मे समर्थ होउँ और उपवास से जो पुण्य होता है उससे आधा रात्रि भोजन मे होवे और उसका आधा पुण्य एक संध्या मे भोजन करने वालो को हो । जो मेरे दिन को जितेन्द्रिय भक्ति युक्त होकर उपवास करे सो विष्णु धाम को प्राप्त होवे और अनेक कोटि वर्ष तक वह वहां अनन्त सुख भोग करे। भगवन् ! यदि आप प्रसन्न है तो यही वर दीजिए। यह सुनकर भगवान् बोले कि हे कल्याणि ! जो तुम कहती हो वह सत्य होवे। जो हमारे और उापके भक्त है उनकी कीर्ति जगत में प्रसिद्ध होगी तथा वे मेरे समीप वास करेंगे । हे मेरी उत्तम शक्ति तुम एकादशी तिथि को उत्पन्न हुई हो इस कारण तुम्हारा नाम भी एकादशी होगा। एकादशी उपवास करने वाले के सम्पूर्ण पापो को दूरकर मै उन्हे उत्तम गति दूंगा। विशेष कर अष्टमी चतुर्दशी एकादशी ये तिथियाँ मुझे अत्यन्त प्रिय है। हे पार्थ ! सब तीर्थो से, सब दानो से, सब व्रतो से अधिक पुण्य एकादशी तिथि मे है।विष्णु भगवान इतना वर देके वही अनतर्ध्यान हो गये और एकादशी तिथि भी वर पाकर परम संतुष्ट तथा

क्रमशः

हर्षित हुई। हे अर्जुन ! जो मनुष्य एकादशी का व्रत करते है मै उनके शत्रुओ को नाश करके अवश्य उत्तम पद देता हूँ। इस प्रकार एकादशी की उत्पत्ति हुई है। यह नित्य एकादशी व्रत सब पापो को नाश करने वाला है। सब पापो को दूर करने और सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध करने के लिए यह एक तिथि प्रसिद्ध है। शुक्ल पक्ष की एकादशी अथवा कृष्णपक्ष की एकादशी इन दोनो मे भेद करना उचित नही। दोनो समान है । जो एकादशी का माहात्म्य जो सर्वदा श्रवण या पठन करते है उन्हे अवमध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । जो विष्णु परायण मनुष्य दिन-रात विष्णु के द्वारा विष्णु की कथा सुनते है वह अपने कोटि पुरुष के साथ विष्णु लोक मे जाकर पूजित होते है। जो एकादशी माहात्म्य का चतुर्थांश भी श्रवण करता है उसके ब्रह्म हत्यादिक पाप छूट जाते है। विष्णु धर्म नही है और एकादशी व्रत के समान दूसरा व्रत नही है ।

षट्तिला एकादशी व्रत कथा
(माघ कृष्ण - एकादशी)

इस दिन काली गाय तथा काले तिलों को दान का माहात्म्य है । शरीर पर तिल - तेल, मर्दन, तिल-जल स्नान, तिल-जल-पान तथा तिल पकवान इस व्रत के विशिष्ट उपादान है । इस दिन तिलों का हवन करके श्री कृष्ण ने नारद जी को बताया था ।

कथा

एक ब्राह्मणी थी । उसने तपस्या करके अपना शरीर सुखा डाला । उसके तप से प्रसन्न होकर प्रभु भिखारी के रूप मे उसके द्वार पर भीख माँगने गये । ब्राह्मणी ने आक्रोश में आकर उनके भिक्षा पात्र में मिट्टी का ढेला डाल दिया । मरणोपरांत, बैकुण्ड में उसे रहने के लिए मिट्टी का स्वच्छ एवं आलीशान मकान दिया गया । उसके लिए खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं थी । यह सब देखकर उसे दु:ख हुआ । उसने सोचा मैनें इतना कठोर तप भी किया पर फिर भी मुझे यहाँ खाने-पीने के लिए कुछ भी क्यों उपलब्ध नहीं है ।

उसने प्रभु से इसका कारण पुछा । प्रभु ने कहा - " इसका कारण देवांगन से पूछो।" देवांगनाओ ने उसे बताया - "तुमने षट्तिला एकादशी का व्रत नहीं किया है ।" ब्राह्मणी ने पुन: षट्तिला का व्रत किया और स्वर्ग के सारे सुखों का उपभोग किया ।

पापमोचनी एकादशी

(चैत्र कृष्ण एकादशी)

कृष्ण पक्ष के फाल्गुन मास की एकादशी पापमोचनी एकादशी कहलाती है । पापमोचनी एकादशी का व्रत जन्म-जन्मान्तरो के पापों को नष्ट कर देता है । सभी प्रकार की समृद्धि, सुख और अन्त मे मोक्ष प्रदायक इस व्रत को भगवान् विष्णु की पूजा अराधना करने का विधान है ।

पापमोचनी एकादशी कथा

प्राचीन काल में चैत्ररथ नामक एक अति सुन्दर वन था । इस वन में देवराज इंद्र गंधर्व कन्याओं, अप्सराओं तथा देवताओं सहित स्वच्छन्द विहार करते थे । इस वन में च्यवन ऋषि के पुत्र मेधावी नामक ऋषि तपस्या करते थे । ऋषि शिव भक्त तथा अप्सराएं शिवद्रोही कामदेव की अनुचरी थी ।

एक समय की बात है कामदेव ने बदले ओर द्वेष की भावना के तहत ऋषि मेधावी की तपस्या को भंग करना चाहा । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कामदेव ने मंजुघोषा नामक अप्सरा को भेजा । उसने अपने नृत्य-गान और हाव-भाव से ऋषि का ध्यान भंग किया । अप्सरा के हाव-भाव और नृत्य-गान से ऋषि उस पर मोहित हो गए । फलस्वरूप ऋषि मंजूघोषा के साथ रमण करने लगे और उन्हे दिन और रात का कुछ विचार नही रहा ।

दोनों ने कई साल साथ-साथ गुजारे । एक दिन जब मंजूघोषा ने जाने की आज्ञा माँगी तो ऋषि ने उसे रोकना चाहा । तब मंजूघोषा ने ऋषि को समय का अहसास दिलाया । उन्होने समय की गणना की तो उन्हे अहसास हुआ कि पूरे ५७ वर्ष बीत चुके थे । तब ऋषि को वह अप्सरा काल के समान प्रतीत होने लगी । उन्होने अपने को रसातल में पहुँचाने का एकमात्र कारण मंजूघोषा को समझकर, क्रोधित होकर उसे पिशाचनी होने का श्राप दिया । श्राप सुनकर मंजूघोषा भयभीत हो गई और ऋषि के चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगी । काँपते हुए उसने ऋषि से श्राप के निवारण का उपाय पूछा ।

बहुत अनुनय-विनय करने पर ऋषि का दिल पसीज गया । उन्होंने कहा - " यदि तुम चैत्र कृष्ण पापमोचनी एकादशी का विधिपूर्वक व्रत करो तो इसके करने से तुम्हारे पाप और श्राप समाप्त हो जाएंगे और तुम पुन: अपने पूर्व रूप को प्राप्त करोगी ।" मंजूघोषा को मुक्ति का विधान बताकर मेघावी ऋषि अपने पिता महर्षि च्यवन के आश्रम चल पड़े ।

श्राप की बात सुनकर च्यवन ऋषि ने कहा - "पुत्र यह तुमने क्या अनर्थ कर दिया । श्राप देकर अपना सारस पुण्य क्षीण कर दिया । अत: तुम भी पापमोचनी एकादशी का करो ।

इस प्रकार पापमोचनी एकादशी का व्रत करके मंजूघोषा ने शाप से तथा ऋषि मेधावी ने पाप से मुक्ति पाई ।

पापमोचनी एकादशी के व्रत को करने से सब पाप नष्ट हो जाते है । इस कथा को पढने तथा सुनने से एक हजार गौदान का फल मिलता है ।

समाप्त

कामदा एकादशी
(चैत्र शुक्ल एकादशी)

चैत्र मास की अमावस्या को हमारे भारतीय संवत् की अंतिम तिथि होती है और इसकी अगली प्रतिपदा को प्रारम्भ हो जाता है हमारा नया संवत् और भगवती दुर्गा के नवरात्रे । नवरात्रों के बाद आने वाली चैत्र के शुक्ल पक्ष की एकादशी को कामदा अर्थात सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला कहा जाता है । इस दिन भगवान वासुदेव अर्थात वासुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण का पूजन किया जाता है और गरीबो को दान देने का विशेष महत्व है।

इस व्रत के एक दिन पूर्व गेंहू और मूंग का एक बार भोजन करके भगवान को याद करना चाहिए । एकादशी वाले दिन प्रात: नानदि से निवृत होकर भगवान की पूजा-अर्चना करनी चाहिए । दिन-भर भजन-कीर्तन करके रात्रि में भगवान की मूर्ति के निकट जागरण करना चाहिए । अगले दिन व्रत का समापन करें । इस व्रत के दिन नमक ना खाऐं। इस व्रत को करने से समस्त मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती है ।

कामदा एकादशी कथा

पुलकित मन से भगवान् श्री कृष्ण को नमस्कार करने के बाद धर्मराज युद्धिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की - हे महाराज ! अब मेरी इच्छा चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के नाम, महात्म्य, पूजा-विधान आदि के बारे में विस्तार पूर्वक जानने की है। तब भगवान् कृष्ण ने कहा - हे राजन् ! यही प्रश्न एक बार महाराज दिलीप ने महर्षि वशिष्ठ जी ने जो कथा महाराज दिलीप को सुनाई थी, वही मैं आपको सुनाता हूँ ।

बहुत समय पहले की बात है रत्नपुर नगर पर अनेक ऐश्वर्यों से युक्त पुण्डरीक नाम का एक राजा राज्य करता था । रत्नपुर नगर में अनेक अप्सरा, किन्नर तथा गन्धर्व वास करते थे । उनमें ललित और ललिता नामक पति-पत्नि भी थे । उन दोनों में अत्यन्त प्रेम था । थोड़े समय के लिए भी दोनों अलग नहीं हो सकते थे। एक बार पुण्डरीक की सभा में अन्य गन्धर्वों के साथ ललित भी गाना गा रहा था। गाते-गाते उसे अपनी प्रियतम ललिता का ध्यान आ गया । इससे उसके गायन का स्वरूप बिगड़ गया। ललित के मन का भाव जानकर कर्कोट नामक नाग ने पद भंग होने का कारण राजा से कह दिया। तब पुण्डरीक ने क्रोधपूर्वक कहा कि तू मेरे सामने गाता हुआ अपनी स्त्री का स्मरण कर रहा है अत: तू कच्चामांस और मनुष्यों को खाने वाला राक्षस बनकर अपने किये कर्म का फल भोग । पुण्डरीक के श्राप से ललित उसी समय विकराल राक्षस हो गया । उसका मुख अत्यन्त भयंकर नेत्र, सूर्य और चन्द्रमा की तरह प्रदीप्त तथा मुख से अग्निनिकलने लगी । सिर के बाल पर्वत पर खड़े वृक्षों के सामन तथा भुजाएं अत्यन्त लम्बी हो गई । इस प्रकार उसका शरीर आठ योजन लम्बा हो गया । राक्षस बनकर अनेक कष्टों को भोगता हुआ जंगल में भटकने लगा । अब तो उसकी स्त्री ललिता भी अत्यन्त दुखी होकर उसके पीछे-पीछे भटकने लगी। वह सदैव अपने पति को इस श्राप से मुक्ति दिलाने के बारे में सोचती रहती । एक दिन वह अपने पति के पीछे-पीछे चलते हुए विन्ध्याचल पर्वत पर श्रृंगी ऋषि के आश्रम तक पहुँच गई । श्रृंगी ऋषि ने ललिता को देखकर पूछा - हे देवी ! तुम कौन हो और यहाँ किसलिए आई हो ? वह बोली - मुनिवर ! मेरा नाम ललिता है । मेरा पति राजा पुण्डरीक के श्राप से भयानक और विशालकाय राक्षस बन गया है । इसका मुझे बहुत दु:ख है । मेरे पति के उद्धार के लिए कोई उपाय बतलाइए । ऋषि बोले हे गंधर्व कन्या ! अब चैत्र शुक्ला एकादशी आने वाली है, जिसका नाम कामदा एकादशी है । उसका व्रत करने से मनुष्य के सब कार्य सिद्ध होते है । यदि तू कामदा एकादशी का व्रत करके उसके पुण्य को अपने पति को दे तो राजा का श्राप

क्रमश:

भी अवश्यमेव शांत हो जायेगा और तेरा पति शीघ्र ही राक्षस योनि से मुक्ति प्राप्त होगा ।
चैत्र शुक्ला एकादशी (कामदा) आने पर ललिता ने व्रत किया और द्वादशी को ब्राह्मणों के सामने अपने व्रत का फल अपने पति को देती हुई भगवान् से प्रार्थना करने लगी - हे प्रभो ! मैंने जो यह व्रत किया है इसका फल मेरे पति को प्राप्त हो, जिससे वह राक्षस योनि से मुक्त हो जाए । एकादशी का फल देते ही उसका पति राक्षस योनि से मुक्त होकर अपने पुराने स्वरूप को प्राप्त हुआ और अनेक सुन्दर वस्त्राभूषणों से युक्त होकर ललिता के साथ विहार करने लगा । उसके पश्चात् वे दोनो एक दिव्य विमान में बैठकर स्वर्ग लोक को चले गए ।
वशिष्ट मुनि ने आगे कहा - हे राजन् ! इस व्रत को विधिपूर्वक करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है तथा राक्षस आदि योनि भी छूट जाती है । संसार में इसके बराबर कोई व्रत नही है । इसकी कथा पढने या सुनने मात्र से ही वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।

समाप्त

वरुथिनी एकादशी

(वैशाख कृष्ण एकादशी)

वैशाख मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी को अत्यन्त पुण्यदायिनी और सौभाग्य-प्रदायिनी वरुथिनी एकादशी कहा जाता है । इस दिन भक्ति भाव से मधुसूदन की पूजा करनी चाहिए । इस व्रत को करने से भगवान् मधुसूदन की प्रसन्नता प्राप्त होती है और समस्त पापों का नाश होता हैं तथा सुख-समृद्धि की प्राप्ति होती है ।

इस व्रत के दिन निम्नलिखित दस वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए -
(१)कांसे के बर्तन में भोजन करना, (२) मांस खाना (३) मसूर दाल खाना (४) चना (५) कोदों (६) शाक (७) मधु (८) दूसरे का अन्न (९) दूसरी बार भोजन करना (१०) स्त्री प्रसंग । व्रत वाले दिन पान खाना, दातून करना, परनिन्दा, क्रोध करना, असत्य बोलना, जुआ खेलना आदि भी निषेध हैं ।

वरुथिनी एकादशी के व्रत से अन्न दान तथा कन्या दान दोनों के योग के बराबर फल मिलता है । इस व्रत को करने से स्वंग लोक की प्राप्ति होती है तथा इसके महात्म्य को पढने या सुनने मात्र से एक हजार गोदान का फल मिलता है ।

मोहिनी एकादशी
(वैशाख शुक्ल एकादशी)

वैशाख शुखल की इस मोहिनी एकादशी कोभगवान् के पुरुषोत्तम रूप (राम) की पूजा का विधान है । इस व्रत को करने से निंदित कर्मों के पाप से छुटकारा मिल जाता है। सीता जी की खोज करते समय भगवान् राम ने भी इस व्रत को किया था तथा श्री कृष्ण के कहने पर महाराज युधिष्ठिर ने भी यह व्रत किया था ।

इस दिन भगवान् की प्रतिमा को स्नानादि करा कर उत्तम वस्त्र पहना कर उच्चासन पर बैठाकर आरती उतारनी चाहिए और मीठे फलों का भोग लगाना चाहिए । रात्रि मे भगवान् का कीर्तन करते हुए मूर्ति के समीप ही पृथ्वी पर शयन करना चाहिए।

मोहिनी एकादशी कथा

युधिष्ठिर ने बड़े विनीत भाव से श्री कृष्ण से कहा -"हे नटवर नागर ! वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के बारे में कथा सहित सब बातें मुझे बताइये ।"
भगवान् कृष्ण ने कहा - हे कुन्तीपुत्र! जब सीताजी के बनवास के बाद रामचन्द्र जी बहुत व्यथित थे तब उन्होने वशिष्ठजी से पूछा था कि गुरुदेव मुझे कोई ऐसा व्रत बताइये जिससे समस्त दु:खो, पापों और संतापों का क्षय होकर मेरे हृदय को शान्ति मिले । उस समय वशिष्ठ जी ने जो उत्तर दिया वह मैं तुम्हे सुनाता हूँ -
महर्षि वशिष्ठ जी ने कहा - हे राम आपने कोई पाप नहीं किया । आपका तो नाम लेने से ही मनुष्य के सभी रोग-शोक मिट जाते है । यह प्रश्न आपने लोकहित की भावना से किया है, अत: मै आपको बतलाता हूँ कि मानसिक शांति की प्राप्ति और संताप तथा पाप मिटाने का अमोघ अस्त्र है मोहिनी एकादशी का व्रत । वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को मोहिनी एकादशी इसलिए कहा जाता है कि इसका व्रत करने से मनुष्य के पाप तथा दुख दूर होकर वह मोहजाल से मुक्त हो जाता है । अतएव दुखी मनुष्यों को यह व्रत अवश्य करना चाहिए । मैं इसकी कथा कहता हूँ आप ध्यानपूर्वक सुनिए -
सरस्वती नदी के किनारे बसी सुन्दर और सम्पन्न नगरी भद्रवती में द्युतिमान नाम का चन्द्रवंशी राजा राज्य करता था । इसी नगर में धन-धान्य से परिपूर्ण धनपाल नामक एक वैश्य रहता था । वह वैश्य अत्यन्त धर्मात्मा एवं विष्णु भक्त था । उसने नगर में अनेकों भोजनालय, प्याऊ, कुएं तालाब एवं धर्मशाला आदि बनवाये । सड़को के किनारे आम, जामुन, नीम आदि के अनेक वृक्ष लगवाये । उस वैश्य के सुमना, सदबुद्धि, मेधावी, सुकृति और धृष्टबुद्धि नाम के पाँच पुत्र थे ।
उसके चार पुत्र तो धर्मात्मा थे, परन्तु सबसे छोटा बेटा धृष्टिबुद्धि महापापी, लमपट और दुराचारी था । वह वेश्याओं और दुराचारी मनुष्यों की संगति में रहकर जुआ खेलता, दूसरों की स्त्रियों के साथ भोग-विलास करता तथा मद्य-मांस का सेवन करता था । इस प्रकार अनेक कुकर्मों में फंसकर वह अपने पिता के धन को नष्ट करता था । इन्हीं कारणों से उसके पिता, भाइयों तथा कुटुम्बियों ने उसको घर से निकाल दिया । घर से निकाल देने के बाद सब धन नष्ट हो जाने पर वेश्याओं तथा दुष्ट संगी साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया । अब वह भूख प्यास से अयन्त दुखी रहने लगा । तब उसने रात्रि के समय चोरी करना प्रारम्भ कर दिया । एक बार वह पकड़ा गया, परन्तु राज्य कर्मचारियों ने उसे वैश्य का पुत्र जानकर छोड़ दिया । परन्तु दूसरी बार पकड़े जाने पर उन्होने उसे राजा के सामने उपस्थित कर दिया । कारागार में राजा ने

क्रमश:

उसको बहुत दु:ख दिये और फिर नगर से निकाल दिया । अब तो वह वन में रहकर जानवरों के शिकार पर अपना जीवनयापन करने लगा । एक दिन भूख-प्यास से व्याकुल वह शिकार का पीछा करते-करते कौडिन्य ऋषि के आश्रम में जा पहुँचा । उस समय वैशाख मास था और कौडिन्य ऋषि गंगा स्नान करके आ रहे थे । उनके भीगे वस्त्रों के छींटे पड़ने से कुछ सद्‌बुद्धि प्राप्त हुई और वह मुनि के सामने हाथ जोड़कर कहने लगा - हे मुनिश्वर! मैने अपने जीवन में बहुत पाप किये है अत: आप उन पापों से छुटने का कोई साधारण और बिना व्यय का उपाय बतलाइये । उसके दीन वचन सुनकर ऋषि कहने लगे कि ध्यान देकर सुनो । तुम वैशाख शुक्ला एकादशी का व्रत करो । इस एकादशी का नाम मोहिनी है और इससे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायेंगे । मुनि के वचन सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उनके द्वारा बताई गई विधि के अनुसार उसने मोहिनी एकादशी का व्रत किया । हे राम ! इस व्रत के प्रभाव से उसके सब पाप नष्ट हो गए और अन्त में वह गरूड़ पर चढ़कर विष्णुलोक गया । इस व्रत से मोह आदि सब नष्ट हो जाते है अत: संसार में इस व्रत से श्रेष्ठ अन्य कोई व्रत नहीं है । इसके महात्मय को पढ़ने अथवा सुनने से एक हजार गौ दान का फल प्राप्त होता है ।

समाप्त

अपरा (अचला) एकादशी

(ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी)

कृष्ण पक्ष के ज्येष्ठ मास की एकादशी को अपरा अथवा अचला एकादशी कहा जाता है । इस दिन भगवान् त्रिविक्रम की पूजा की जाती है । इसके करने से कीर्ति, पुण्य तथा धन की वृद्धि होती है तथा भूत-प्रेत जैसी निकृष्ट योनियों से मुक्ति मिलती है । इस दिन चंदन, कपूर, गंगाजल सहित भगवान विष्णु की पूजा की जानी चाहिए ।

अपरा (अचला) एकादशी कथा

पुलकित मन से भगवान् श्री कृष्ण को नमस्कार करने के बाद धर्मराज युद्धिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की - हे महाराज ! अब मेरी इच्छा ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के नाम, महात्म्य, पूजा-विधान आदि के बारे में विस्तार पूर्वक जानने की है। सो आप कृपा करके सुनाइये ।

श्री कृष्ण भगवान् कहने लगे - हे राजन् ! इस एकादशी का नाम अपरा है । यह अपार धन देने वाली है । जो मनुष्य इस व्रत को करते है, संसार में उनको यश तथा कीर्ति की प्राप्ति होती है । अपरा एकादशी के व्रत के प्रभाव से ब्रह्महत्या, भूत, योनि, तथा पर-निन्दा आदि तक के सब पाप दूर हो जाते है । इस व्रत से पर-स्त्री-गमन, झूठी गवाही देना, असत्य भाषण, कल्पित शास्त्र पढ़ना या बनाना, झूठा ज्योतिषी, झूठा वैद्य बनना आदि तक के पाप नष्ठ हो जाते है । जो क्षत्रिय होकर युद्ध से भाग जाते है, वे नरकगामी होते है, परन्तु अपरा एकादशी का व्रत करने से उन्हे भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है । जो शिष्य गुरु से शिक्षा ग्रहण करते है और बाद में उनकी निंदा करते है, वे अवश्य नरक में पड़ते है, परन्तु अपरा एकादशी का व्रत करने से वह भी इस पाप से मुक्त हो जाते है ।

जो फल तीनों पुष्कर में कार्तिक पूर्णिमा को स्नान करने से या गंगा तट पर पितरों को पिंडदान करने से प्राप्त होता है, वही अपरा एकादशी का व्रत करने से प्रात होता है । मकर के सूर्य में प्रयागराज के स्नान से, शिवरात्रि व्रत से शिंह राशि के बृहपति में गोमती नदी के स्नान से, कुम्भ में केदारनाथ या बदरिकाश्रम की यात्रा, सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र के स्नान, स्वर्ण अथवा हाथी-घोड़ा दान करने से अथवा नव-प्रसूता गौ दान से जो फल मिलता है, वही फल अपरा एकादशी के व्रत से मिलता है । यह व्रत पापरुपी वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी है । पापरुपी ईंधन को जलाने के लिए अग्नि, पापरुपी अंधेरे के लिए सूर्य के समान है । अपरा एकादशी का व्रत तथा भगवान् का पूजन करने से मनुष्य सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को जाता है ।

हे राजन् ! यह अपरा एकादशी की कथा मैंने लोकहित के लिए कही है, इसके पढ़ने अथवा सुनने से मनुष्य सब पापों से छुट जाता है इसमें संदेह नही हैं ।

समाप्त

निर्जला एकादशी
(ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी)

वर्ष की चौबीस एकादशियों में ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की एकादशी सबसे बढ़कर फल देने वाली है । इस एकादशी का व्रत रखने से ही वर्ष भर की एकादशियों के व्रत का फल प्राप्त हो जाता है । इस एकादशी में एकादशी के सूर्योदय से द्वादशी के सूर्यास्त तक जल भी न ग्रहण करने का विधान होने के कारण इसे निर्जला एकादशी कहा जाता है । ज्येष्ठ मास में दिन बहुत बड़े होते है और प्यास भी बहुत अधिक लगती है। ऐसी दशा में इतना कठिन व्रत रखना सचमुच बड़ी साधना का काम है ।

व्रत का विधि-विधान

इस व्रत के दिन निर्जल व्रत करते हुए शेषशायी रूप में भगवान विष्णु की आराधना का विशेष महत्व माना गया है । जल-पान निषेध होने पर भी इस व्रत में फलाहार के पश्चात् दूध पीने का विधान है । इस एकादशी का व्रत करने के पश्चात् द्वादशी को ब्रह्म-बेला में उठकर स्नान कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देना चाहिए । इस एकादशी के दिन अपनी शक्ति और सामर्थ्यानुसार ब्राह्मणों को अनाज, वस्त्र, छतरी, फल, जल से भरे कलश और दक्षिणा देने का विधान है । सभी व्यक्ति प्राय: मिट्टी के धड़े अथवा सुराहियों, पंखों और अनाज का दान तो करते ही हैं, इस दिन मीठे शर्बत की प्याऊ भी लगवाते हैं ।

निर्जला एकादशी माहात्म्य

श्रीसूत जी बोले- हे ऋषियो ! अब सर्व व्रतो मे श्रेष्ठ सर्व एकादशियो मे उत्तम निर्जल एकादशी की कथा सुनो ।

एक बार पाण्डव पुत्र भमिसेन ने वेदव्यास जी से पूछा-हे महाज्ञानी पितामह ! मेरे चारो भाई युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव और माता कुन्ती तथा भार्य्या द्रौपदी एकादशी के दिन कभी भोजन नही करते, वे मुझे भी सदैव ऐसा करने को कहते रहते है, मै उनसे कहता हूं कि मुझ से तो भूख सही नही जाती, मै दान और विधिवत् भगवान् की पूजा आराधना करूंगा, सो कृपा पूर्वक ऐसा उपाय बताइए कि उपवास किए बिना मुझे एकादशी के व्रत का फल प्राप्त हो सके, तो व्यास जी बोले, यदि स्वर्ग भला और नरक बुरा प्रतीत होता है तो हे भमिसेन ! दोनो पक्षो की एकादशी को भोजन न करो । तब भमि ने निवेदन किया हे महामुनि ! जो कुछ मै कहता हूं वह भी सुनो, यदि दिन मे एक बार भोजन न मिले तो मुझ से नही रहा जाता, मै उपवास कैसे करू ? मेरे उदर मे वृक नामक अग्नि का निवास है बहुत सा भोजन करने से मेरी भूख शान्त होती है, हे मुनि ! मै वर्ष भर केवल एक ही व्रत कर सकता हूं, सो आप कृपा करके केवल एक व्रत बताइए जिसे विधिपूर्वक करके मै स्वर्ग को प्राप्त हो सकूं, वह निश्चय करके कहिए जिससे मेरा कल्याण हो । व्यास जी ने कहा हे भमिसेन ! मनुष्यो के लिए सर्वोत्तम वेद का धर्म है, किन्तु कलियुग मे भी उस धर्म पर चलने की शक्ति किसी मे नही है । इसलिए थोड़े धन और थोड़े कष्ट से होने वाला सरल उपाय जो पुराणों मे लिखा है वह मै तुमको बताता हूं । दोनो पक्षो की एकादशियो मे जो मनुष्य भोजन नही करते वे नरक नही जाते ।

क्रमशः

यह वचन सुनकर महाबली भमिसेन पहले तो पीपल पत्र की भांति कांपने लगे फिर डरते हुए बोले हे पितामह ! मै उपवास करने मे असमर्थ हूं, इसलिए हे प्रभो निश्चय करके बहुत फल देने वाला एक व्रत मुझ से कहिए । तो व्यास जी बोले- वृष मिथुन राशि के सूर्य मे ज्येष्ठ मास मे शुक्ल पक्ष मे जो एकादशी होती है, उसका निर्जला व्रत यत्न से करना उचित है । स्नान और आचमन करने से जलपान वर्जित, केवल एक घूंट जल से आचमन करे अधिक पीने से व्रत खण्डित हो जाता है, एकादशी के सूर्य उदय से लेकर द्वादशी के सूर्योदय तक लक ग्रहण न करे और न भोजन करे तो बिना परिश्रम ही सभी द्वादशी युक्त एकादशियो का फल मिल जाता है, द्वादशी को प्रात: काल स्नान करके स्वर्ण और जल ब्राह्मणो को दान करे, फिर ब्राह्मणो सहित भोजन करे । हे भमिसेन ! इस विधि से व्रत करने से जो फल मिलता है वह सुनो, सारे वर्ष मे जो एकादशियां आती है उन सब का फल नि:सन्देह केवल इस एकादशी के व्रत से प्राप्त होता है। शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु से स्वयं वह मुझ से कहा है कि सब त्याग कर केवल मेरी शरण मे आओ और सुन, एकादशी निराहार व्रत करने से मनुष्य सब पापो से छुट जाता है, सब तीर्थों की यात्रा तथा सब प्रकार के दोनो में जो फल मिलता है वह सब इस एकादशी के व्रत से मिल जाता है। कलियुग मे दान देने से भी ऐसी सदगति नही होती, अधिक क्या कहूं ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की एकादशी को जल और भोजन न करे । हे वृकोदर ! एस व्रत से जो फल मिलता है उसको सुनो ! सब एकादशी व्रतो से जो धन-धान्य व आयु आरोग्यता आदि की वृद्धि होती है वे सब फल नि:सन्देह इस एकादशी के व्रत से प्राप्त होते है । हे नरसिंह भमि ! मै तुझ से सत्य कहता हू कि इसके करने से अति भयंकर काले पीले रंगो वाले यमदूत भय देने वाला दंड और फांसी सहित उस मनुष्य के पास नही आते, बल्कि पीताम्बर धारी हाथो मे चक्र लिए हुए मोहिनी मूर्ति विष्णु के दूत अन्त समय मे विष्णु दूत अन्त समय

  क्रमश:

मे विष्णु लोक मे ले जाने को आ जाते है, अत: जल रहित व्रत करना उचित है फिर जल और गौदान करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। वैशमपायन जी कहते है- हे जनमेजय ! तब से भमिसेन यह व्रत करने लगे और तभी से इसका नाम भमिसेनी हुआ। हे राजन्! इसी प्रकार तुम सब पाप दूर करने के लिए उपवास करके विष्णु की पूजा करो और इस प्रकार प्रार्थना करो कि हे भगवान् ! मै आज निर्जल व्रत करूंगा। हे देवेश अनन्त ! द्वादशी को भोजन करूंगा। यह कहकर सब पापों की निवृति के लिए श्रद्धा से इन्द्रियो को वश करके व्रत करे। स्त्री व पुरूष के मन्दराचल पर्वत के समान (बड़े से बड़े) पाप भी इस एकादशी के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं, यदि गाय दान न कर सके तो वस्त्र में बांधे स्वर्ण के साथ घड़ा दान करे, निर्जला एकादशी को स्नान, दान, तप, होमादि जो धर्मकार्य मनुष्य करता है सो सब अक्षय हो जाता है। हे राजन् ! जिसने एकादशी का विधिवत् व्रत कर लिया उसे और धर्माचार करने की क्या आवश्यकता है ? सब प्रकार के व्रत करने से विष्णुलोक प्राप्त होता है और हे कुरूश्रेष्ठ ! एकादशी के दिन जो मनुष्य अन्न भोजन करते है वह पापी है । इस लोक मे चाण्डल होते और अन्त में दुगर्ति को पाते हैं, इस एकादशी का व्रत करके दान देने वाले मोक्ष को प्राप्त होगे । ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरु से द्वेष और मिथ्या (झूठ) बोलना यह सब महापाप द्वादशयुक्त एकादशी का व्रत करने से क्षय हो जाते है, हे कुन्तीपुत्र भमि ! अब इस व्रत की विधि सुनो । यह व्रत स्त्री व पुरूषों को अत्यन्त श्रद्धा से इन्द्रियो को वश मे करके करना चाहिए । क्षीरशायी भगवान् की पूजा करके गौदान करे । दूध देने वाली गौ, मिष्ठान और दक्षिणा सहित विधि पूर्वक दान करे।हे श्रेष्ठ भमि ! इस प्रकार भली भांति ब्राह्मणो के प्रसन्न होने से श्रीविष्णु भगवान् संतुष्ट होते है । जिसने यह महाव्रत नही किया उसने आत्मद्रोह किया । वह दुराचारी है और जिसने यह व्रत किया उसने अपने एक सौ अगले सम्बन्धियों को अपने सहित स्वर्ग पहुंचा दिया और मोक्ष को प्राप्त हुआ । जो मनुष्य शांति से

क्रमश:

दान और पूजा करके रात्रि को जागरण करते है और द्वादशी के दिन अन्न, जल, वस्त्र, उत्तम शय्या व कुण्डल सुपात्र ब्राह्मण को दान करते है वह निसन्देह स्वर्ण के विमान पर बैठ कर स्वर्ग को प्राप्त होते है । जो फल नाशनी अमावस्या अथवा सूर्य ग्रहण मे दान-पुण्य करके मिलता है वही फल इसके सुनने से मिलता है । दंत धावन कर विधि अनुसार बिना अन्न तथा जल के व्रती मनुष्य इस एकादशी का व्रत और आचमन जल के न पीकर द्वादशी के दिन देवदेवेश त्रिविक्रम भगवान् की पूजा करे । जल, पुष्प, धूप, दीप, अर्पण कर यताविधि पूजन करके प्रार्थना करे कि हे देवेश ! हे हृीषकेश, हे संसार सागर से पार कराने वाले! इस घड़े के दान करने से मुझे मोक्ष प्राप्त हो । हे भमिसेन ! फिर अपनी सामर्थ्य अनुसार अन्न, वस्त्र, छत्र, फल आदि घड़े पर रखकर ब्राह्मणो को दान देवे, तत्पश्चात् श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणो को भोजन करवाकर आप भी मौन हो कर भोजन करे । इस प्रकार जो इस व्रत को यथा विधि करते है सब पापो से छुट कर मुक्त हो जाते है ।

।। समाप्त ।।

पुत्रदा एकादशी
(श्रावण शुक्ल एकादशी)

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को पुत्रदा एकादशी कहा जाता है । इसदिन भगवान् जनार्दन की श्रद्धापूर्वक पूजा की जाती है । भक्तिपूर्वक इस व्रत को करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है । संतान प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को यह व्रत अवश्य करना चाहिए ।

पुत्रदा एकादशी कथा

पुलकित मन से भगवान् श्री कृष्ण को नमस्कार करने के बाद धर्मराज युद्धिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से श्रावण के शुक्ल पक्ष की एकादशी के बारे में जानने की इच्छा जाहिर की । इसके उत्तर में मैं भगवान् कृष्ण ने कहा – हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! श्रावण शुक्ला एकादशी का नाम पुत्रदा है । मै इसके बारे में एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ, जिसके पढ़ने या सुनने मात्र से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है । आप ध्यानपूर्वक इस कथा को सुनिये –

द्वापर युग के आरम्भ में महिष्मती नगरी में महीजित नाम का एक प्रतापी राजा राज्य करता था । उसका बहुत बड़ा राज्य था, परन्तु कोई पुत्र ना होने के कारण महीजित को राज्य सुखदायी नहीं लगता था । पुत्र प्राप्ति के लिये राजा ने अनेक दान, पुण्य, यज्ञ, हवन आदि उपाय किए परन्तु राजा को पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई । वृद्धावस्था आती हुई देखकर राजा अपनी प्रजा के प्रतिनिधियों और विद्वान ब्राह्मणों को बुला कर कहने लगा– हे प्रियजनों ! मैने इस जन्म में तो कोई पाप नहीं किया । मेरे खजाने मे अन्याय से उपार्जन किया हुआ धन नहीं है और न ही मैने कभी देव मन्दिरों, सद् – गृहस्थों अथवा ब्राह्मणों का धन छीनना है । किसी दूसरे की धरोहर भी मैंने कभी नहीं ली और न ही प्रजा पर अन्याय पूर्ण कोई कर लगाया है । मैं प्रजा का पुत्र के समान पालन करता हूँ तथा ब्राह्मणों और सन्यासियों को भरपूर दान देता हूँ । यद्यिप न्याय की रक्षा के लिये मैं अपराधियों को दण्ड देता हूँ, परन्तु कभी किसी से घृणा नहीं की, सबको एक समान माना हैं । सज्जनों की सदा पूजा करता रहा हूँ । इस प्रकार धर्म= युक्त राज्य करते हुए भी मेरा पुत्र नहीं है । इस कारण मैं अत्यन्त दुःख पा रहा हूँ इसका क्या कारण है ?

राजा महीजित की इस समस्या के निवारण हेतु प्रजा के प्रतिनिधि तथा मंत्रीगण वन में जाकर बड़े–बड़े ऋर्षियों और मुनियों के दर्शन करते हुए, किसी विद्वान तपस्वी की तलाश में लग गए । एक आश्रम में उन्होने एक अत्यन्त वयोवृद्ध, धर्म के ज्ञाता, बड़े तपस्वी, परामात्मा में मन लगाये हुए गूढ़ तत्वों को जानने वाले, समस्त शास्त्रों के ज्ञाता महात्मा लोमेश मुनि को देखा । एक कल्प के व्यतीत होने पर एक रोम गिरता था लोमेश ऋर्षि का, इतनी अधिक थी उनकी आयु ।

सबने जाकर लोमेश ऋर्षि को प्रणाम किया और उनके सामने बैठ गए । उन्हे देखकर ऋर्षि ने पूछा कि आप किस कारण से आए हैं? आप मुझे अपनी समस्या बताइए, निसंदेह मै आप लोगों का हित करूँगा । उनके ऐसे वचन सुनकर सब लोग बोले – हे महर्षि ! यद्यिप आप हमारी बात जानने में ब्रह्मा से भी अधिक समर्थ है, मगर फिर भी हम अपनी व्यथा कहते है । महिष्मती पुरी का धर्मात्मा राजा महीजित प्रजा का पुत्र के समान पालन करता है, परन्तु फिर भी वह पुत्रहीन है । हम लोग उसकी प्रजा है । अपने राजा के दु:ख से हम भी दु:खी हैं । हमको पूर्ण विश्वास है कि आपके दर्शन से हमारा यह संकट आवश्य दूर हो जायेगा, क्योंकि महान पुरूषों के दर्शन मात्र से अनेक कष्ट दूर होजाते है । आप कृपा कर के राजा के पुत्र होने का उपाय बतलाए । यह वार्ता सुनकर ऋर्षि लोमेश ने थोड़ी देर के लिए अपने नेत्र बन्द कर लिए और राजा के पिछले जन्म का वृतान्त ज्ञात कर लिया । लोमेश ऋर्षि ने स्नेहासिक्त वाणी में कहा – हे महानुभावों ! आपका राजा पूर्व जन्म में एक निर्धन वैश्य था । निर्धन होने के कारण इसने अनेक बुरे कर्म किए । वह एक गांव से दूसरे गांव व्यापार करने के लिए जाया करता था । एक समय ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन मध्यान्ह काल के समय जब कि वह दो दिन का भूखा प्यासा था, एक जलाशय पर जल पीने गया । उस स्थान पर एक तत्काल गौ जल पी रही थी । राजा ने उस प्यासी गौ को जल पीते से हटा दिया और स्वयं जल पीने लगा । इसी पाप के कारण राजा को निपुत्री होने का दु:ख सहना पड़ा है । एकादशी के दिन भूखा रहने से वह राजा बना है और प्यासी गौ को जल पीते से हटाने के कारण पुत्रहीनता का दु:ख भोगना पड़ा है ।

सब लोगों ने कहा – हे मुनिश्रेष्ठ ! राजा का यह पाप नष्ट हो आप ऐसा कोई उपाय बताने की कृपा करें । लोमेश मुनि ने उत्तर दिया – श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को पवित्रा एकादशी का व्रत और रात्रि को जागरण करें तो अवश्य ही पुत्र की प्राप्ति होगी ।

लोमेश ऋर्षि से उपाय जानने के बाद सभी व्यक्ति नगर को वापस लौट आए । जब श्रावण शुक्ला एकादशी आई तो सबने मिलकर ऋर्षि की आज्ञानुसार राजा

सहित पुत्रदा एकादशी का व्रत और जागरण किया । इसके पश्चात् द्वादशी के दिन इसके पुण्य का फल राजा को दिया गया । उस पुण्य के प्रभाव से रानी ने गर्भ धारण किया और प्रसवकाल समाप्त होने पर एक बड़ा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ ।

अन्त में भगवान् कृष्ण ने कहा - हे राजन् ! इस श्रावण शुक्ला एकादशी का नाम पुत्रदा एकादशी है, अत: सन्तान सुख की इच्छा रखने वाले इस व्रत को आवश्य करें । इसके महात्म्य को सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है और इस लोक में संतान सुख भोगकर परलोक में स्वर्ग को प्राप्त होता है ।

समाप्त

आमलकी एकादशी
(फाल्गुन शुक्ल एकादशी)

होलिका दहन से चार दिन पूर्व फाल्गुन के शुक्ल पक्ष की इस एकादशी का नाम आमलकी एकादशी है । इन दिनों आँवले के वृक्ष में भगवान् का निवास रहता है । इसलिए आँवले के वृक्ष के नीचे बैठकर भगवान् की पूजा करने और आँवले खाने और दान करने का विशेष महत्त्व है ।

इस दिन स्नानादि से निवृत होकर आंवले के वृक्ष का धूप, दीप, चंदन, रोली, पुष्प, अक्षत आदि से पूजन कर उसके नीचे ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ।

आमलकी एकादशी कथा

त्रेता युग में एक दिन महाराज मांधाता ने ब्रह्मर्षि वशिष्टजी से अनुरोध किया – हे मुनिवर ! यदि आप मुझ से प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मुझे कोई ऐसा व्रत बतलाएँ जिसको करने से मेरा सब प्रकार से कल्याण हो ।
महर्षि वशिष्ठजी ने उत्तर दिया – हे राजन् ! यों तो सभी व्रत उत्तम हैं, परन्तु इनमें सर्वोत्तम है आमलकी एकादशी व्रत । फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की इस आमलकी एकादशी का व्रत करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं । इस व्रत को करने से एक हजार गायों के दान के बराबर पुण्य प्राप्त होता है । इस बारे में कथा मैं आपको सुनाता हूँ ध्यानपूर्वक सुनिए –
वैदिक नामक एक नगर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के परिवार आन्नदपूर्वक रहा करते थे । वहाँ पर सदैव वेद ध्वनि गूंजा करती थी । पापी, दुराचारी तथा नास्तिक कोई नहीं था । उस नगर मे, चैत्ररथ नाम का चन्द्रवंशी राजा राज करता था । सभी नगरवासी भगवान् विष्णु के परम भक्त थे और सभी नियमपूर्वक एकादशियों का व्रत किया करते थे ।
प्रत्येक वर्ष के समान फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की आमलकी एकादशी आई । उस दिन राजा, प्रजा तथा बाल-वृद्ध सबने हर्षपूर्वक व्रत किया । राजा अपनी प्रजा के साथ मंदिर में जाकर कुम्भ स्थापित करके धूप, दीप, नैवेद्य, पंचरत्न आदि से धात्री (आंवले) का पूजन करके इस प्रकार स्तुति करने लगा – हे धात्री ! आप ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न हुए हो और समस्त पापों को नष्ट करने वाले हो, अत: आपको नमस्कार है । अब आप मेरा अर्ध्य स्वीकार करें । आप रामचन्द्र जी द्वारा सम्मानित हो । मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे समस्त पापों को समूल नष्ट करें ।
मंदिर में सबने रात्रि को जागरण किया । रात के समय वहाँ एक बहेलिया आया, जो अत्यन्त पापी और दुराचारी था । वह अपने कुटुम्ब का पालन जीव-हिंसा करके किया करता था । उस दिन उसे कोई शिकार नहीं मिला था, अत: निराहार रहना पड़ा । भुख तथा प्यास से अत्यन्त व्याकुल वह बेहलिया मंदिर के एक कोने में बैठ गया और विष्णु भगवान् तथा एकादशी महात्म्य की कथा सुनने

क्रमश:

लगा । इस प्रकार अन्य मनुष्यों की तरह उसने भी सारी रात जागकर बिता दी । प्रात: काल घर जाकर उसने भोजन किया । कुछ समय बाद बहेलिये की मृत्यु हो गई ।

आमलकी एकादशी का व्रत व जागरण करने के कारण अगले जन्म में उस बहेलिये ने राजा विदूरथ के घर में जन्म लिया । उसका नाम वसुरथ रखा गया । युवा होने पर वह चतुरंगिणी सेना तथा धन-धान्य से युक्त होकर दस हजार ग्रामों का पालन करने लगा । वह तेज में सूर्य के समान, कांति मे, चन्द्रमा के समान ओर क्षमा मे, पृथ्वी के समान था । वह अत्यन्त धार्मिक, सत्यवादी, कर्मवीर एवं विष्णु भक्त राजा बना । प्रजा का समान भाव से पालन, यज्ञ करना तथा दान देना उसका नित्य का कर्तव्य था । एक दिन राजा वसुरथ शिकार खेलने के लिए वन गया । दैवयोग से वह मार्ग भूल गया और एक वृक्ष के नीचे सो गया । थोड़ी देर बाद पहाड़ी म्लेच्छ वहाँ आए और राजा को अकेला देखकर 'मारो-मारो' की आवाजें लगाते हुए राजा की ओर दौड़े । वे म्लेच्छ कहने लगे कि इसी दुष्ट राजा ने हमारे माता-पिता, पुत्र-पौत्र आदि अनेक संबंधियों को मारा हे तथा देश से निकाल दिया है । अतएव इसको अवश्य मारना चाहिए । ऐसा कहकर वे मलेच्छ अस्त्रों से प्रहार करने लगे । अनेक अस्त्र-शस्त्र राजा के शरीर पर गिरते ही नष्ट हो जाते और उनका वार पुष्पों के समान प्रतीत होता । अब उन म्लेच्छ अस्त्र-शस्त्र उलटा उन्ही पर प्रहार करने लगे जिससे वे घायल होने लगे । इसी समय राजा को भी मूर्छा आ गई । उस समय राजा शररि से एक दिव्य स्त्री उत्पन्न हुई । वह स्त्री अत्यन्त सुन्दर बस्त्रों तथा आभूषणों से अलंकृत थी । मगर उसकी भृकुटी टेढ़ी थीं और आंखों से लाल-लाल अग्नि निकल रही थी । वह स्त्री म्लेच्छों को मारने दौड़ी और थोड़ी ही देर में उसने सब म्लेच्छों को काल के गाल में पहुँचा दिया । जब राजा सोकर उठा तो इन म्लेच्छों को मरा हुआ देखकर सोचने लगा कि इन शत्रुओं को किसने मारा है ? वह विचार कर ही रहा था कि तभी आकाशवाणी हुई - हे राजा ! इस संसार में विष्णु भगवान् के अतिरिक्त कौन तेरी सहायता कर सकता है । इस आका--वाणी को सुनकर राजा अपने नगर को चला आया और सुखपूर्वक राज्य करने लगा ।

महर्षि वशिष्ठजी आगे बोले - हे राजन् ! यह आमलकी एकादशी के व्रत का प्रभाव था । जो मनुय इस आमलकी एकादशी का व्रत करते हैं, वे सभी कार्यों में सफल होकर उन्त में विष्णु लोक को प्राप्त होते हैं ।

समाप्त

गोवर्धन कथा प्रारम्भ

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन गोवर्धन पूजा का विधान किया गया है। इसे अन्नकूट के नाम से भी अभिहित किया जाता है । उस दिन सभी देव-मन्दिरो मे अन्नकूट की सजावट की जाती है, जिसमे देवमूर्ति के समक्ष नाना प्रकार के पकवान बनाकर नैवेद्य के रूप मे अर्पित किए जाते है । इस श्रृंगार को देखने के लिए मन्दिरो मे उस दिन भारी भीड़ उमड़ पड़ती है।

पौराणिकमान्यता के अनुसार उस दिन ब्रजवासी नन्द बाबा के नेतृत्व मे इन्द्र की पूजा किया करते थे। जिसे इन्द्रयाग कहा जाता है । एक बार भगवान् श्री कृष्ण ने नन्दबाबा को इन्द्र की पूजा करने से रोक दिया । उन्होने कहा कि, सब लोग मिलकर गोवर्धन नाथ की पूजा करे तो विशेष लाभ होगा। उनके कथनानुसार सभी ब्रजवासियो ने वैसा ही किया और छप्पन भोग लगाकर गोवर्धन नाथ की पूजा की। इसके फल स्वरूप इन्द्र देव कुपित हो गए और उन्होने अपने मेघो को आदेश दिया कि, तुम लोग मूसलाधार वृष्टि करके समस्त ब्रजमण्डल को बहा दिया। मेघो ने लगातार सात दिनो तक ब्रज पर घनघोर वर्षा की ।

इस प्रकार का दृष्य देखकर भगवान् श्रीकृण ने गोवर्धन पर्वत को अपने हाथ की कानी उँगली पर धारण कर लिया। उस विशालकाय पर्वत के नीचे सभी गोपो को सुरक्षित रखा। भगवान् की इस अद्भुत लीला को देखकर आश्चर्यचकित हो इन्द्र घबरा उठा। इन्द्र को श्रीकृष्ण मे ईश्वरत्व का भान हुआ। उसने श्रीकृष्ण से क्षमा-याचना की और उनका दुग्धाभिषेक किया । वह अभिक दूध जिस स्थान मे बहकर एकत्रित हुआ, उसे सुरभि-कुण्ड के नाम से जाना जाता है । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्र का मान-मर्दन किये जाने पर अन्नकूट का त्योहार विजय-पर्व के रूप मे मनाया जाता है।

।। समाप्त ।।

हरतालिका तीज व्रत

भाद्रपद की शुक्ल तृतिया को हस्त नक्षत्र होता है । इस दिन भगवान् शिव और माता पार्वती की पूजा की जाती है । इस व्रत को कुमारी तथा सौभाग्यवती स्त्रियाँ ही करती है । इस व्रत को करने वाली स्त्रियाँ पार्वती के समान सुखपूर्वक पतिरमण करके स्वंग को जाती है ।

इस दिन स्त्रियाँ को निराहार रहकर, शाम के समय स्नान करके तथा शुद्ध वस्त्र धारण कर पार्वती तथा शिव की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर पूजन की समय पूजा करनी चाहिए । इस दिन घर पर ही सुबह, दोपहर और शाम को पूजा करनी चाहिए । शाम को स्नान कर के विशेष पूजा के बाद व्रत खोला जाता है ।

सुहाग की पिटारी में सुहाग की सारी वस्तुएं रखकर पार्वती को चढ़ानी चाहिए तथा शिवजी को धोती और अंगोछा चढ़ाया जाता है । पूजा के बाद यह सुहाग सामग्री किसी ब्राह्मणी तथा धोती और अंगोछा ब्राह्मण को देकर तेरह प्रकार के मीठे व्यंजन सजाकर रूपयों सहित अपनी सास को देकर आर्शिवाद प्राप्त करें । इस प्रकार शिव-पार्वती का पूजन करने के बाद कथा सुननी चाहिए । इस तरह व्रत करने से स्त्रियों को सौभाग्य प्राप्त होता है ।

हरतालिका तीज कथा

कहते है कि इस व्रत के माहात्म्य की कथा भगवान् शिव ने पार्वती जी को उनके पूर्व जन्म का स्मरण करवाने के मकसद से इस प्रकार से कही थी --

हे गौरी! पर्वतराज हिमालय पर गंगा के तट पर तुमने अपनी बाल्यावस्था में अधोमुखी होकर घोर तप किया था । इस अवधि में तुमने अन्न ना खा कर केवल हवा का ही सेवन किया था । इतनी अवधि तुमने शूखे पत्ते चबाकर काटी था ।

माघ की शीतलता में तुमने निरन्तर जल में प्रवेश कर तप किया था । वैशाख की जला देने वाली गर्मी में पंचाग्नि से शरीर को तपाया । श्रावण की मूसलाधार वर्षा में खुले आसमान के नीचे बिना अन्न जल ग्रहण किए व्यतीत किया ।

तुम्हारी इस कष्ट दायक तपस्या को देखकर तुम्हारे पिता बहुत दु:खी और नाराज होते थे । तब एक दिन तुम्हारी तपस्या और पिता की नाराजगी को देखकर नारद जी तुम्हारे घर पधारे ।

तुम्हारे पिता द्वारा आने का कारण पूछने पर नाराद जी बोले - 'हे गिरिराज! मैं भगवान् विष्णु के भेजने पर यहाँ आया हूं । आपकी कन्या की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर वह उससे विवाह करना चहाते है ।इस बारे में मैं आपकी राय जानना चहाता हूं ।'

नारदजी की बात सुनकर पर्वतराज अति प्रसन्नता के साथ बोले - ' श्रीमान् ! यदि स्वयं विष्णु मेरी कन्या का वरण करना चाहते है तो मुझे क्या अपत्ति हो सकती है । वे तो साक्षार्त ब्रह्म है । यह तो हर पिता की इच्छा होती है कि उसकी पुत्री सुख-संपदा से युक्त पति के घर की लक्ष्मी बने ।'

नारदजी तुम्हारे पिता की स्वीकृति पाकर विष्णुजी के पास गए और उन्हे विवाह तय होने का समाचार सुनाया । परन्तु जब तुम्हे इस विवाह के बारे में पता चला तो तुम्हारे दु:ख का ठिकाना ना रहा । तुम्हे इस प्रकार से दु:खी देखकर तुम्हारी एक सहेली ने तुम्हारे दु:ख का कारण पूछने पर तुमने बताया - 'मैनें सच्चे मन से भगवान् शिव का वरण किया है, किन्तु मेरे पिता ने मेरा विवाह विष्णु जी के साथ तय कर दिया है । मैं विचित्र धर्मसंकट में हूं । अब मेरे पास प्राण त्याग देने के अलावा कोई और उपाय नहीं बचा ।'

क्रमशः

तुम्हारी सखी बहुत ही समझदार थी । उसने कहा - 'प्राण छोड़ने का यहां कारण ही क्या है? संकट के समय धैर्य से काम लेना चाहिए । भारतीय नारी के जीवन की सार्थकता इसी में है कि जिसे मन से पति रूप में एक बार वरण कर लिया, जीवनपर्यन्त उसी से निर्वाह करे । सच्ची आस्था और एकनिष्ठा के समक्ष तो भगवान् भी असहाय हैं । मैं तुम्हे घनघोर वन में ले चलती हूं जो साधना थल भी है और जहां तुम्हारे पिता तुम्हे खोज भी नहीं पाऐंगे । मुझे पूर्ण विश्वास है कि ईश्वर अवश्य ही तुम्हारी सहायता करेंगे ।'

तुमने ऐसा ही किया । तुम्हारे पिता तुम्हे घर में ना पाकर बड़े चिंतित और दु:खी हुए । वह सोचने लगे कि मैनें तो विष्णु जी से अपनी पुत्री का विवाह तय कर दिया है । यदि भगवान् विष्णु बारात लेकर आ गए और कन्या घर पर नहीं मिली तो बहुत अपमान होगा , ऐसा विचार कर पर्वतराज ने चारों ओर तुम्हारी खोज शुरु करवा दी । इधर तुम्हारी खोज होती रही उधर तुम अपनी सहेली के साथ नदी के तट पर एक गुफा मे मेरी आराधना में लीन रहने लगीं । भाद्रपद तृतीय शुक्ल को हस्त नक्षत्र था । उस दिन तुमने रेत के शिवलिंग का निर्माण किया । रात भर मेरी स्तुति में गीत गाकर जागरण किया तुम्हारी इस कठोर तपस्या के प्रभाव से मेरा आसन हिल उठा और मैं शीर्घ ही तुम्हारे पास पहुँचा और तुमसे वर माँगने को कहा तब अपनी तपस्या के फलीभूत मुझे अपने समक्ष पाकर तुमने कहा - ' मैं आपको सच्चे मन से पति के रुप में वरण कर चुकी हूँ । यदि आप सचमुच मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर यहाँ पधारे है तो मुझे अपनी अर्द्धांगिनी के रुप मे स्वीकार कर लीजिए ।'तब 'तथास्तु' कहकर मैं कैलाश पर्वत पर लौट गया प्रात: होते ही तुमने पूजा की समस्त सामग्री नदी में प्रवाहित करके अपनी सखी सहित व्रत का वरण किया । उसी समय गिरिराज अपने बंधु-बांधवों के साथ तुम्हे खोजते हुए वहाँ पहुंचे । तुम्हारी दशा देखकर अत्यन्त दु:खी हुए और तुम्हारी इस कठोर तपस्या का कारण पूछा ।तब तुमने कहा - 'पिताजी मैनें अपने जीवन का अधिकांश वक्त कठोर तपस्या मे बिताया है। मेरी इस तपस्या के केवल उद्देश्य महादेवजी को पति रुप में प्राप्त

क्रमश:

करना था । आज मैं अपनी तपस्या की कसौटी पर खरी उतर चुकी हूं । चूकिं आप मेरा विवाह विष्णुजी से करने का निश्चय कर चुके थे, इसीलिए मैं अपने आराध्य की तलाश में घर से चली गई । अब मैं आप के साथ घर इसी शर्त पर चलूंगी कि आप मेरा विवाह महादेव जी के साथ ही करेंगे। पर्वतराज ने तुम्हारी इच्छा स्वीकार कर ली और तुम्हे घर वापस ले आए । कुछ समय बाद उन्होने पूरे विधि-विधान के साथ हमारा विवाह किया।
भगवान् शिव ने आगे कहा - ' हे पार्वती ! भाद्रपद की शुक्ल तृतीया को तुमने मेरी आराधना करके जो व्रत किया था, उसी के परिणाम स्वरुप हम दोनों का विवाह संभव हो सका । इस व्रत का महत्त्व यह है कि मैं इस व्रत को पूर्ण निष्ठा से करने वाली प्रत्येक स्त्री को मनवांछित फल देता हूं । इस व्रत को 'हरतालिका' इसलिए कहा जाता है क्योकिं पार्वती की सखी उन्हे पिता और प्रदेश से हर कर जंगल में ले गई थी । 'हरत' अर्थात हरण करना और 'आलिका' अर्थात सखी ।
भगवान् शिव ने पार्वती जी से कहा कि इस व्रत को जो भी स्त्री पूर्ण श्रद्धा से करेगी उसे तुम्हारी तरह अचल सुहाग प्राप्त होगा ।

समाप्त

होली - पूजन विधि एवं सामग्री

होलिका दहन तो रात्रि में होता है, परन्तु महिलाओं द्वारा सामूहिक होली की पूजा दिन में दोपहर से लेकर शाम तक की जाती है ।
पहले जमीन पर गोबर और जल से चौका लगाया जाता है । चौका लगाने के बाद एक सीधी लकड़ी (डण्डा) के चारों तरफ बड़कुला (गुलरी) की माला लगा दें ।
उन मालाओं के आसपास गोबर की ढाल, तलवार, खिलौना आदि रख दें ।
फिर जो पूजन का समय निश्चत हो उस समय जल, रोली, मौली, चावल, ढाल, फूल, गुलाल, गुड़, नारियल, कच्चे सूत की पिण्डी आदि से पूजन करने के बाद ढाल, तलवार अपने घर में रख लें । चार जेलमाला (गुलेरी की माला) अपने घर में पितर जी, हनुमान जी, शीतला माता तथा घर के नाम की उठाकर अलग रख दें ।
यदि आपके घर में होली न जलती हो तो सब ओर यदि जलती हो तो एक माला, ऊख, पूजा की समस्त सामग्री, कच्चे सूत की कुकड़ी, जल का लोटा, नारियल, बूटे (हरे चने की डाली), पापड़ आदि सब सामान, जिस स्थान पर होली जलती हो वहां ले जाएं ।
वहां जाकर डंडी होली का पूजन करें । जेलमाला, नारियल आदि चढ़ा दें । फिर परिक्रमा देकर पापड़, बूटे आदि होली जलने पर भुन लें ओर बांट कर खा लें । ऊख घर पर वापस ले आएं ।
यदि घर पर होली जलाएं तो गांव या शहर वाली होली में से ही अग्नि लाकर घर होली जलाएं । घर की होली में अग्नि लगाते ही उस लकड़ी को बहार निकाल लें । इस ड़डे को भक्त प्रहलाद मानते हैं ।
स्त्रियां होली जलते ही एक लोटे से सात बार जल का अर्ध्य देकर रोली अक्षत चढायें । फिर होली के गीत तथा बधाई गाएं । पुरूष घर की होली में बूटे और जौ के बाल, पापड़ आदि भूनकर तथा उन्हे सबमें बांटकर खा लें । पूजन के बाद बच्चे और पुरूष रोली से तिलक लगाएं तथा छोटे अपने से बड़ो के पांव छूकर आर्शीवाद लें ।
इसके पूर्व सर्वप्रथम होली के दिन स्नान आदि से निवृत होकर पहले हनुमानजी, भैरोंजी आदि देवताओं की पूजा करें । फिर उन पर जल, रोली, मौली, चावल, फूल, प्रसाद, गुलाल, नारियल, चंदन आदि चढ़ाए । दीपक से आरती करके सबको दण्डवत् प्रणाम करें । फिर सबके रोली से तिलक लगा दें ओर जिन देवताओं को आप मानते हों उनकी पूजा करें ।
फिर थोड़े से तेल को सब बच्चों का हाथ लगाकर किसी चौराहे पर भैरोजी के नाम से एक ईंट पर चढ़ा दें ।

होली की कथा

बहुत पुरानी बात है - हिरण्यकश्यप नाम का एक राक्षस था । उसके पुत्र का नाम प्रहलाद था । प्रहलाद भगवान् का परम् भक्त था । परन्तु उसका पिता भगवान् को अपना शत्रु मानता था । वह अपने राज्य में किसी को भी ईश्वर का नाम लेने देता था ।

हिरण्यकश्यप ने घोर तपस्या से विपुल शक्ति का संग्रहकर देवताओं को कष्ट देना प्रारम्भ किया । इंन्द्रासन पर भी अपना अधिकार कर लिया और आनंद पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा ।

विष्णु से विशेष विद्वेष था । सम्भवत: इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप उसके पुत्र प्रहलाद में विष्णु के प्रति भक्ति की भावना जाग्रत हुई । एक बार हिरण्यकश्यप जब अपने पुत्र की शिक्षा के संबंध में जानने के लिए उसके गुरू के पास गया तप उस अपने पुत्र की भक्ति भावना का ज्ञान हुआ । उसने अपने पुत्र को ईश्वर का नाम लेने से मना किया परन्तु प्रहलाद को ईश्वर भजन से न रोक सका ।

इस पर क्रोधित होकर उसने प्रहलाद को सर्पो की कोठरी में बंद करवाया, पहाड़ से गिरवाया, हाथी के सामने डलवाया, परन्तु वह उस भक्त का कुछ ना बिगाड़ पाया । अंत मे उसने आदेश दिया कि मेरी बहन होलिका को बुलाओ और उससे कहो कि वह प्रहलाद को अग्नि मे लेकर बैठ जाए, जिससे प्रहलाद जल कर मर जाएगा । होलिका को ऐसा वरदान मिला हुआ था कि अग्नि उसको जला नही सकती । अत: भाई की आज्ञा से वह भक्त प्रहलाद को गोद में लेकर आग के ऊपर बैठ गई, लेकिन प्रहलाद का बाल भी बाँका न हुआ और होलिका जल कर भस्म हो गई ।भगवान् की कृपा से अग्नि प्रहलाद के लिए बर्फ के सामान शीतल हो गई ।

तभी से होलिका जलाई जाती है ।

इधर जब हिरण्यकश्यप को पता लगा कि प्रहलाद तो बच गया और होलिका जलकर भस्म हो गई है तो अंत में निराश हिरण्यकश्यप ने क्रोधित होकर प्रहलाद को एक लोहे के खम्भे से बाँध दिया और पूछा - 'बोल, कहां है तेरा भगवान्, जिसकी तू हमेशा रट लगाए रहता है ?' प्रहलाद ने निडर होकर जवाब दिया - 'सभी जगह तो है भगवान्।' उसके पिता ने कहा - 'क्या इस खम्भे में भी है ? यदि है तो मैं अभी तलवार से तुम्हारे दो टुकड़े करता हूं, देखूं वह तुम्हे कैसे बचाता है ?'

यह कहकर जैसे ही हिरण्यकश्यप ने प्रहलाद को मारने के लिए तलवार उठाई भगवान् विष्णु ने खम्भे को फाड़ नृसिंह रूप में अवतरित हो अपनी जांघो पर बैठाकर हिरण्यकश्यप का नखों से पेट फाड़कर वध कर दिया और प्रहलाद के प्राणो की रक्षा की ।

समाप्त

कजली तीज (सातूड़ी तीज)

श्रावण मास की तीज को हरियाली तीज का त्यौहार मनाया जाता है । उसी प्रकार से भादों मास के कृष्ण पक्ष की तीज को कजरी तीज का त्यौहार मनाया जाता है । इसे "बूढी तीज" भी कहा जाता है । इस दिन महेश्वरी वैश्य गेहुं, जौ, चने और चावल के सत्तु में घी, मेवा डालकर विभिन्न प्रकार के पकवान बनाते है तथा चन्द्रोदय के बाद उसी का भोजन करते है । इसलिए इसे "सातुड़ी तीज" अथवा "सतवा तीज" भी कहा जाता है ।

इस दिन विशेषतौर पर गाय की पूजा करी जाती है । आटे की सात लोइयां बनाकर उन पर घी, गुड़ रखकर गाय को खिलाने के बाद ही भोजन किया जाता है । कुछ लोग इस दिन हरियाली तीज की तरह सिंजारे भेजते है । इस दिन बहुएं अपनी सास को चीनी और रूपये का भायना निकालकर देती हैं ।

यह त्यौहार खासतौर पर पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में मनाया जाता है । कजरी की प्रतिद्वंद्विता भी होती है । नावों पर चढ़कर लोग कजरी गीत गाते हैं । ब्रज के मल्हारों की ही तरह मिर्जापुर तथा बनारस का यह प्रमुख वर्षागीत माना जाता है । इस दिन घरों में मिठाई तथा पकवान बनाएं जाते है । झूले भी डाले जाते है । ग्रमीण भाषा में इसे "तीजा" कहा जाता है ।

कजली तीज कथा

एक साहूकार के चार बेटे और बहुएं थीं । तीनों बड़ी बहुएं भरे पूरे परिवार से थी । परन्तु छोटी बहू के मायके में कोई नहीं था । बड़ी तीज पर तीनों बहुओं के घर से सत्तू आया, लेकिन छोटी बहू का मन इस विचार से दु:खी हो गया कि उसके लिए सत्तू कहाँ से आएगा । उसने अपने पति से कहा कि - "मेरे लिए भी सत्तू लेकर आना, चाहे कुछ भी करना पड़े ।"

उसके पति ने उसके लिए सत्तू लाने का पूरा प्रयास किया परन्तु सफलता नहीं मिली । जब वह शाम को घर लौटा और अपनी पत्नि का उदास चेहरा देखा तो वह रात भर सो ना सका । दूसरे दिन तीज थी । वह रात को अंधेरे में ही घर से निकल गया और एक बनिये की दुकान में घुस गया। वहां चने की दाल लेकर चक्की में पीसना शुरू कर दिया । चक्की की आवाज सुनकर बनिये के घरवाले जाग गए । उन्होने उसे पकड़कर पूछा - "यहां क्या कर रहे हो।"

इस पर उसने जवाब दिया कि - "कल सातूड़ी तीज है और मेरी पत्नि के पीहर में कोइ! नहीं है, अत: उसके लिए सत्तू चोरी करने आया हूं । आपकी दुकान में दाल, चीनी और घी सभी था, इसलिए आपके यहां से सत्तू बनाकर ले जा रहा था ।"

यह सुनकर बनिया बोला - "तुम अपने घर जाओ । आज से तुम्हारी पत्नि हमारी धर्म बेटी हुई ।"

वह घर लौट आया । दूसरे दिन सवेरे ही बनिये ने नौकरों के साथ चार तरह के सत्तू के पिंड़े, साड़ी और अन्य पूजा का सामान उसके घर भिजवा दिया ।

जेठानियां यह सब देखकर कहने लगीं कि - "तुम्हारे पीहर में तो कोई नहीं है, फिर यह सब कहां से आया।"

तब देवररानी ने उन्हे सारी बात बताकर कहा की यह सब मेरे धर्म पिता ने भेजा है ।

पूजन विधि :

कार्तिक मास के कृष्ण-पक्ष की चतुर्थी तिथि को करवा चौथ अथवा करक-चतुर्थी के नाम से जाना जाता है। इस दिन सौभाग्यवती स्त्रियो के लिए गणेशजी की पूजा करने का विधान है। भारतीय वाङ्मय मे गणेशजी की पूजा किसी भी कार्य के प्रारम्भ मे करने की प्रथा सदैव से ही रही है, क्योकि सभी देवो मे इन्हे अनादि देव माना गया है। अत: गणेश जी की पूजा सर्व प्रथम होती है।

भगवान् शिव-पार्वती ने भी अपने विवाह-काल मे सर्व प्रथम गणेश जी की पूजा की थी। इसका उल्लेख कवि-कुल-सम्राट गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने महाकाव्य मे किया है।

मुनि अनुशासन गनपतिहिं, पूजे शम्भु भवानि । अस सुनि संशय करिय नहिं, सुर अनादि जिय जानि ।

गणेश जी विध्न विनाशक के रुप मे माने जाते है, इसलिये किसी भी कार्य की निर्विध्न पूर्णता के लिए इनकी पूजा को आवश्यक कहा गया है । करवा चौथ के दिन व्रती को नित्य कर्म से निर्वत होकर गणेश जी की पूजा के लिए मन मे दृढ. संकल्प करनइ चाहिए कि, मै आज दिन-भर निराहार रहकर गयेश जी के ध्यान मे तत्पर रहुँगी और रात्रि मे जब तक चन्द्रोदय नही होगा तब तक निर्जल व्रत करूँगी ।

व्रत के दिन सायंकाल मे घर की दिवार को गोबर से लीपकर उसके ऊपर गेरू की स्याही बनाकर उससे गणेश, पार्वती, शिव कार्तिकेय आदि देवो की प्रातिमा बनानी चाहिए। साथ ही एक वटवृक्ष (बरगद का पेड़), मानव की आकृति भी उस दीवार पर चित्रित करनी चाहिए।

क्रमश:

उस मानवकृति के हाथ मे छलनी भी होनी चाहिए। पास मे उदित होते चाँद की आकृति भी उस दीवार पर चत्रित करनी चाहिए।
पूजन-काल मे उस दीवार के नीचे दो करवो मे जल भरकर रखना चाहिए। उस करवे के गले मे नारा लपेटकर सिदूँर से रंगना चाहिए और उसकी टोंटी मे सरई की सींक लगानी चाहिए। तदानन्तर करवे के ऊपर चावल से भरा हुआ कटोरा रखकर सुपारी भी रखानी चाहिए। नैवेद्य के रूप मे उस पर चावल का बना हुआ लड्डू(शकरपिण्डी) रखे। इसके अतिरिक्त प्रतिमा के पास पूड़ी, खीर भी नैवेद्य के रूप मे अर्पित करे। इसके अतिरिक्त ऋतु फल के अनुसार सिंघारा, केला, नारंजी, गन्ना आदि, जो कुछ भी पदार्थ उपलब्ध हो उसे अर्पित कर भक्तिपूर्वक कथा श्रवण करे। कथा के अन्त मे, पूर्व से स्थापित उन करवो को दायिनी ओर से बाँयी ओर एवं बाँयी ओर रखे हुए करवे को दाहिनी ओर घुमाकर रखे।इस प्रक्रिया को लोक-भाषा मे "करवा फेरना" कहते है। इस प्रकार विधि-विधान पूर्वक पूजन करने से ब्रती के ऊपर गणेश जी की प्रसन्नता होती है। और उसके फलस्वरूप उसे मनवांछित फल की प्राप्ति एवं अखण्ड सौभाग्यता मिलती है।

साहूकार-कन्या की कथा

एक साहुकार के सात पुत्र और एक पुत्री थी। कार्तिक कृष्ण चतुर्थी के दिन साहुकार की पत्नी, उसकी सभी बहुओ एवं कन्या ने संयुक्त रूप व्रत का अनुष्ठान किया। पूजन के पश्चात् साहूकार के सभी पुत्र भोजन करने बैठे। भोजन करते समय साहूकार के पुत्रो ने अपनी बहन से भी भोजन करने का आग्रह किया।

बहन ने उत्तर दिया- तुम सभी लोग भोजन कर लो। मै चन्द्रोदय होने के पश्चात् अर्घ्य दे लेने के बाद ही भोजन करूँगी। बहन की बात सुनकर भाइयो ने कुछ दूरी पर मैदान मे अग्नि जला दी और उस अग्नि के प्रकाश को छलनी मे-से दिखाकर कहा- बहन! देखो, सामने चन्द्रमा निकल आया है। अब तुम भी भोजन कर लो। भाई की बात सुनकर उस कन्या ने अपनी भाभियो से भी यही भात दुहिरायी। उसकी भाभियाँ इस कपट-पूर्ण बात को जानती थी। उन्होने उससे कहा- अभी चाँद नही निकला है। तुम्हारे भाइयो ने अग्नि के प्रकाश-द्वारा तुम्हे चन्द्रमा के उदित होने का भास कराया है। परन्तु अपनी भाभियों ने उस कन्या ने कोई ध्यान न देकर अर्घ्य दे डाला और उसके भाद भोजन भी कर लिया।

उसके इस कृत्य से गणपति भगवान् अत्याधिक रूष्ट हो गये । जिसके फलस्वरूप उस कन्या का पति भयंकररोग से ग्रस्त हो गया । चिकित्सा आदि कराने मे संचित धन नष्ट हो गया और वह अत्यन्त शोकाकुल होकर कष्ट भोगने लगी।

क्रमश:

कष्ट भोगने के बाद जब उसे अपनी भूल का ज्ञान हुआ तो वह बारम्बार मन मे पश्चात्ताप करने लगी। उसने अपनी भूल के लिए गणेश जी से क्षमा -याचना की और व्रत को पुन: भक्तिपूर्वक पूरा किया। उसकी आराधना से गणेश जी प्रसन्न हो गये और सभी कष्टो का निवारण कर उसे धन-धान्य से पूर्ण कर दिया। अतएव इस व्रत को जो प्राणी विधिपूर्वक सम्पन्न कर लेता है उसकी सभी आशएँ पूरी हो जाती है।

इस प्रकार कथा श्रवण करने के पश्चात् चन्द्रोदय हो जाने पर चन्द्र देव को अर्घ्य-प्रदान करना चाहिए। अर्घ्य-दान काल मे "ॐ चन्द्राय नम:" इस मन्त्र का उच्चारण भी करते रहना चाहिए। इसके अनन्तर चार बार परिकमा कर चनद्रदेव को दण्डवत करें।इतना कर लेने के पश्चात् घर क वृद्ध जनो को भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। पूजाकाल मे व्यवहृत पदार्थ-अर्पित किये गये नैवेद्य आदि को ब्राह्मणो को दान कर देना चाहिए।

इस प्रकार भक्तिभाव से जो लोग इस चतुर्थी व्रत को करते है उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती है।

करवा-चौथ उद्यापन-विधि :

किसी भी व्रत को पूर्णता पर ही उद्यापन करनइ चाहिए। व्रत की तिथि पर ही उद्यापन किया जाता है। जिस वर्ष मे उद्यापन करना हो उस वर्ष की कार्तिक कृष्ण चतुर्थी के दिन व्रत समाप्त होने के पश्चात् एक थाली को कुमकुम से रँजित कर चार-चार की संख्या मे पूड़ी और उस पर शक्कर रखकर तेरह स्थानो पर लगा दें और उस पर एक नयी साड़ी, ब्लाउज, दक्षिणा आदि रखकर अपनी सास को अर्पण कर दें। जिनकी सास न हो उन्हें चाहिए की, वे किसी सधवा ब्राह्मणी को दान कर दें। सम्पूर्ण कृत्य प्रतिपादित करने के अनन्तर ही स्वयं अन्न ग्रहण करे। ऐसा करने से उनका सौभाग्य अक्षय बना रहता है।

मंगला गौरी व्रत

मंगला गौरी व्रत श्रावण मास में आने वाले सभी मंगलवारों को किया जाता है । इस व्रत में गौरी जी के पूजन का विधान है । चूंकि यह मंगलवार को किया जाता है, इसीलिए इसे 'मंगला गौरी व्रत' कहा जाता है । यह व्रत विशेषतौर पर स्त्रियों द्वारा किया जाता है ।

पूजन विधान :

इस दिन सुबह स्नानादि करके एक चौकी पर एक सफेद और एक लाल कपड़ा बिछाएं । सफेद कपड़े पर नवग्रहों के नाम की चावल की नौ ढेरियां तथा लाल कपड़े पर षोडश मातृका की गेहूं की सोलह ढेरियां बनाए । उसी चौकी के एक तरफ चावल और फूल रखकर गणेश जी की मूर्ति की स्थापना करें । चौकी के एक कोने पर गेहूं की एक छोटी सी ढेरी रखकर उसपर जल से भरा कलश रखें। कलश में आम के इस छोटी सी शाखा डाल दें । फिर आटे का एक चार मुंह वाला दीपक और सोलह धूप बत्ती जलाएं । फिर सबसे पहले गणेश जी का पूजन करें । उम पर चंदन, रोली, पान, सुपारी, सिंदुर, पंचामृत, जनेऊ, चावल, फूल, सुपारी, बेल पत्ते, इलायची, मेवा, प्रसाद तथा दक्षिणा चढ़ाकर गणेश जी की आरती करें । इसके बाद कलश का पूजन करें ।
एक मिट्टी के सकोरे में आटा रखकर उस पर सुपारी रखें और दक्षिणा आटे में दबा दें । फिर बेल पत्ते चढाएं । अब गणेश जी की तरह ही सब सामग्री के साथ कलश का पूजन करें । परन्तु कलश पर सिंदूर तथा बेल पत्ते ना चढाएं ।
इसके उपरान्त नवग्रहों अर्थात चावल की नौ ढेरियों की पूजा करें । उसके बाद षोडश माता की बनी हुई सोलह गेहुं की ढेरियों की पूजा करें । इन पर रोली व जनेऊ ना चढाएं । मेंहदी, हल्दी तथा सिंदूर चढाएं । इनका पूजन भी कलश तथा गणेश जी के पूजन की तरह ही करं ।
अंत में मंगला गौरी का पूजन करें । मंगला गौरी के पूजन के लिए एक थाली में चकला रख लें और उस पर मंगला गौरी की मिट्टी की मूर्ति बनाएं या मिट्टी की पाँच डलियां रखकर उन्हे मंगला गौरी मान लें । आटे की लोई बनाकर रख लें । सबसे पहले मंगला गौरी को पंचामृत (जल, दूध, घी, दही और चीनी) बनाकर स्नान कराएं । उसके उपरान्त उन्हे वस्त्र पहनाएं फिर नथ, काजल, सिंदूर, चंदन, हल्दी, मेंहदी आदि से श्रृंगार करें ।
उसके बाद १६ प्रकार के फूल, १६ माला, १६ प्रकार के पत्ते, १६ फल, १६ लौंग, १६ इलायची, १६ आटे के लड्डू, १६ जीरा, १६ धनिया, १६ बार सात तरह का अनाज, ५ प्रकार का मेवा, रोली, मेंहदी, काजल, सिंदूर, तेल, कंधा, शीशा, १६ चूड़ियाँ, एक रूपया और वेदी दो, उन पर दक्षिणा चढ़ाकर मंगला गौरी की कथा सुनें । चौमुख दीपक बनाकर उसमें १६ तार की चार बत्ती बनाएं और कपूर से आरती उतारें । इसके बाद १६ लड्डुओं का भायना अपनी सास को देकर आशीर्वाद लें । इसके बाद बिना नामक की एक ही अनाज की रोटी कइ भोजन कर लें । इसके दूसरे दिन मंगला गौरी को समीप के कुंए, तालाब, नदी आदि में विसर्जित करके भोजन करें ।

उद्यापन विधि

मंगला गौरी का उद्यापन सावन के सोलह या बीस मंगलवार के व्रत करने के बाद करना चाहिए। उद्यापन के दिन कुछ ना खाएं। इस दिन ब्राह्मण द्वारा हवन कराकर कथा सुनने और ब्राह्मण को भोजन कराकर दक्षिणा दें। साथ ही अपनी सास को कपड़ा, सुहाग पिटारी रूपये देकर आशीर्वाद प्राप्त करें। अन्त में सबको भोजन कराने के उपरान्त स्वयं भी भोजन ग्रहण करें।

पूजा की विधि एवं विधान

श्री दुर्गा पूजा विशेष रूप से वर्ष में दो बार चैत्र व अश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होकर नवमी तक होती है। देवी दुर्गा के नव(९) स्वरूपों की पूजा होने के कारण 'नवदुर्गा' तथा ९ दिन में पूजा होने से नवरात्र कहा जाता है । चैत्र मास के नवरात्र "वार्षिक नवरात्र" तथा आश्विन मास के नवरात्र "शारदीय नवरात्र" कहलाते है।

भगवती दुर्गा का साधक भक्त स्नानादि से शुद्ध होकर, शुद्ध वस्त्र पहनकर पूजा स्थल को सजाये । मण्डप में श्री दुर्गा की मूर्ति स्थापित करें । मूर्ति के दायीं ओर कलश की स्थापन कर ठीक कलश के सामने मिट्टी और रेत मिलाकर जौं बो दें । मण्डप के पूर्व कोने में दीपक की स्थापना करे । पूजन मे सर्वप्रथम गणेश जी का पूजन करके अन्य देवी-देवताओ का पूजन करें । उसके बाद जगदम्बा का पूजन करें ।

पूजन सामग्री : जल,चन्दन, रोली, कलावा, अक्षत, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, पान, सुपारी, लौंग, इलायची, आसन, चौकी, पूजन पात्र, आरती कलशादि ।

कुमारी-पूजन :

आठ या नौ दिन तक इस प्रकार पूजा करने के बाद महाष्टमी या रामनवमी को पूजा करने के बाद कुमारी कन्याओ को खिलाना चाहिए । इस कुमारियों की संख्या ९ हो तो अति उत्तम, नही तो कम से कम दो होनी चाहिए । कुमारियों की आयु १ से १० वर्ष तक होनी चाहिए। क्रमश: इन सब कुमारियों के नमस्कार मंत्र ये है :

(१) कुमार्य्यै नम: (२) त्रिमूर्त्यै नम: (३) कल्याण्यै नम: (४) रोहिण्यै नम: (५) कालिकायै नम: (६) चाण्डिकायै नम: (७) शाम्भव्यै नम: (८) दुर्गायै नम: (९) सुभाद्रायै नम: ।

पूजन करने के बाद जब कुमारी देवी भोजन कर लें तो उनसे अपने सिर पर अक्षत छुड़वायें और उन्हे दक्षिणा दें । इस तरह करने से महामाया भगवती अत्यन्त प्रसन्न होकर मनोरथ पूर्ण करती हैं।

Copyright(c) indif.com

नवरात्री व्रत कथा

प्राचीन काल में चैत्र वंशी सुरथ नामक एक राजा राज करते थे। एक बार उनके शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया और उन्हे युद्ध में हरा दिया । राजा को बलहीन देखकर उसके दुष्ट मंत्रियों ने राजा की सेना और खजाना अपने अधिकार में कर लिया। जिसके परिणाम स्वरूप राजा सुरथ दुखी और निराश होकर वन की ओर चले गए और वहाँ महर्षि मेधा के आश्रम में रहने लगे ।

एक दिन आश्रम के निकट राजा की भेंट समाधि नामक एक वैश्य से हुई, जो अपनी स्त्री और पुत्रों के दुर्व्यवहार से अपमानित होकर वहाँ निवास कर रहा था। समाधि ने राजा को बताया कि वह अपने दुष्ट स्त्री-पुत्रादिकों से अपमानित होने के बाद भी उनका मोह नहीं छोड़ पा रहा है। उसके चित्त को शान्ति नहीं मिल पा रही है । इधर राजा का मन भी उसके अधीन नहीं था। राज्य, धनादिक की चिंता अभी भी उसे बनी हुई थी, जिससे वह बहुत दुखी थे । तदान्तर दोनों महर्षि मेधा के पास गए । महर्षि मेधा यथायोग्य सम्भाषण करके दोनों ने वार्ता आरम्भ की । उन्होने बताया - 'यद्यपि हम दोनों अपने स्वजनों से अत्यन्त अपमानित और तिरस्कृत होकर यहाँ आए हैं, फिर भी उनके प्रति हमारत मोह नहीं छुटता । इसका क्या कारण है ?'

महर्षि मेधा ने कहा - "मन शक्ति के अधीन होता है । आदिशक्ति भगवती के दो रूप है - विद्या और अविद्या । विद्या ज्ञान का स्वरूप है तथा अविद्या अज्ञान का स्वरूप है । अविद्या मोह की जननी है किंतु जो लोग मां भगवती को संसार का आदि कारण मानकर भक्ति करते है, मां भगवती उनहे जीवन मुक्त कर देती है ।"

क्रमश:

राजा सुरथ ने पूछा - "भगवन् ! वह देवी कौन सी है, जिसको आप महामाया कहते है ? हे ब्रह्मन्! वह कैसे उपन्न हुइ! और उसका क्या कार्य है? उसके चरित्र कौन-कौन से है? प्रभो! उसका प्रभाव, स्वरूप आदि सबके बारे में विस्तार में बताइये ।"
महर्षि मेधा बोले - राजन्! वह देवी तो नित्यास्वरूप है, उनके द्वारा यह संसार रचा गया हैं। तब भी उसकी उत्पति अनेक प्रकार से होती है, जिसे मैं बताता हूँ । संसार को जलमय करके जब भगवान् विष्णु योगनिद्रा का आश्रय लेकर, शेरशय्या पर सो रहे थे, तब मधु-कैटभ नाम के असुर उनके कानों के मैल से प्रकट हुए और वह श्री ब्रह्माजी को मारने के लिए तैयार हो गए। उनके इस भयानक रूप को देखकर ब्रह्माजी ने अनुमान लगा लिया कि भगवान विष्णु के सिवाय मेरा कोई रक्षक नहीं है । किंतु विडम्बना यह थी कि भगवान सो रहे थे ।
तब उन्होने श्री भगवान को जगाने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली योगनिद्रा की स्तुति की। परिणामत: तमोगुण अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रा भगवान विष्णु के नेत्र, नासिका, मुख, बाहु और हृदय से निकलकर बह्माजी के सामने खड़ी हो गई। योगनिद्रा के निकलते ही श्रीहीर तुरन्त जाग उठे ।उन्हे देखकर राक्षस क्रोधित हो उठे और युद्ध के लिए उनकी तरफ दौड़े । भगवान विष्णु और उन राक्षसों में पाँच हजार वर्षों तक युद्ध हुआ। अंत में दोनों राक्षसो ने भगवान की वीरता से प्रसन्न होकर उन्हे वर माँगने को कहा ।
भगवान ने कहा - यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथों मर जाओ। बस, इतना ही वर मैं तुम से माँगता हूँ ।" महर्षि मेधा बोले - इस तरह से जब वह धोखे में आ गए और अपने चारों ओर जल ही जल देखा तो भगवान से कहने लगे - जहाँ पर जल न हो, उसी जगह हमारा वध कीजिए ।"तथास्तु" कहकर भगवान श्रीहरि ने उन दोनों को अपनी जांघ पर लिटा कर सिर काट डाले। महर्षि मेधा बोले - 'इस तरह से यह देवी श्री ब्रह्माजी के स्तुति करने पर प्रकट हुई थी, अब तुम से उनके प्रभाव का वर्णन करता हूँ, सो सुनो ।

क्रमश:

प्रचीन काल में देवताओं के स्वामी इंद्र और असुरों के स्वामी महिषासुर के बीच पूरे सौ वर्ष तक घोर युद्ध हुआ था। इस युद्ध में देवताओं की सेना परास्त हो गई और इस प्रकार देवत्ताओं को जीत महिषासुर इन्द्र बन बैठा था । तब हारे हुए देवता श्री ब्रह्माजी को साथ लेकर भगवान शंकर व विष्णु जी के पास गए और अपनी हार का सारा वृत्तान्त उन्हे कह सुनाया। उन्होने महिषासुर के वध के उपाय की प्रार्थना की। साथ ही अपना राज्य वापस पाने के लिए उनकी कृपा की स्तुति की। देवताओं की बातें सुनकर भगवान विष्णु और शंकर जी को दैत्यों पर बड़ा गुस्सा आया। गुस्से मे भरे हुए भगवान विष्णु के मुख से बड़ा भारी तेज निकला और उसी प्रकार का तेज भगवान शंकर, ब्रह्माजी और इन्द्र आदि दूसरे देवताओं के मुख से प्रकट हुआ, जिससे दसों दिशाएं जलने लगी। अंत में यही तेज एक देवी के रूप में परिवर्तित हो गया।

देवी ने सभी देवताओं से आयुध, शक्ति तथा आभूषण प्राप्त कर उच्च-स्वर से गगनभेदी गर्जना की। जिससे समस्त विश्व में हलचल मच गई पृथ्वी, पर्वत आदि डोल गए। क्रोधित महिषासुर दैत्य सेना लेकर इस सिंहनाद की ओर दौड़ा। उसने देखा की देवी की प्रभा से तीनों लोक प्रकाशित हो रहे है। महिषासुर ने अपना समस्त बल और छल लगा दिया परन्तु देवी के सामने उसकी एक न चली। अंत में वह देवी के हाथों मारा गया। आगे चलकर यही देवी शुम्भ-निशुम्भ नामक असुरों का वध करने के लिए गौरी देवी के शरीर से उत्पन्न हुई।

उस समय देवी हिमालय पर विचर रही थी। जब शुम्भ-निशुम्भ के सेवकों ने उस परम मनोहर रूप वाली अम्बिका देवी को देखा और तुरन्त अपने स्वामी के पास जाकर कहा - "महाराज! दुनिया के सारे रत्न आपके अधिकार में है। वे सब आपके यहाँ शोभा पाते है । ऐसे ही एक स्त्री रत्न को हमनें हिमालय की पहड़ियों में देखा है । आप हिमालय को प्रकाशित करने वाली दिव्य-कांति युक्त इस देवी का वरण कीजिए ।

क्रमश:

यह सुनकर दैत्यराज शुम्भ ने सुग्रीव को अपना दूत बनाकर देवी के पास अपना विवाह प्रस्ताव भेजा। देवी ने प्रस्ताव को ना मानकर कहा- "जो मुझसे युद्ध में जीतेगा । मैं उससे विवाह करूँगी ।"
यह सुनकर असुरेन्द्र के क्रोध का पारावार न रहा और उसने अपने सेनापति धूम्रलोचन को देवी को केशो से पकड़कर लाने का आदेश दिया । इस पर धूम्रलोचन साठ हजार राक्षसों की सेना साथ लेकर देवी से युद्ध के लिए वहाँ पहुँचा और देवी को ललकारनें लगा । देवी ने सिर्फ अपनी हुंकार से ही उसे भस्म कर दिया और देवी के वाहन सिंह ने बाकी असुर सेना का संहार कर डाला ।
इसके बाद चण्ड-मुण्ड नामक दैत्यों को एक बड़ी सेना के साथ युद्ध के लिए भेजा गया । जब असुर देवी को पकड़ने के लिए तलवारें लेकर उनकी ओर बढे तब देवी ने काली का विकराल रूप धारण करके उन पर टूट पड़ी । कुछ ही देर में सम्पूर्ण दैत्य सेना को नष्ट कर दिया। फिर देवी ने "हूँ" शब्द कहकर चण्ड का सिर काटकर अलग कर दिया और फिर मुण्ड को यमलोक पहुँचा दिया । तब से देवी काली की संसार में चामुण्डा के नाम से ख्याति होने लगी ।
महर्षि मेधा ने आगे बताया - चण्ड-मुण्ड और सारी सेना के मारे जाने की खबर सुनकर असरों के राजा शुम्भ ने अपनी सम्पूर्ण सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी । शुम्भ की सेना को अपनी ओर आता देखकर देवी ने अपने धनुष की टंकोर से पृथ्वी और आकाश के बीच का भाग गुँजा दिया। ऐसे भयंकर शब्द को सुनकर राक्षसी सेना ने देवी और सिंह को चारों ओर से घेर लिया । उस समय दैत्यों के नाश के लिये और देवताओं के हित के लिए समस्त देवताओं की शक्तियाँ उनके शरीर से निकलकर उन्ही के रूप में आयुधों से सजकर दैत्यों से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गई । इन देव शक्तियों से घिरे हुए भगवान शंकर ने देवी से कहा - मेरी प्रसन्नता के लिए तुम शीघ्र ही इन असुरों को मारो । इसके पश्चात् देवी के शरीर से अत्यन्त उग्र रूप वाली और सैकड़ों गीदड़ियों के समान आवाज करने वाली चण्डिका- शक्ति प्रकट हुई । उस अपराजिता देवी ने भगवान शंकर को अपना दूत बनाकर शुम्भ-

क्रमश:

निशुम्भ के पास इस संदेश के साथ भेजा - जो तुम्हें अपने जीवित रहने की इच्छा हो तो त्रिलोकी का राज्य इन्द्र को दे दो, देवताओं को उनका यज्ञ भाग मिलना आरम्भ हो जाये और तुम पाताल को लौट जाओ, किन्तु यदि बल के गर्व से तुम्हारी लड़ने की इच्छा हो तो फिर आ जाओ, तुम्हारे माँस से मेरी योनियाँ तृप्त होंगी, चूंकि उस देवी ने भगवान शंकर को दूत का कार्य में नियुक्त किया था, इसलिए वह संसार में शिवदूती के नाम से विख्यात हुई ।मगर दैत्य भला कहां मानने वाले थे । वे तो अपनी शक्ति के मद में चूर थे। उन्होने देवी की बात अनसुनी कर दी और युद्ध को तत्पर हो उठे । देखते ही देखते पुन: युद्ध छिड़ गया। किंतु देवी के समक्ष असुर कब तक ठहर सकते थे । कुछ ही वक्त में देवी ने उनके अस्त्र-शस्त्रों को काट डाला ।

जब बहुत से दैत्य काल के मुख में समा गए तो महादैत्य रक्तबीज युद्ध के लिये आगे बढ़ा । उसके शरीर से रक्त की बूँदें पृथ्वी पर जैसे ही गिरती थीं तुरन्त वैसे ही शरीर वाला तथा बलवान दैत्य पृथ्वी पर उत्पन्न हो जाता था। यह देखकर देवताओ को भय हुआ, देवताओं को भयभीत देखकर चंडिका ने काली से कहा - चामुण्डे ! तुम अपने मुख को फैलाओ और और मेरे शस्त्रघात से उत्पन्न हुए रक्त बिन्दुओं तथा रक्त बिन्दुओं से उत्पन्न हुए महा असुरों को तुम अपने इस मुख से भक्षण करती हुई तुम रणभूमि में विचरो । इस प्रकार उस दैत्य का रक्त क्षीण हो जाएगा और वह स्वयं नष्ट हो जाएगा । इस प्रकार अन्य दैत्य उत्पन्न नहीं होगें। काली से इस प्रकार कहकर चण्डिका देवी रक्तबीज पर अपने त्रिशुल से प्रहार किया और काली देवी ने अपने मुख में उसका रक्त ले लिया । काली के मुख में उस रक्त से जो असुर उत्पन्न हुए, उनको उसने भक्षण कर लिया । चण्डिका ने उस दैत्य को बज्र, बाण, खड्ग इत्यादि से मार डाला ।

महादैत्य रक्तबीज के मरते ही देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और माताएं उन असुरों का रक्त पीने के पश्चात् उद्धत होकर नृत्य करने लगीं ।

क्रमश:

रक्तबीज के मारे जाने पर शुम्भ व निशुम्भ को बड़ा क्रोध आया और अपनी बहुत बड़ी सेना लेकर महाशक्ति से युद्ध करने चल दिए । महापराक्रमी शुम्भ भी अपनी सेना सहित मातृगणों से युद्ध करने के लिए आ पहुँचा। किंतु शीघ्र ही सभी दैत्य मारे गए और देवी ने शुम्भ-निशुम्भ का संहार कर दिया। सारे संसार में शांति हो गई और देवतागण हर्षित होकर देवी की वंदना करने लगे ।
इन सब उपाख्यानों को सुनकर मेधा ऋषि ने राजा सुरथ तथा वणिक समाधि से देवी स्तवन की विधिवत व्याख्या की, जिसके प्रभाव से दोनों नदी तट पर जाकर तपस्या में लीन हो गए । तीन वर्ष बाद दुर्गा माता ने प्रकट होकर दोनों को आशीर्वाद दिया । इस प्रकार वणिक तो संसारिक मोह से मुक्त होकर आत्मचिंतन में लग गया तथा राजा ने शत्रुओं को पराजित कर अपना खोया हुआ राज वैभव पुन: प्राप्त कर लिया ।

समाप्त

पूजा विधि

सांयकाल के बाद और रात्रि आने से पूर्व का जो समय है उसे प्रदोष कहते है । व्रत करने वाले को उसी समय भगवान् शंकर का पूजन करना चाहिए ।

प्रदोष व्रत करने वाले को त्रयोदशी के दिन, दिन भर भोजन नहीं करना चाहिए । शाम के समय जब सूर्यास्त में तीन घड़ी का समय शेष रह जाए तब स्नानादि कर्मों से निवृत होकर, श्वेत वस्त्र धारण करके तत्पश्चात् सन्धया- वन्दना करने के बाद शिवजी का पूजन प्रारम्भ करें।

कथा

पूर्वकाल में पुत्रवती ब्राह्मणी थी । उसके दो पुत्र थे । वह ब्राह्मणी बहुत निर्धन थी । दैवयोग से उससे एक दिन महर्षि शाण्डिल्य के दर्शन हुए । महर्षि के मुख से प्रदोष व्रत की महिमा सुनकर उस ब्राह्मणी ने ऋषि से पूजन की विधि पूछी । उसकी श्रद्धा और आग्रह से ऋषि ने उस ब्राह्मणी को शिव पूजन का उपर्युक्त विधान बतलाया और उस ब्राह्मणी से कहा – तुम अपने दोनों पुत्रओं से शिव की पूजा कराओ । इस व्रत के प्रभाव से तुम्हे एक वर्ष के पश्चात् पूर्ण सिद्धि प्राप्त होगी ।

उस ब्राह्मणी ने महर्षि शाण्डिल्य के वचन सुनकर उन बालकों के सहित नतमस्तक होकर मुनि के चरणों में प्रणाम किया और बोली – हे ब्राह्मण, आज मैं आपके दर्शन से धन्य हो गयी हूं । मेरे ये दोनों कुमार आपके सेवक हैं । आप मेरा उद्धार कीजिए ।

उस ब्राह्मणी को शरणागत जानकर मुनि ने मधुर वचनों द्वारा दोनों कुमारों को शिवजी की आराधना विधि बतलाई । तदान्तर वे दोनों बालक और ब्राह्मणी मुनि को प्रणाम कर शिव मंदिर में चले गए । उस दिन से वे दोनों बालक मुनि के कथनानुसार नियमपूर्वक प्रदोष काल में शिवजी की पूजा करने लगे । पूजा करते हुए उन दोनों को चार महीने बीत गए । एक दिन राजसुत की अनुपस्थिति में शुचिव्रत स्नान करने नदी किनारे चला गया और वहां जल-क्रीड़ा करने लगा। संयोग से उसी समय उसे नदी की दरार में चमकता हुआ धन का बड़ा सा कलश दिखाई पड़ा । उस धनपूरित कलश को देखकर शुचिव्रत बहुत प्रसन्न हुआ । उस कलश को वह सिर पर रखकर घर ले आया ।

क्रमशः

कलश भूमि पर रखकर वह अपनी माता से बोला - हे माता, शिवजी की महिमा तो देखो । भगवान ने इस घड़े के रुप में मुझे अपार सम्पति दी हैं ।

उसकी माता घड़े को देखकर आश्चर्य करने लगी और राजसुत को बुलाकर कहा - बेटे मेरी बात सुनो। तुम दोनों इस धन को आधा -आधा बांट लो ।

माता की बात सुनकर शुचिब्रत बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु राजसुत ने अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा - हे मां, यह धन तेरे पुत्र के पुण्य से प्राप्त हुआ है । मैं इसमें किसी प्रकार का हिस्सा लेना नहीं चाहता । क्योंकि अपने किये कर्म का फल मनुष्य स्वयं ही भोगता हैं ।

इस प्रकार शिव पूजन करते हुए एक ही घर में उन्हे एक वर्ष व्यतीत हो गया । एक दिन राजकुमार ब्राह्मण के पुत्र के साथ बसन्त ऋतु में वन विहार करने के लिए गया । वे दोनों जब साथ-साथ वन से बहुत दूर निकल गए, तो उन्हे वहां पर सैकड़ों गन्धर्व कन्यायें खेलती हुई दिखाई पड़ी ।

ब्राह्मण कुमार उन गन्धर्व कन्याओं को क्रीड़ारत देखकर राजकुमार से बोला - यहां पर कन्यायें विहार कर रही हैं इसलिए हम लोगों को अब और आगे नहीं जाना चाहिए । क्योकिं वे गन्धर्व कन्यायें शीघ्र ही मनुष्यों के मन को मोहित कर लेती हैं । इसलिये मैं तो इन कन्याओं से दूर ही रहूंगा ।

क्रमशः

परन्तु राजकुमार उसकी बात अनसुनी कर कन्याओं के विहार स्थल में निर्भीक भाव से अकेला ही चला गया। उन सभी गन्धर्व कन्याओं में प्रधान सुन्दरी उस समय आये हुए राजकुमार को देखकर मन में विचार करने लगी की कामदेव के समान सुन्दर रूप वाला यह राजकुमार कौन हैं ? उस राजकुमार के साथ बातचीत करने के उद्देश्य से सुन्दरी ने अपनी सखियों से कहा – सखियों तुम लोग निकट के वन में जाकर अशोक, चम्पक, मौलसिरी आदि के ताजे फूल तोड़ लाओ। तब तक मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में यहीं रुकी रहूंगी।

उस गन्धर्व कुमारी की बात सुनते ही सब सखियां वहां से चली गई। सखियों के जाने के बाद वह गन्धर्व
कन्या राजकुमार को स्थिर दृष्टि से देखने लगी। उन दोनों में परस्पर प्रेम का संचार होने लगा। गन्धर्व कन्या ने राजकुमार को बैठने के लिये आसन दिया। प्रेमालाप के कारण राजकुमार के सहवास के लिये वह सुन्दरी व्याकुल हो उठी और राजकुमार से प्रश्न करने लगी – "हे कमल के समान नेत्रों वाले, आप किस देश के रहने वाले हैं ? आपका यहां आना क्यों कर हुआ ?"

गन्धर्व कन्या की बात सुनकर राजकुमार ने जवाब दिया – "मैं विर्दभराज का पुत्र हूं। मेरे माता-पिता स्वर्गवासी हो चुके हैं। शत्रुओं ने मुझसे मेरा राज्य हरण कर लिया हैं।"

क्रमशः

राजकुमार ने अपना परिचय देकर उस गन्धर्व कन्या से पूछा - 'आप कौन है ? किसकी पुत्री हैं ? और इस वन में किस उद्देश्य से आई हैं ? आप मुझसे क्या चाहती हैं ।'

राजकुमार की बात सुनकर गन्धर्व कन्या ने कहा - "मैं विद्रविक नामक गन्धर्व की पुत्री अंशुमती हूं । आपको देखकर आपसे बातचीत करने के लिये ही यहां पर सखियों का साथ छोड़कर रह गई हूं । मै गान विद्या में बहुत निर्पूण हूं। मेरे गान पर सभी देवांगनायें रीझ जाती हैं । मैं चाहती हूं कि आपका और मेरा प्रेम सदा बना रहे । इतनी बात कहकर उस गन्धर्व कन्या ने अपने गले का बहुमुल्य मुक्ताहार राजकुमार के गले में डाल दिया । वह हार उन दोनों के प्रेम का प्रतीक बन गया ।"

इसके पश्चात् राजकुमार ने उस कन्या से कहा - "हे सुन्दरी ! तुमने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है । लेकिन आप राजविहिन राजकुमार के पास कैसे रह सकेंगी ? आप अपने पिता की अनुमति के लिये बिना मेरे साथ कैसे चल सकेंगी ? "

राजकुमार की बात पर कन्या मुस्करा कर कहने लगी -"जो कुछ भी हो, मैं अपनी इच्छा से आपका वरण करुंगी । अब आप परसों प्रातः काल यहां आइयेगा । मेरी बात कभी झूठ नहीं हो सकती । गन्धर्व कन्या ऐसा कहकर पुनः अपनी सखियों के पास चली गई ।"

इधर वह राजकुमार भी शुचिब्रत के पा जा पहुंचा और अपना सारा वृतांत कह सुनाया । इसके बाद वे दोनों घर लौट गये । घर पहुंचकर उन लोगों ने ब्राह्मणी को सब हाल कहा, जिसे सुनकर वह ब्राह्मणी भी हर्षित हुई ।

क्रमशः

उसी वन में पहुंचा । वहां पहुंचकर उन लोगों ने देखा गन्धर्वराज अपनी पुत्री अंशुमती के साथ उपस्थित होकर प्रतीक्षा में बैठे हैं । गन्धर्व ने उन दोनों कुमारों का अभिनन्दन करके उन्हे सुन्दर आसन पर बिठाया और राजकुमार से कहा – "मैं परसों कैलाशपुरी को गया था। वहां पर भगवान शंकर पार्वती सहित विराजमान थे। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाकर कहा – पृथ्वी पर राज्यच्युत होकर धर्मगुप्त नामक राजकुमार घूम रहा हैं। शत्रुओं ने उसके वंश को नष्ट -भ्रष्ट कर दिया है वह कुमार सदा ही भक्तिपूर्वक मेरी सेवा किया करता है । इसलिये तुम उसकी सहायता करो, जिससे वह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सके। इसलिये मैं भगवान शंकर की आज्ञा से अपनी पुत्री अंशुमती आपको सौंपता हूं। मैं शत्रुओं के हाथ में गये हुए आपके राज्य को वापिस दिला दूंगा। आप इस कन्या के साथ दस हजार वर्षों तक सुख भोगकर शिवलोक में आने पर भी मेरी पुत्री इसी शरीर में आपके साथ रहेगी।" इतना कहकर गन्धर्वराज ने अपनी पुत्री का विवाह राजकुमार के साथ कर दिया। दहेज में अनेक दास-दासियां तथा शत्रुओं पर विजय पाने के लिये गन्धर्वों की चतुरंगिणी सेना भी दी ।

राजकुमार ने गन्धर्वों की सहायता से शत्रुओं को नष्ट किया और वह अपने नगर में प्रवीष्ट हुआ । मंत्रियों ने राजकुमार को सिंहासन पर बैठकर राज्याभिषेक किया । अब वह राजकुमार राज-सुख भोगने लगा । जिस दरिद्र ब्राह्मणी ने उसका पालन पोषण किया था उसे ही राजमाता के पद पर आसीन किया गया । वह शुचिव्रत ही उसका छोटा भाई बना । इस प्रकार प्रदोष व्रत में शिव पूजन के प्रभाव से वह राजकुमार दुर्लभ पद को प्राप्त हुआ । जो मनुष्य प्रदोष काल में अथवा नित्य ही इस कथा को श्रवण करता है, वह निश्चय ही सभी कष्टों से मुक्त हो जाता है और अंत में वह परम पद का अधिकारी बनता है ।

समाप्त

उद्यापन विधि

प्रातः स्नानादि कार्य से निवृत होकर रंगीन वस्त्रो से मण्डप बनायें। फिर उस मण्डप में शिव-पार्वती की प्रतिमा स्थापित करके विधिवत् पूजन करें तदन्तर शिव-पार्वती के उद्देश्य से खीर से अग्नि में हवन करना चाहिए । हवन करते समय ॐ उमा सहित-शिवाये नमः मन्त्र से 108 बार आहुति देनी चाहिए । इसी ॐ नमः शिवाय के उच्चारण से शंकर जी के निमित आहुति प्रदान करें । हवन के अन्त में ब्राह्मण को दान देना चाहिए । ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर अपने बंधु-बान्धवों को साथ लेकर भगवान् शंकर का स्मरण करते हुए व्रती को भोजन करना चाहिए । इस प्रकार उद्यापन करने से व्रती पुत्र-पौत्रादि से युक्त होता है तथा आरोग्य लाभ पाता हैं । ऐसा स्कन्द पुराण में कहा गया है ।

सकट चौथ
(माघ कृष्ण चतुर्थी)

माघ कृष्ण चतुर्थी को सकट का त्योहार मनाया जाता है । इस दिन सकट हरण गणपति गणेश जी का पूजन होता है । इस व्रत को करने से सभी कष्ट दूर हो जाते है और समस्त इच्छाओ व कामनाओं की पूर्ति होती है ।
इस दिन स्त्रियाँ दिन भर निर्जल व्रत रखकर शाम को फलहार लेती है । दूसरे दिन सुबह सकट माता को चढ़ाये गये पूरी - पकवानों को प्रसाद रूप में ग्रहण करती हैं । तिल को भूनकर गुड़ के साथ कुट लिया जाता है । तिलकुट का बकरा भी बनाया जाता है । उसकी पूजा करके घर का कोई बच्चा तिलकुट के बकरे की गर्दन काट देता है । सबको इसका प्रसाद दिया जाता है । पूजा के बाद कथा सुनते है ।

सकट चौथ व्रत कथा
(माघ कृष्ण चतुर्थी)

किसी नगर मे एक कुम्हार रहता था। एक बार उसने बर्तन बनाकर आँवा लगाया तो आँवा पका ही नही । हारकर वह राजा के पास जाकर प्रार्थना करने लगा । राजा ने राजपंड़ित को बुलाकर कारण पूछा तो राजपंड़ित ने कहा कि हर बार आँवा लगाते समय बच्चे कि बलि देने से आँवा पक जाएगा ।
राजा का आदेश हो गया । बलि आरम्भ हुई । जिस परिवार की बारी होती वह परिवार अपने बच्चो मे से एक बच्चा बलि के लिए भेज देता ।
इसी तरह कुछ दिनों बाद सकट के दिन एक बुढ़िया के लड़के की बारी आई । बुढ़िया के लिए वही जीवन का सहारा था । राजा आज्ञा कुछ नही देखती । दु:खी बुढ़िया सोच रही थी कि मेरा तो एक ही बेटा है, वह भी सकट के दिन मुझसे जुदा हो जाएगा । बुढ़िया ने लड़के को सकट की सुपारी और दूब का बीड़ा देकर कहा " भगवान् का नाम लेकर आँवा मे बैठ जाना । सकट माता रक्षा करेंगी ।" बालक आँवा मे बिठा दिया गया और बुढ़िया सकट माता के सामने बैठ कर पुजा करने लगी । पहले तो आँवा पकने मे कई दिन लग जाते थे, पर इस बार सकट माता की कृपा से एक ही रात मे आँवा पक गया था । सवेरे कुम्हार ने देखा तो हैरान रह गया । आँवा पक गया था । बुढ़िया का बेटा तथा अन्य बालक भी जीवित एवं सुरक्षित थे । नगर वासियों ने सकट की महिमा स्वीकार की तथा लड़के को भी धन्य माना । सकट माता की कृपा से नगर के अन्य बालक भी जी उठे ।
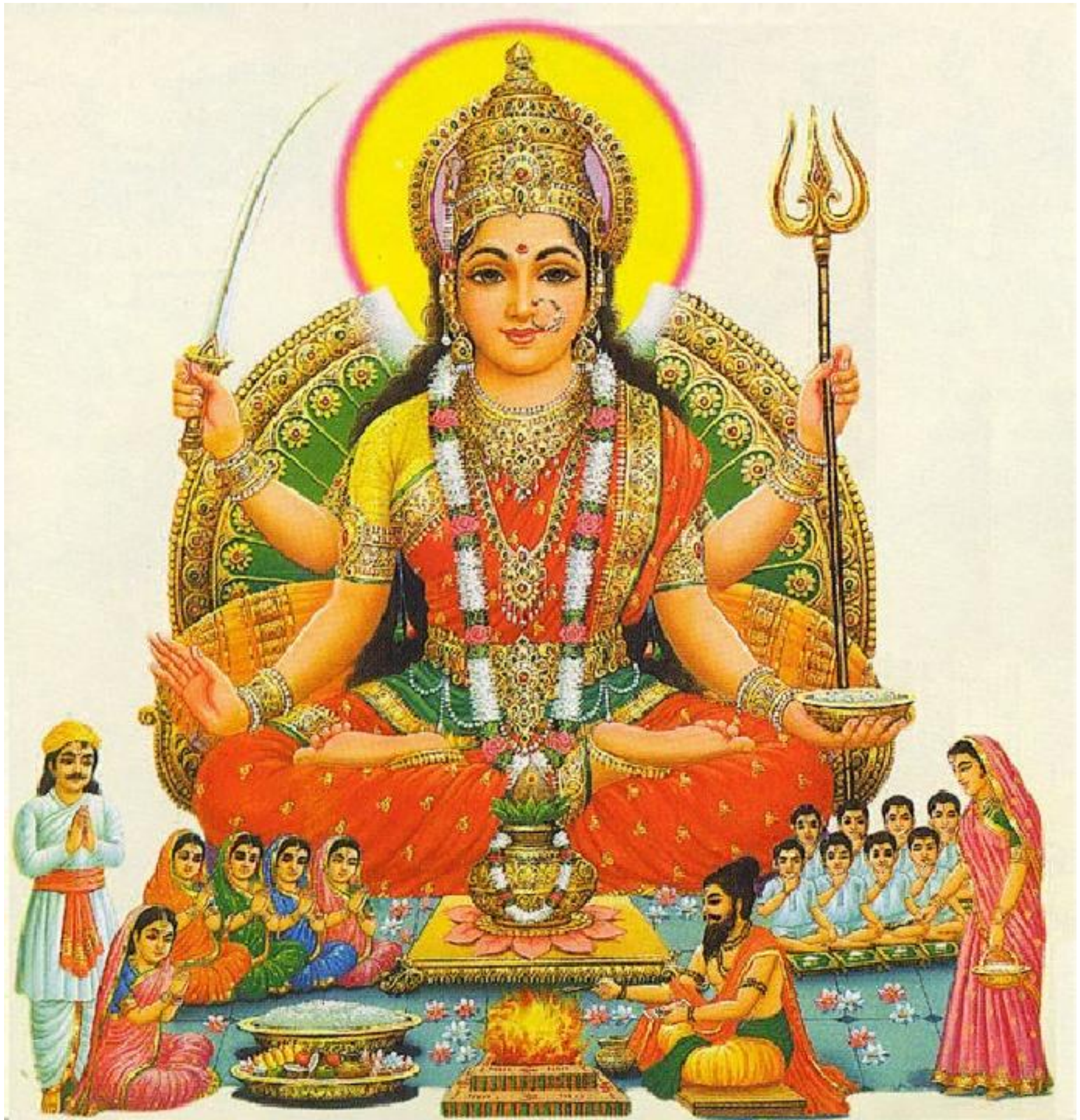
श्री रंगपुर नामका एक गांव था । गांव में एक बुढिया रहती थी । उसके सात पुत्र थे । बुढियाने सबके विवाह करवा दिये थे । घरमें बहुएँ थी और इस कारणसे बुढिया का घर हराभरा लगता था ।

माँ का तो सभी पुत्रों के उपर समान स्नेह होना चाहिए । सब लड़के समान होने चाहिए । मगर इस बुढियाको बडे छ: लडकों पर अधिक स्नेह था । मगर सातवें पर जरा भी स्नेह न रखती थी । सौतेले पुत्र की तरह उसके साथ व्यवहार रखती थी ।

जब रसोई तैयार हो जाए तब बुढिया बडे छ: लडकोंकी पहले भोजन को बिठा देती थी, उनको अच्छा खिलाती थी और उनकी थाली में जो जूठन बचे उसे इकट्ठा करके एक थालीमें रखकर छोटे पुत्र को खाने को देती थी ।

छोटे पुत्र गोरधन को इस बातका पता नहीं था, इसलिए उसकी मां जो उसे देती थी, वह आनन्दसे खा लेता था ।

मगर उस छोटे पुत्र की बहू चपल थी । बुढिया के इस प्रकार का भेदभाव उसे मालूम हो गया । उसने यह बहुत दिनतक देखा, फिर उसका मन बडा दु:खी हो गया । यह तो बहुत बुरी बात है ! अपनी कोखके पुत्रके साथ एसा व्यवहार ?

एक दिन मौका देखकर उसने उपने पतिसे यह बात कही, "अगर मैं एक बात बताऊँ, तो आप मुझ पर गुस्सा तो नहीं करेंगे ने !"

"नही रे, सच्ची बात पर मैं क्रोध करनेवाला नहीं, बता कया बात है ?"

"यह आपकी माता आपको हररोज आपके भाइयों की जूठन खिलाती है । क्या इस बातका आपको पता है ? इस

प्रकार भोले स्वभाव के कब तक रहोगे ? जहाँ इस प्रकार भेदभाव हो, वहाँ एक क्षण भी कैसे रह सके?"

"यह बात मैं मान नहीं सकता।"

"अगर ऐसा है, तो कल मैं प्रत्यक्ष दिखाऊँगी ? मां के अवगुणों का पता तब आपको चलेगा ?"

दूसरे दिन बुढियाने छः बडे पुत्रोंके रसोई घर मे भोजन करने बिठाया, तब वह छोटा पुत्र बगलवाले कमरे में दरवाजे के पीछे छिपकर दरारसे रसोईघर में देखने लगा।

आज लापसी बनाई थी इसलिये बुढियाने आग्रह करके छः पुत्रोंको खिलाई। उनके भोजन कर लेनेके बाद छ के भोजन थाल में बचीसुखी चीजें इकठी करके एक थालमें रखी।

छोटा पुत्र यह सब देखकर समझ गया कि बहू का कहना सच है। अभी मां भोजनके लिए बुलावेगी और अगर यह थाल मेरे आगे रखे तो मुझे खाना नहीं है। ऐसा निर्णय करके वह दूसरे कमरे में चला गया।

उसी समय बुढियाने आवाज दी - "बेटा गोरधन ! भोजनके लिये चल, थाली परोस दी !"

गोरधन रसोईघर में आया । मां पर क्रोध तो बहुत आया था, मगर मां का मन दुःखी न होवे इसलिये वह गंभीर हो गया ।

"बेटा ! खडा क्यों है ? खानेको बैठ जा ।" बुढियाने झूठा प्यार-बताते हुए कहा ।

"मां आज पेटमें दुःखता है, इसहिए कुछ खाना नहीं है ।"

ऐसा कहकर गोरदन अपनी बहू गंगाके पास गया और बोला-"तेरी बात सच्ची है । अब इस घरमें मुझे रहना नहीं चाहिए । जहां आदर न हो, वहा सुवर्ण का कौर भी निकम्मा है । मैं आज ही वहांसे किसी भी अन्य स्थान पर नसीब आजमानेको निकल पडूंगा ।"

उसी समय बुढियाने गंगाको आवाज दी और कहा, "बहू, बातें कम करो, अभी बहुत दिन हैं, पहले गोबर थाप दो ।"

गंगा तुरंत ही घरके पीछे के अहातेमें जाकर गोबर थापन

लगी । इस ओर वह छोटा लडका गोरधन दूसरे गांव जानेको कपडे पहनकर तैयार हो गया । घरमें किसी दूसरेकी अनुमति उसे लेनी न थी क्योंकि सगाई और रिश्तेमें कितनी मिठाश है, वह तो उसने देख ली थी ।

घरके पिछले दरवाजेसे वह अहातेमें गया और गंगाको उपले थापती रोककर कहा "मैं अभी जाता हूं । तू यहां सुखदुखसे दिन काटना । जब मैं ठिकाने लगूंगा, तब तुझे लेनेको आऊंगा" इतना कहते कहते उसकी आंखोंमें आंसू छलछला आये ।

गंगाने रोते रोते कहा- "आपके बिना मुझे चैन न होगा । यहां मुझे दुःख होगा, तो मैं किसके आगे हृदयका भार हलका करूंगी ? फिर भी आप खुशीसे जाना...मगर जानेके बाद मुझे भूलना नहीं...?"

गोरधनने हाथ की उँगलीसे पानके आकारकी सुवर्णकी अँगूठी निकालकर गंगाकी उँगलीमें पहना दी और बोला, "यह मेरी निशानी तेरे पास होगी इससे तुझे अकेलापन नहीं लगेगा । अब तू भी अपनी ओरसे निशानीमें कुछ दे ।"

"यह मेरी निशानी..." ऐसा कहकर गंगाने गोबरवाले हाथका निशान गोरधनके कुर्ते के पीछे के भाग पर लगा दिया और गोरधन भारी हृदयसे वहांसे चल निकला ।

दूसरे दिन दुपहरको गोरधन माधवपुर नामके एक शहर में आ पहुंचा । वहां उसके नौकरी की तलाश की तो एक बनिये सेठके यहां उसे नौकरी मिल गई ।

खाना-पीना और रहनेका सेठके यहां था । इससे गोरधनका कोई चिन्ता न थी । वह हररोज प्रातःकाल सबसे पहले दूकान पर जाता और शामको सबके पीछे सेठके घर खानेको जाता था । वह हर एक काममें तथा बहीखातेके हिसाब लिखनेमें भी काबिल था । इसलिए सेठने थोड़े ही समय में उसे अपना मुनीम बना दिया और सारी सत्ता उसे सौंप दी ।

समय भी पानीके प्रवाह की तरह बहने लगा, इसे अरसेमें बनिया सेठ गोरधन को सारी दूकान सौंपकर यात्रा को चल निकला । उसने बहुत धन पैदा किया था, अब वह पुण्य पैदा करनेको निकल पडा था । सचमुच, किया हुआ पुण्य दान ही साथ ही चलता है, पैसा तो साथ आता ही नहीं ।

इस ओर श्रीरंगपुरमें गोरधनकी बहू गंगा दुःखमें डूब गई थी । घरमें उसके पतिकी गैरहाजिरी थी, इससे बुढियाने घरका सारा काम उसके सिर पर डाल दिया था । पूरे घरका काम वह करती थी और आटे की भूसीकी कच्ची-पकी रोटी और फूटे नारियल के नारेलीमें पीनेका पानी मिलता था । ऐसा कष्ट वह मूंगे मुंह सहती थी ।

एक बार गंगा गांव के बाहर के कुएँ पर पानी भर रही थी, उस समय उसने कुछ स्त्रियां हाथमें थाल लिये खडी देखी । गंगा यह देखकर समझ गई कि ये सब कोई व्रत करती होगी । वह तो पानीका बेडा वहीं छोडकर वहां गई और पूछने लगी, "बहन, मुझे लगता है कि तुम कुछ व्रत करती हो । मैं भी व्रत करना चाहती हूं, तो मुझे बताना कि तुम कौनसा व्रत कर रही

हो ?"

एक भले स्वभाववाली स्त्री बोली - "बहन, हम संतोषी मां का व्रत कर रही हैं। यह व्रत ऐसा आसान तथा सादा है कि कम खर्चसे गरीबमें गरीब स्त्री-पुरुष भी उसे कर सकते हैं।"

गंगा बोली, "बहन, तब तो इस भांतिके व्रतकी महिमा बडी होगी ? बहन, यह बताना कि यह व्रत करने से क्या लाभ होता है ?"

भले स्वभाववाली स्त्रीने कहा- "बहन ! इस संतोषीमां के व्रत के प्रभावकी बात अवर्णनीय है, जिसकी जो इच्छा हो, वह संतोषी मां पूर्ण करती है। निर्धन को धन मिलता है, बेकार को काम मिलता है, रोगीका रोग दूर होता है, परिवारकी पीड़ा दूर होती है, संतानरहित के घरमें पालना बंधता है, कुंवारी कन्या को मनचाहा पति मिलता है, वियोगी स्नेही जन एक दूसरे से मिलते हैं..... इस प्रकार के अनेक लाभ संतोषी माता के व्रतमें रहे हैं।

गंगा बोली- "बहन ! मेरे पति कई समय से परदेश कमाने गये है, मगर उनकी ओरसे कोई समाचार नहीं है। इस लिये मुझे बहुत चिन्ता होती है। बहन, मेरे तो दुःखका अन्त नहीं। व्रत करने से क्या वो आ मिलेंगे ?"

भले स्वभाववाली स्त्रीने कहा- "बहन ! तू भी संतोषी मां का व्रत शुरु कर दे। इससे थोडे ही समयमें तेरे पतिकी ओरसे समाचार मिलेंगे और धीरे धीरे तेरा दुःख कम होने लगेंगा।

गंगा के मनमें संतोषी मां का व्रत करनेकी प्रबल इच्छा हुई। मगर यह व्रत किस प्रकार किया जाय, उसकी विधिका पता उसे न था और संपूर्ण विधि के बिनाका व्रत फलता नहीं। इससे उसने भले स्वभाववाली स्त्री से पूछा - "बहन, तुमसे बातें करके मैंने समय तो बहुत लिया। अब मुझे संतोषी मां के व्रतकी विधि बताना। जिससे मैं व्रत का आरंभ कर दूं।"

भली स्त्रीने कहा, "बहन, यह व्रत घरमें या बाहर शांत

वातावरणमें हो सकता है । कोई-भी शुक्रवारसे यह व्रत हो सकता है । जहां अनुकूलता हो, वहां घी का दीपक जलांकर उसके आगे पानीसे भरा कलश रखना और कलश के उपर कटोरीमें गुड तथा भुने हुए चने रखना । फिर वहां बैठकर एक चित्तसे संतोषी मां की कथा कहनी या सुननी चाहिए, कथा पूरी होने पर मां की आरती उतारनी चाहिए, उसके बाद कटोरी के गुड-चने प्रसादके रूपमें आस-पासके छोटे-बडे सबको बांटने चाहिए । संतोषी मां की भक्ति हर कोई अपनी शक्तिके मुजब कर सकते हैं, तो सवापांच गुड-चने बांटने चाहिये और साधारण स्थिति हो तो सवापांच आने भी बांटे जा सकते हैं ।

गंगाने बीचमें पूछा, "संतोषी मां के व्रतमें खास खास क्या ध्यानमें रखना चाहिए ?"

भली स्त्री बोली, "भूखा रहकर संतोषी मां की कथा कहनी या सुननी चाहिए, उसके बाद ही भोजन किया जा सकता है । हर शुक्रवारको इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत किया जाए, तो व्रतका फल अवस्य मिलता है संतोषी मां की दया होगी, तो तीन वरस में भी फल मिलता है, तीन महिने में, तीन सप्ताहमें भी फल मिलता है और दशा बुरी हो और ग्रह अनुकूल न हों, तो तीन वरस के बाद फल मिलता है । व्रत करनेवालेको संतोषी मां सुख-शांति उवश्य देती है ।"

गंगाने पूछा "बहन, अगर मां की कृपासे मनोकामना पूर्ण हो जाय, तो फिर कुछ करना शेष रहता है ?"

भली स्त्रीने कहा, "हां बहन, मनोकामना पूर्ण होने पर व्रतका उद्यापन करना भूलना नहीं । ऊधापन में अढाई आटे के सादे खाजे या घी में तली हुई मोमनदार पुडी और जरूरतके मुजब रखी और चनेका साग करना चाहिये । यह सब आठ बालकों को बुलाकर खिलाना चाहिये । अगर अपने परिवार के बालक हों, तो अच्छा । वरना पास-पडोसके बालक भी बुलाये

जा सकते हैं । उनको भोजन करके दान-दक्षिणामें कुछ नकद न देना मगर वस्त्र या फल देने चाहिये । उनको प्रसन्न करके बिदा करना । इस प्रकार इस व्रतका उधापन होगा । मगर इतना ध्यानमें रखना कि उधापनके समय रसोईघरमें ईमली, कोकम या ऐसी कोई खटाईवाली चीज न डालनी चाहिए । किसीको नीम्बू, अचार या खटाई की चीज खानेको न देनी चाहिये, न खानी चाहिये ।

गंगाने उस भली औरतका आभार माना फिर जलका बेडा लेकर जल्दी से घर गई । उसने संतोषी मां का व्रत करनेका पक्का निर्णय कर लिया ।

छः दिन के बाद शुक्रवार आया । उस दिन गंगा ने कुछ खाया नहीं, कयोंकि आज उसे व्रत करनेका था । वह पहले से ही सवा आनेका गुड तथा भुने हुए चने मां के प्रसाद के लिये ले आई थी ।

शाम हुई तो उसने नहा-धोकर साफ-सुथरे वस्त्र पहनकर अपने कमरे के एक कोने में संतोषी मां के नाम दीपक जलाया और उसके समीप पानी से भरा कलश रखा तथा उस कलश के उपर एक कटोरी रखी और उसमें गुड चने रखे । फिर संतोषी मां की जय बोलकर, उसने मां से बिनती की- "हे संतोषी मां ! मेरा दुःख आप जानती है, तो मेरी इच्छा पूर्ण करके मेरा दुःख दूर करना ।"

इस प्रकार बिनती के बाद गंगा ने संतोषी मां की आरती उतारी । उसके बाद उसने स्वयं प्रसाद लिया और बाकी प्रसाद बच्चों में बांट दिया ।

सुबह से उसने खाया न था । उसकी सास ने खाने को दिया था, उसे उसने ढँक रखा था । वह उसने एक पहर (एकाटाणे)में खाया और फिर काम करने लग गई । आज उसके आनंद का पारावार न था, क्योंकि उसको विश्वास था कि संतोषी मां उसका संकट अवश्य दूर करेगी ।

गंगा तो हर्ष से पागल हो गई । उसका दुःख बहुत था फिर भी उसर मुंह पर आनंद चमक उठा ।

तीसरे शुक्रवारको गंगा ने व्रतकी पूर्णाहुति की, उस समय माधवपुर से जो आदमी पहले आया था, वह दो सौ रुपये लेकर आया । वे रुपये गोरधन ने गंगा को भेजे थे और यह भी कहलवाया था कि वह स्वयं थोड़े दिनों के बाद श्रीरंगपुर आयेगा ।

उस दिन गंगाका आनन्द और बढ गया । शाम को उसने मां के नामका दीपक जलाया और मां के गरबे गाकर मां को बहुत याद किया ।

मगर गंगाकी जिठानियां उसकी ईर्ष्या करने लगीं क्यों कि आज गंगा के पति ने दो सौ रुपये भेजे थे । गंगा के रुपयेकी जरूरत न थी, उसे तो अपने पतिके दर्शन करने थे । इसलिये उसने रोज माताजी से प्रार्थना करनी शुरु की, "हे माता, जब मेरे पति आयेंगे, तो मैं अन्न खाऊँगी । मुझसे उनका वियोग सहा नहीं जाता ।"

उसी रातको संतोषी मां ने माधवपुर में गंगा के पति

गोरधनको स्वप्नमें दर्शन दिये और कहा, "बेटा तू यहां खूब कमाया है और श्री रंगपुर में तेरी पत्नी दुखमें दिन पसार कर रही है, तुझे याद करके बेचारी दुबली हो गई है, इसलिये सारा व्यापार समेटकर जलदी से वहा पहुंच जा।"

मां की दया से गोरधन को व्यापार समेटनेमें बहुत समय न लगा, सारा प्रबन्ध करके वह दूसरे दिन माल-सामान और माया-पूंजी के साथ श्रीरंगपुर जाने को निकला, दो बैलगाडियाँ को जोड़कर निकल हुआ गोरधन दूसरे दिन दुपहरको श्रीरंगपुर की हदमें आ पहुँचा, वहाँ गंगा उस समय लकडी काटने आई थी। वह लकडी का गट्ठर बांधकर संतोषी मां के मंदिर के औसार पर थकान दूर करने बैठी थी।

आज उसके मनमें होता था कि जरुर मेरे पति आ पहुंचेंगे। उसी समय बैलोंकी घुंघरूँ की ध्वनि सुनाई। इसलिये मन्दिरमें माताकी मूर्ति के आगे जाकर गिडगिडाकर कहने लगी- "मां, मेरी धीरज की हद अब आ चुकी है। आज मुझे ऐसा लगता है कि मेरे पति आयेंगे, क्या यह सच है?"

जैसे माताकी मूर्ति बोल रही हो, ऐसी गैबी आवाज सुनाई दी : "बेटी बात सच्ची है, अभी तेरा पति सुख सलामतीसे वापस, लौटा है और वह तेरे घर जा रहा है । मगर तू घर जानेकी उतावली न करना । घंटे के बांद तू सिर पर लकडीका गट्ठर रखकर घर जाना और आंगनमें गट्ठर रखकर तेरी सासने कहना कि ...

सासजी रे सासजी ! आज भी रोजकी तरह महा मुसीबतसे लकड़ी काट कर लाई हूं । अब मुझे आटेकी भूसीकी रोटी खानेको दीजिये और नारियलकी नारेलमें पानी पीनेको दीजिये ।"

यह सुनकर गंगा उलजनमें पड़ गई कि ऐसा तो सासजीसे कैसे कहा जाय ? तब फिरसे गैबी आवाज आई : "बेटी ! तू गभराना नहीं, उसमें तेरी भलाई है । ऐसा करने से ही तेरे पतिको मालूम होगा कि तुझे कितना कष्ट पड़ता है ।"

गंगा तो हर्षसे पागल हो गई क्योंकि मांकी संपूर्ण दया उसके ऊपर उतरी थी । उसके बाद वह मांके गरबे तथा भजन गाती हुई वहां पर बैठी रही । देखते देखते घण्टा पसार हो गया

और गंगा सिर पर लकडीका गट्ठर रखकर उल्लास से पूर्ण होकर घर जाने के लिए नीकली ।

इस दरम्यान गोरधन घर पहुंच गया और उसकी मां हरकोर डोसी उसे खिलानेकी तैयारीयां कर रही थीं, मगर गोरधनको पहलेका कडुवा अनुभव याद था, इससे खानेकी ना कहकर वह पाट पर गंगा की राह देखते बैठा ।

बुढ़ियानं तो गोरधनके आगे गंगाके सुख की बात कही थी । उसे कुछ दुःख नहीं था, एसा कहा था । मगर गोरधनके माननेमें यह आता न था क्योंकि संतोषी मांने स्वप्नमें गंगाके दुःखकी बात कही थी और इसलिये वह सब समेटकर जल्दीसे घर आया था । बुढ़ियाको चिन्ता हुई कि अभी गंगा गट्ठर लेकर घर आ पहुंचेगी तो सारी पोल खुल जायगी । इसलिये वह गोरधन को अन्दर दीवानखानेमें जानेका आग्रह कर रही थी मगर गोरधन तो वही बैठा रहाः जिससे वह जल्दीसे गंगाका मुंह देख सके ।

उसी समय गंगा लकडीका गट्ठर लेकर आ पहुंची । उसकी यह हालत और दुर्बल देह देखकर गोरधन की आँखोंमें आँसु आ गये । जैसे वह गंगा न हो ऐसा लगा ।

गंगाने तो आते ही कहा—"सासजी रे सासजी ! आज भी रोजकी तरह कष्ट उठाकर लकडी काट लाई हूं । अब मुझे आटे की भूसीकी रोटी खाने को दीजिये और नारेली में पानी पीने को दीजिये ।"

यह सुनते ही बुढ़िया की ऐसी स्थिति हो गई कि काटो तो लहू न निकले । बहूने उसकी पोल को खोल दिया था । मगर गोरधन ने कुछ कहा नहीं । यह गंगाको अपने कमरे में ले गया । वहां गंगाने अपने दुःखकी बात कही और यह भी बताया कि वह स्वयं संतोषी मां का व्रत करती है ।

गोरधन को भी संताषी मां ने स्वप्न में दर्शन दिये थे । आज उसको पूरा भरोसा हो गया था कि मां के व्रत के प्रभाव

द्वारा अपना संसार सुखी होगा । जब वह यह विचार करता बैठाथा, तब तक गंगाने कमरे की सफाई कर दी ।

बुढ़िया के मनमें अब भी डर था, इसलिये वह गोरधन के पास आकर कहने लगी : "तुम दोनों पहले भोजन तो कर लो ...!"

गोरधन ने कहा–"हमें भोजन नहीं करना है । आज से हमारी रसोई अलग होगी, इसलिये मां तू हमारी चिंता न करना ।"

बुढ़िया अपना-सा मुंह लेकर चली गई । गोरधन बाजार से सारी सामग्री ले आया । उस दिन कई वर्षों के बाद गोरधन और गंगा ने साथ बैठकर लापसी खाई । गंगा ने भी आज पहली बार भर पेट खाया, दोनों को आज अपार आनन्द हुआ ।

शाम को गोरधन के छः भाई कामकाज से घर लौटे तब उन्होंने गोरधन के आने के समाचार सुने । उनको गोरधन मिला और सातों भाईयोंने सुख-दुःख की बहुत सी बातें की ।

रात को गंगाने संतोषी मां का दीपक जलाया । प्रार्थना की और गरबा गाया । गोरधनने यह सब देखा । और गंगाकी धार्मिक भावना के लिये इसके मन में आदर पैदा हुआ । दिन पसार होने लगे और शुक्रवार आया । आज गंगाने संताषी मां के व्रत का उद्यापन रकने का निर्णय किया । इसलिये वह अपनी जिठानियों से कह आई कि "आज मां के व्रतका उद्यापन है, इसलिये सब मिलाकर आठ बालकों को भोजन के लिये शाम को भेजना ।"

गंगा की ईर्ष्यालु जिठानियां ऐसा ही अवसर ढूंढ़ रही थी । वे किसी भी प्रकार से गंगा के व्रत को तोडना चाहती थी और यह काम बच्चों के द्वारा आसानी से हो सकता था । उन सबों ने अपने पुत्रों को समझा दिया कि "तुम अपनी चाची के यहां भोजन करने बैठते समय खटाई मांगना और खटाई खाने को न दे तो पैसे मांगना और उन पैसे से खट्टी चीज लेकर खाना ।"

शाम के समय गंगाने सतोषी मां के नामका घी का दीपक जलाया, प्रणाम किया और भोजन का थाल धरा। उसके बाद लडकों को खाने को बिठाये। सबकी थाली में खाजा, खीर और शाक परोशा मगर किसी ने भोजन को हाथ न लगाया।

गंगा ने कहा, "सब आ गया, अब भोजन करना शुरु कर दो।"

तब सब लडके एक साथ बोल उठे, "ऐसा स्वादहीन भोजन हमारे गले के नीचे नहीं उतरेगा। इसलिये अचार, मुरब्बा, कचूमर या नीबू सी खट्टी चीज खाने को दीजिये।

गंगाने नम्रता से कहा, "मां के व्रत के ऊद्यापन के समय खटाई नहीं खाई जाती, इसलिये तो मैंने रसोईमें भी खटाई नहीं डाली।"

लडकों ने तो खटाई के लिए जिद की। अगर वह न दे तो एक एक पैसा देने को कहा। भली गंगा ने उनको राजी करने को एक एक पैसा दिया।

लड़को ने खाया न खाया कि वे पंसारी की दुकान पर दौड गये और ईमली खरींद लाये। गंगा के कमरे में ही बैठकर खाने लगे। गंगा इस समय काम करती थी इसलिये उसको पता न चला। लड़के तो खाकर अपनी अपनी मां के पास गये और बताया कि "मां मां, हमने काकी के पास खटाई मांगी तो उन्होंने न दी। फिर पैसा मांगा, तो दिया और हमने ईमली खरीद कर खाई क्या मां, यह बराबर ?"

गंगा की जिठानीयाँ बहुत आनन्दमें आ गई, क्योंकि वे अपने प्रयत्न में सफल हुई थी।

दूसरे दिन प्रात:काल में गंगा के पति को राजा का बुलावा आया। गंगा डर गई कि क्या काम होगा ? उनके उपर कोई दोष तो नहीं चढ़ा होगा ? वह तो मां से प्रार्थना करने बैठ गई। इस दरम्यान गोरधन तैयार होकर राजा के आगे दरबार में गया और प्रणाम करके अदब के साथ खड़ा रहा।

गंगा की जिठानियोंने पडोस में एसी बात फैलाई कि गंगा के पतिने राज्य की जकात (कर टैक्स) चूकता नहीं की इसलिये उसे शिक्षा करने को बुलाया है। यह सुनकर गंगा का डर बढ़ गया। उसने मां के नामका दीपक जलाया और प्रार्थना करने लगी कि "हे संतोषी मां ! आपके व्रत में या आपके व्रत के ऊद्यापन में कोई गलती हो गई हो, तो क्षमा करना।"

इस प्रकार उसने बहुत प्रार्थना की तब गैबी आवाज आई, "बेटी ! तूने मेरे व्रत का ऊद्यापन किया। उस समय तेरी जिठानियों के पुत्रों को खटाई खाने को न दी यह अच्छा किया। मगर तूने उनको पैसे दिये उससे वे इमली ले आये और तेरे कमरे में बैठकर खाई। क्या व्रत का भंग हुआ कि नहीं ? "

गंगा बोली–"भूल हो गई मां ! फिर भी मैंने जानबूजकर तो ऐसा नहीं किया। मैंने भोले स्वभाव से लड़कों को पैसे दिये थे। हे मैया ! अब भूल नहीं करूँगी। हां..."

"मेरे पति को राजा का बुलावा आया है वे वहां गये हैं, इससे मुझे फिकर होती हैं, कि वे कब लौटेंगे ?"

अदृश्य आवाज आई, "बेटी ! तेरी भक्ति सच्ची है । तुम्हारे शत्रु भी दास हो जाएँगे । जो बलवान होंगे, वे निर्बल हो जायेंगे । इसी तरह राजा भी उसके प्रति रोष नहीं करेगा । मेरे भक्तों को दु:ख हो ऐसा होगा ही नहीं ।"

घन्टे के बाद गोरधन घर आ पहुंचा । राजा ने उसकी चतुराई पर मुग्ध होकर हीरे से जडित अँगूठी भेंट दी थी । और उसकी ऊँगली पर झगमगाती अँगूठी देखकर गंगा समझ गई कि शुभ समाचार है । इस बातकी खबर सुनकर गंगाकी जिठानियां और जलने लगी ।

फिर से शुक्रवार आया और गंगा ने मां के व्रत का उद्यापन फिर से किया । आज वह पास-पड़ोस के ब्राह्मणों के बालकों को भोजन को बुला लाई और उन सब को अच्छी तरह खिलाकर वस्त्र देकर विदा किये ।

गंगा की अगर भक्ति और अविचल श्रद्धा देखकर संतोषी मां उसके उपर प्रसन्न हुए, उसको सारा सुख था मगर पुत्र की कमी थी । संतोषी मां ने यह कमी भी दूर कर दी ।

गंगा के अच्छे दिन रहे और नव मास के बाद गंगा ने एक स्वरूपवान पुत्र को जन्म दिया । इससे गंगा का पति गोरधन इतना आनन्द में आ गया कि उसने सवा पांच मन के पेडे लाकर गांव में बांटे ।

सबने मुंह मीठे किये मगर गंगा की जिठानियां ने स्वयं पेडे न खाये, न लडकों को खाने दिया । उस दिन सबको गले के नीचे भोजन न उतरा, क्योंकि उनकी देवरानी को पुत्र आया था ।

सवा महीना होने पर गंगा नहा-धोकर पुत्रको लेकर संतोषी मां के मन्दिर को गई । वहां पुत्र को मांकी मूर्ति के समक्ष

छोड़कर कहने लगी, "मां, यह आपके व्रत का फल है अब हमें आप आशीर्वाद दीजिए कि हम सब सुख-संतोष में रहे और सदा आपकी भक्ति करते रहें ।"

उस समय अदृश्य आवाज सुनाई दी, "बेटी ! आज नहीं । मैं चाहे किसी भी समय वहां आकर तुजे आशीर्वाद दे जाऊँगी । मगर उस समय तू मुझे पहचानने में भूल न करना । वर्ना तेरा भाग्य ! ध्यान में रखना..."

गंगा पुत्र को लेकर घर आई । उस दिन से उसने घर के आंगन में आनेवाले हर एक का ध्यान रखना शुरु किया ।

एक दिन अस्सी वर्ष की उमर की एक बुढ़िया गुड व भुने हुए चने खाती खाती, पोकार करती, उसके घर के आगे आई । उसके मुंह पर मक्खियां भिन्न-भिन्नाती थीं और उसके देह से ऐसी बदबू निकलती थी कि सर फट जायें । सब उसे मारकर भगाने लगे और गालियां देने लगे मगर वह बुढ़िया तो घर के आगे ही खड़ी रही ।

इस समय गंगा पुत्र को लेकर खिडकी के पास खडी थी । उसके मन में हुआ कि संतोषी मां ऐसा स्वांग सजकर आई है । इसलिये यह आशीर्वाद लेने को नीचे उतर आई तो उसकी सांसने घर के किवाड़ बन्द कर दिये । सबको उस आई हुई बुढ़िया का डर लगता था ।

गंगा जब उलजन में पड़ गई कि अब क्या करना ? फिर वह मजले पर खिड़की के पास आई और संतोषी माँ के भरोषे पर लड़के को नीचे फेंकने को हाथ आगे बढाया । इस समय नीचे खडी बुढ़िया ने भी हाथ पसारें और ज्योंही गंगाने पुत्र को नीचे फेंका, उस बुढ़िया ने झेल लिया ।

साथ ही किवाड़ खुलने की आवाज सुनाई दी । गंगा नीचे उतरकर बुढ़िया के पास गई । वह देखती है कि उस बुढ़िया के आसपास प्रकाश फैला है और पुत्र उसके हाथोंमें खेल रहा है ।

बुढ़िया के चरणों मे गंगा गिर पडी । वह बुढ़िया संतोषी मां स्वयं थी । उन्होंने गंगा को खड़ी करके आशीर्वाद दिये कि "तुम्हारा कल्याण हो और जब तक जियो तब तक आनन्द करो...।"

इतना कहकर वह बुढ़िया गायब हो गई । सबने यह चमत्कार अपनी आँखों से देखा और फिर वे मन में बहुत पछतावा करने लगें, क्योंकि उन्होंने मांका आशीर्वाद प्राप्त करने का सुवर्ण-अवसर गँवा दिया था ।

बस उसी दिन से सारे गांव में गंगा का आदर बढ़ गया था । घर में भी उसकी जिठानियां तथा सासने द्वेषभाव छोड़ दिया । वे भी संतोषी मां का व्रत करने लगी । इससे थोड़े ही दिनों में घरभर में शान्ति स्थापित हो गई । संतोषी माताजी के प्रभाव से हरकोर गृहिणी के घर में समृध्दि पुनः आ गई ।

हे संतोषी मां ! जिस प्रकार आप गंगा बहू के ऊपर प्रसन्न हुइ और आपने उसकी मनोकामना पूर्ण की, उसी प्रकार संतोषी मां के शुक्रवार को, इस कथा को कहने-सुननेवालों सबों की मनोकामना पूर्ण करना ।

आपकी जय जयकार हो, संतोषी मैया ।
आपकी महिमा अपार है, संतोषी मैया ।

।। भोग लगाने के समयकी आरती ।।

भोग लगाओ मैया संतोषी ।

भोग लगाओ मैया भुवनेश्वरी ॥

भोजन को जलदी आना, संतोषी मैया ।

मैं तो देख रही तुम्हारी राह.... !

मैया जलदी से आना !

खाजा-खीर प्रेमसे बनाया,

चने का शोक अनोखा बनाया,

मैया उमंगसे आना !

भक्त जनों को शुक्रवार प्यारा ।

कथा श्रवण नामस्मरण है प्यारा !

मैया दर्शन देना रे !

संतोषी मैया, जलदी से आना ।

संतोषी माता जी की आरती

जय संतोषी माता जय संतोषी माता।	अपने सेवक जन की सुख सम्पति दाता	।। जय·
सुन्दर चीर सुनहरी मां धारण कीन्हों ।	हीरा पन्ना दमके तन सिंगार लीन्हों	।। जय·
गेरू लाल छटा छवि बदन कमल सोहे ।	मन्द हंसत करूणामयी त्रिभुवनजन मोहे	।। जय·
स्वर्ण सिंहासन बैठी चंवर दुरे प्यारे ।	धूप, दीप, नैवेध, मधुमेवा भोग धरे न्यारे	।। जय·
गुड़ अरू चना परमप्रिय तामें संतोष कियो ।	संतोषी कहलाई भक्तन वैभव दियो	।। जय·
शुक्रवार प्रिय मानत आज दिवस सोही ।	भक्त मण्डली आई कथा कथा सुनत मोसी	।। जय·
मंदिर जगमग ज्योति मंगल ध्वनि छाई ।	विनय करे हम बालक चरनन सिर नाई	।। जय·
भक्ति भावमय पूजा अंगीकृत कीजे ।	बहु धन धान्य भरे घर सुख सौभाग्य दिये	।। जय·
ध्यान धरो जाने तेरो मनवांछित फल पायो ।	पूजा कथा श्रवण कर घर आन्नद आयो	।। जय·
शरण गहे की लज्जा रखियो जगदम्बे ।	संकट तू ही निवारे दयामयी माँ अम्बे	।। जय·
संतोषी माँ की आरती जो कोई नर गावे ।	दि सिद्धि सुख सम्पति जी भरके पावे	।। जय·

पूजन सामाग्री :

केले के खंम्बे (कदलीस्तम्भ), कलश, चावल, धूप, पुष्पो की माला, पान के पत्ते, तुलसी, दीप, नैवेद्य, गुलाब के फूल, वस्त्र, आम के पत्तो का बन्धनवार, पाँच रत्न, कपूर, रोली, फल, स्वर्ण प्रतिमा, जल, पंचअमृत - शकर, दही, घी, शहद और तुलसी ।

प्रसाद :

आटा, शुद्ध घी और शकर से बना ।

विधि :

व्रत करने वाले पूर्णिमा, संक्रान्ति या एकादशी के दिन सांयकाल स्नान आदि से निवृत होकर, पूजा स्थान में आसन पर बैठकर श्री गणेश, गौरी, वरुण, विष्णु आदि सब देवताओ का ध्यान करके पूजन करे और संकल्प करे कि मै श्री सत्यनारायण स्वामी का पूजन व कथा श्रवण सदैव करूंगा । पुष्प हाथ मे लेकर श्री सत्यनारायण का ध्यान करे । यज्ञोपवीत पुष्प, नैवेद्य आदि से युक्त होकर स्तुति करे । हे भगवान् , मैने श्रद्धा पूर्वक फल, जल आदि सब सामाग्री आपके अर्पण की है, इसे स्वीकार कीजिए। मेरा उापको बारम्बार नमस्कार है इसके बाद श्री सत्यनारायण की कथा पढ़े अथवा श्रवण करें ।

श्री सत्यनारायण भगवान् की कथा

।। पहला आध्याय ।।

एक समय नैमिषारण्य तीर्थ मे शौनकादि अट्ठासी हजार ऋषियों ने श्रीसूत जी से पूछा- "हे प्रभु ! इस कलियुग मे वेद-विद्या रहित मनुष्यो को प्रभु भक्ति किस प्रकार मिलेगी तथा उनका उद्धार कैसे होगा ? हे मुनि श्रेष्ठ ! कोई ऐसा तप कहिए जिस मे थोड़े समय मे पुण्य प्राप्त हो तथा मनवांछित फल भी मिले, वह कथा सुनने की हमारी प्रबल इच्छा है ।"

सर्वशास्त्र ज्ञाता श्रीसूत जी बोले- "हे वैष्णवों में पूज्य ! आप सब ने प्राणियो के हित की बात पूछी है । अब मै उस श्रेष्ठ व्रत को आप लोगो से कहूंगा जिस व्रत को नारद जी ने श्री लक्ष्मीनारायण भगवान् से पूछा था और श्री लक्ष्मीपति ने मुनि श्रेष्ठ नारद जी से कहा था। यह कथा ध्यान से सुनो -

क्रमशः

एक समय, योगीराज नारद जी दूसरो के हित की इच्छा से, अनेक लोकों मे घूमते हुए मृत्युलोक मे आ पहुँचे। वहाँ बहुत योनियो मे जनमे हुए मनुष्यो को अपने कर्मो के द्वारा अनेक दु:खो से पीड़ित देखकर, किस यत्न को करने से निश्चय ही इनके दु:खो का अन्त हो सकेगा, ऐसा मन मे सोच कर इन्द्र लोक को गए । वहाँ श्वेत वर्ण : और चार भुजाओ वाले देवो के ईश: नारायण को (जिनके हाथो में शंख, चक्र, गदा और पद्म् थे तथा वरमाला पहने हुए थे) देखकर स्तुति करने लगे। "हे भगवान् ! आप अत्यन्त शक्ति से सम्पन्न है। मन तथा वाणी भी आपको नही पा सकती । आपका आदि मध्य अन्त नही है । निर्गुण स्वरूप सृष्टि के कारण भक्तो के दु:खो को नष्ट करने वाले हो । आपको मेरा नमस्कार है ।"
" हे मुनि ! श्रेष्ठ आपके मन मे क्या है ? आपका किस काम के लिए आगमन हुआ है ? नि:संकोच कहो ।" तब नारद मुनि बोले- "मृत्युलोक मे सब मनुष्य जो अनेक योनियो मे पैदा हुए है, अपने-अपने कर्मों के द्वारा अनेक दु:खो से दुखी हो रहे है । हे नाथ मुझ पर दया रखते हो तो बताइये कि उन मनुष्यो के सब दु:ख थोड़े से ही प्रयत्न से कैसे दूर हो सकते है ।" श्री भगवान् जी बोले- हे नारद ! मनुष्यों की भलाई के लिए तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। जिस काम के करने से मनुष्य मोह से छुट जाता है वह मै कहता हूं । सुनो- बहुत पुण्य देने वाला स्वर्ग तथा मृत्युलोक दोनो मे दुर्लभ यह उत्तम व्रत अच्छी तरह विधानपूर्वक सम्पन्न करके मनुष्य मोह से छूट जाता है वह मै कहता हूं । सुनो- बहुत पुण्य देने वाला स्वर्ग तथा मृत्युलोक दोनो में दुर्लभ यह उत्तम व्रत है । आज मै प्रेमवश होकर तुमसे कहता हूं । श्री सत्यनारायण भगवान् का यह व्रत अच्छी तरह विधानपूर्वक सम्पन्न करके मनुष्य तुरन्त ही यहाँ सुख भोगकर मरने पर मोक्ष को प्राप्त होता है ।" श्री भगवान् के वचन सुनकर

  क्रमशः

नारद मुनि बोले कि उस व्रत का फल क्या है ? क्या विधान है ? किसने यह व्रत किया है और किस दिन यह व्रत करना चाहिए ? हे भगवान् मुझसे विस्तार से कहो । भगवान् बोले- दु:ख शोक आदि को दूर करने वाला, यह व्रत सब स्थानो पर विजयी करने वाला है। भक्ति और श्रद्धा के साथ किसी भी दिन मनुष्य श्री सत्यनारायण की शाम के समय ब्राह्मणो और बन्धुओ के साथ धर्म परायण होकर पूजा करें । भक्तिभाव ससे नैवेद्य, केले का फल, घी, दूध और गेंहू का चूर्ण सवाया लेवे । गेहूं के अभाव में साठी का चूर्ण, शक्कर अथवा गुड़ लें तथा भक्ति-भाव से भगवान् का स्मरण करता हुआ समय व्यतीत करे । इस तरह इत करने पर मनुष्यो की इच्छा निश्चय पूरी होती है । विशेष खर कलि-काल में मृत्युलोक पर यही मोक्ष का सरल उपाय है।

।। इति श्री सत्यनारायण व्रतकथा का प्रथम अध्याय सम्पूर्ण ।।

।। दूसरा आध्याय ।।

सूतजी बोले– हे ऋषियो ! जिसने पहले समय मे इस व्रत को किया है उसका इतिहास कहता हूं ध्यान से सुनो । सुन्दर काशी पुरी नगरी मे एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण रहता था । वह भूख और प्यास से बेचैन हुआ पृथ्वी पर घुमता था । ब्राह्मणो से प्रेम करने वाले श्री भगवान् ने ब्राह्मण को दु:खी देखकर बूढ़े ब्राह्मण का रूप धारण कर उसके पास जा आदर के साथ पूछा– हे विप्र ! तुम नित्य ही दु:खी होकर पृथ्वी पर क्यो घुमते हो ? हे श्रेष्ठ ब्राह्मण यह सब मुझसे कहो, मै सुनना चाहता हूं । ब्राह्मण बोला– मै निर्धन ब्राह्मण हूं, भिक्षा के लिये पृथ्वी पर फिरता हूं । हे भगवान ! यदि आप इससे छुटकारे का उपाय जानते हो तो कृपा कर कहो । वृद्ध ब्राह्मण बोला कि श्री सत्यनारायण भगवान् मनवांछित फल देने वाले है । इसलिए हे ब्राह्मण तू उनका पूजन कर जिसके करने से मनुष्य सब दु:खो से मुक्त होता है । ब्राह्मण को व्रत का सारा विधान बतला कर बूढ़े ब्राह्मण का रूप धारण करने वाले श्री सत्यनारायण भगवान अन्तर्धान हो गए। जिस व्रत को वृद्ध ब्राह्मण ने बतलाया है, मै उसको करूंगा, यह निश्चय करने पर उस वृद्ध ब्राह्मण को रात मे नींद नही आई। वह सवेरे उठ कर श्री सत्यनारायण भगवान के व्रत का निश्चय कर भिक्षा के लिये चल दिया। उस दिन उसको भिक्षा मे बहुत धन मिला जिससे बन्धु–बांधवों के साथ उसने श्री सत्यनारायण का व्रत किया। इसके करने से विप्र सब दुखो से छुटकर अनेक प्रकार की सम्पत्तियो से युक्त हुआ। उस समय से वह विप्र हर मास व्रत करने लगा। इस तरह सत्यनारायण भगवान् के व्रत को जो करेगा। वह सब पापों से छुटकर

क्रमश:

क्या कहूँ ? ऋषि बोले- हे मुनीश्वर ! संसार मे इस विप्र से सुनकर किस-किस ने इस व्रत को किया हम सब सुनना चाहते है। इसके लिए हमारे मन मे श्रद्धा है । सूतजी बोले- हे मुनियों ! जिस-जिस ने इस व्रत को किया वो सब सुनो। एक समय यह वृद्ध ब्राह्मण धन और एश्वर्य के अनुसार बन्धु-बान्धवो के साथ व्रत करने को तैयार हुआ। उसी समय एक लकड़ी बेचने वाला बूढ़ा आदमी आया और बाहर लकड़ियो को रखकर विप्र के मकान मे गया। प्यास से दु:खी होकर लकड़हारा उनको व्रत करते देखकर विप्र को नमस्कार कर कहने लगा कि आप यह किसका पूजन कर रहे है और इस व्रत को करने से क्या फल मिलता है ? कृपा करके मुझसे कहो ।

ब्राह्मण ने कहा- सब मनोकामनाओं को पूरा करने वाला यह श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत है, इनकी ही कृपा से मेरे यहां धन-धान्य आदि की वृद्धि हुई है, विप्र से इस बारे मे जानकर लकड़हारा बहुत प्रसन्न हुआ। भगवान् का चरणामृत ले और भोजन करने के बाद अपने घर को गया।

क्रमश:

लकड़हारे ने अपने मन मे इस प्रकार का संकल्प किया कि आज ग्राम मे लकड़ी बेचने से जो धन मिलेगा उसी से सत्यनारायण देव का उत्तम व्रत करूँगा। यह मन मे विचार कर वह बूढ़ा आदमी लकड़ियां अपने सिर पर रखकर जिस नगर में धनवान लोग रहते थे, वह ऐसे सुन्दर नगर में गया। उस रोज वहां पर उसे उन लकड़ियों का दाम पहले दिनों से चौगना मिला। तब वह बूढ़ा आदमी लकड़ियां अपने सिर पर रखकर जिस नगर में धनवान लोग रहते थे, वह ऐसे सुन्दर नगर मे गया । उस रोज वहां पर उसे उन लकड़ियो का दाम ले और प्रसन्न होकर पके केले की फली, शक्कर, घी, दुग्ध, दही और गैंहू का चूरन इत्यादि श्री सत्यनारायण भगवान् के व्रत की कुल सामग्रियों को लेकर अपने घर गया। फिर उसने अपने भाइयों को बुलाकर विधि के साथ भगवान् जी का पूजन और व्रत किया। उस व्रत के प्रभाव से वह बूढ़ा लकड़हारा धन, पुत्र आदि से युक्त हुआ और संसार के समस्त सुख भोग कर बैकुण्ठ को चला गया।

।। इति श्री सत्यनारायण व्रतकथा का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण ।।

तृतीय अध्याय

श्री सूतजी बोले, 'हे ऋषि-मुनियो! अब मैं आपको आगे की कथा सुनाता हूं। प्राचीन समय में कनकपुर में उल्कामुख नामक एक बुद्धिमान् तथा सत्यवादी राजा राज करता था। वह प्रतिदिन मंदिर में जाकर श्री सत्यनारायण भगवान् की पूजा करता था और निर्धनों को खूब अन्न, वस्त्र और धन दान करता था। उसकी पत्नी सुभद्रा बहुत सुशील थी। वे दोनों हर महीने श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत करते थे। श्री सत्यनारायण की अनुकम्पा से उनके महल में धन-सम्पत्ति के भण्डार भरे थे। उनकी सारी प्रजा बहुत आनंद से जीवन-यापन कर रही थी। एक बार राजा और रानी बहुत-से लोगों के साथ जब भद्रशीला नदी के किनारे श्री सत्यनारायण भगवान् की पूजा कर रहे थे, तो नदी के किनारे एक बड़ी नौका आकर ठहरी। उस नाव में एक धनी व्यापारी यात्रा कर रहा था। वह बहुत-सा धन कमाकर अपने नगर को लौट रहा था। उसका सारा धन उस नाव में रखा हुआ था।

नाव से उतरकर व्यापारी राजा के समीप पहुंचा। राजा को पूजा करते देख उसने कहा, 'हे राजन्! आप इन सब लोगों के साथ मिलकर किसकी पूजा कर रहे हैं? इस पूजा के करने से मनुष्य को क्या लाभ होता है?' राजा ने व्यापारी से कहा, 'हम हर

पूर्णिमा को सत्यनारायण भगवान् का व्रत करते हैं और फिर पूजा-अर्चना के बाद भगवान् का प्रसाद लोगों को बांटकर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण करते हैं। सत्यनारायण भगवान् की पूजा से निस्सन्तान को सन्तान प्राप्त होती है। दुखियों के दुःख दूर होते हैं। राजा की बात सुनकर व्यापारी ने कहा, 'हे राजन्! मैं भी सत्यनारायण भगवान् का व्रत करना चाहता हूं। कृपया मुझे इस व्रत को करने की विधि बतलाएं।' राजा ने व्यापारी को सत्यनारायण व्रत की पूरी विधि बताई। राजा ने व्रतकथा सुनने के बाद व्यापारी को भी प्रसाद दिया। श्री सत्यनारायण भगवान् का स्मरण करते हुए व्यापारी ने प्रसाद ग्रहण किया और वापस लौटकर अपनी पत्नी लीलावती से कहा, 'हमारी कोई सन्तान नहीं है। कनकपुर के राजा उल्कामुख ने मुझे बताया है कि श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत करने और उनकी कथा सुनने से सभी मनोकामनाएं पूरी होती हैं। यदि सत्यनारायण भगवान् की अनुकम्पा से हमारे कोई सन्तान हुई तो मैं श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत अवश्य करूंगा।' व्यापारी के ऐसा निश्चय करने के कुछ समय बाद

लीलावती गर्भवती हुई। दसवें महीने में उसने एक सुंदर कन्या को जन्म दिया। व्यापारी ने पुत्री जन्म पर बहुत खुशियां मनाईं, लेकिन सत्यनारायण भगवान् का व्रत नहीं किया। जब उसकी पत्नी लीलावती ने अपने पति से श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत करने के लिए कहा तो वह बोला, 'अभी क्या जल्दी है। मैं इधर व्यापार में बहुत व्यस्त हूं। मुझे अभी फुर्सत नहीं है। जब अपनी बेटी बड़ी हो जाएगी और इसका विवाह करूंगा तो मैं अवश्य श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत करूंगा।' अपने पति के वचन सुनकर लीलावती चुप रह गई। व्यापारी की कन्या कलावती शुक्लपक्ष के चंद्रमा की तरह तेजी से बड़ी होने लगी। पलक झपकते ही 16 वर्ष बीत गए। एक दिन व्यापार में बहुत-सा धन कमाकर घर लौटे व्यापारी ने अपनी बेटी को सहेलियों के साथ उपवन में घूमते देखा तो उसे उसके विवाह की चिन्ता होने लगी। व्यापारी ने कलावती के लिए सुयोग्य वर ढूंढ़ने के लिए अपने सेवकों को दूर-दूर के नगरों में भेजा। व्यापारी के सेवक कंचनपुर नगर में पहुंचे। उस नगर में उन्होंने एक वणिक-पुत्र को देखा। वणिक का बेटा अत्यंत सुन्दर और गुणवान् था। सेवकों ने वापस लौटकर व्यापारी को उस वणिक के बेटे के बारे में बताया। व्यापारी उस सुंदर लड़के को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और कलावती का विवाह बहुत धूमधाम से उसके साथ कर दिया। दहेज में उसने वणिक-पुत्र को बहुत-सा धन दिया। कलावती का विवाह भी हो गया, लेकिन व्यापारी

ने श्री सत्यनारायण का व्रत नहीं किया। लीलावती ने अपने पति से कहा, 'नाथ! आपने कलावती के विवाह पर श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत करने का निश्चय किया था। अब तो आपको व्रत कर लेना चाहिए।' पत्नी की बात सुनकर व्यापारी ने कहा, 'अभी तो मैं अपने दामाद के साथ व्यापार के लिए जा रहा हूं। व्यापार से लौटने पर श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत-पूजा अवश्य करूंगा।' यह कहकर व्यापारी ने कई नावों में सामान भरा और अपने दामाद तथा सेवकों के साथ व्यापार के लिए निकल पड़ा। उस व्यापारी द्वारा बार-बार व्रत का निश्चय करने और फिर व्रत न करने से सत्यनारायण भगवान् क्रोधित हो गए और व्यापारी को दण्ड देने का निश्चय किया।

व्यापारी अपने दामाद के साथ रत्नसारपुर में पहुंचकर व्यापार करने लगा। एक दिन कुछ चोर महल में चोरी करके भाग रहे थे। सैनिक उनका पीछा कर रहे थे। भागते हुए चोरों ने सैनिकों से बचने के लिए चोरी का धन अवसर पाकर व्यापारी की नावों में छिपा दिया। खाली हाथ चोर आराम से भाग गए। चोरों का

पीछा करते हुए सैनिक व्यापारी के पास पहुंचे। उन्होंने व्यापारी की नावों की तलाशी ली तो उन्हें राजा का चोरी गया धन मिल गया। तब सैनिक व्यापारी और उसके दामाद को बंदी बनाकर राजा के पास ले गए। राजा ने उन दोनों को बंदीगृह में डाल दिया और उनका सारा धन ले लिया। श्री सत्यनारायण के प्रकोप से उधर लीलावती पर भी मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। उसके घर में चोरी हो गई और चोर सारा धन चुराकर ले गए। घर में खाने के लिए भी अन्न नहीं बचा। भूख-प्यास से व्याकुल होकर व्यापारी की बेटी कलावती एक ब्राह्मण के घर गई। उस ब्राह्मण के घर में श्री सत्यनारायण भगवान् की व्रतकथा हो रही थी। उसने भी वहां बैठकर व्रतकथा सुनी और प्रसाद लिया। घर लौटकर कलावती ने अपनी मां लीलावती को सारी बात बताई। कलावती से श्री सत्यनारायण भगवान् की व्रतकथा की बात सुनकर लीलावती ने भी व्रत करने का निश्चय किया। अगले दिन लीलावती ने अपने परिवार और आसपास के लोगों के साथ श्री सत्यनारायण भगवान् की पूजा की। पूजा के बाद सबको प्रसाद बांटकर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण किया। लीलावती ने अपने पति और दामाद के घर लौट आने की मनोकामना से श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत किया था। लीलावती के विधिपूर्वक व्रत करने और प्रसाद ग्रहण करने से श्री सत्यनारायण भगवान् ने प्रसन्न होकर उसकी मनोदःपना पूरी की। उन्होंने राजा चंदकेतु को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'हे राजन्!

व्यापारी और उसका दामाद बिल्कुल निर्दोष हैं। सुबह उठते ही दोनों को मुक्त कर दो। उन दोनों का सारा धन भी वापस लौटा दो। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो मैं तुम्हारा सारा वैभव नष्ट कर दूंगा। इतना कहकर श्री सत्यनारायण भगवान् अंतर्धान हो गए। प्रातः होते ही राजा चंदकेतु ने अपने मंत्रियों और राजज्योतिषी को रात के स्वप्न की बात बताई तो सबने व्यापारी और उसके दामाद को छोड़ देने के लिए कहा। राजा चंदकेतु ने तुरन्त उस व्यापारी और उसके दामाद को छोड़ दिया। उनका सारा धन भी वापस कर दिया। इस प्रकार श्री सत्यनारायण भगवान् की अनुकम्पा से व्यापारी और उसका दामाद दोनों खुशी-खुशी अपने नगर की ओर चल दिए।

॥ इति तृतीय अध्यायः ॥

चतुर्थ अध्याय

श्री सूतजी बोले, 'उस व्यापारी ने अपने दामाद के साथ शुभमुहूर्त में नावों द्वारा रत्नसारपुर से प्रस्थान किया। लंबी यात्रा करने के बाद व्यापारी ने एक नगर के किनारे नावों को रोककर भोजन किया और फिर दोनों विश्राम करने लगे। तभी श्री सत्यनारायण भगवान् साधु के रूप में व्यापारी के पास पहुंचे और पूछा, 'हे वणिक! तेरी नावों में क्या सामान लदा हुआ है?' व्यापारी ने मन-ही-मन सोचा, दण्डी साधु अवश्य ही कुछ मांगने की इच्छा से सामान के बारे में पूछ रहा है। यह सोचकर व्यापारी ने झूठ बोला, 'हे दण्डी स्वामी! मेरी नावों में तो बेल और पत्र (पत्ते) भरे हुए हैं।' व्यापारी के झूठे वचन सुनकर सत्यनारायण भगवान् ने क्रोधित होते हुए कहा, 'हे वैश्य! जो तुमने कहा है, वही सत्य होगा।' इतना कहकर सत्यनारायण भगवान् कुछ दूर जाकर अंतर्धान हो गए। उधर व्यापारी दण्डी साधु को वहां से खाली हाथ लौटाकर बहुत प्रसन्न हुआ। लेकिन जब व्यापारी ने अपनी नावों में बेल और पत्र (पत्ते) भरे हुए देखे तो वह जोर-जोर से विलाप करने लगा और मन-ही-मन अपने झूठ बोलने पर प्रायश्चित्त करने लगा। रोते-रोते व्यापारी मूर्च्छित हो गया। कुछ देर बाद जब उसकी मूर्च्छा नष्ट हुई तो वह फिर विलाप करने लगा। तब उसके दामाद ने कहा, 'आप इतना दुखी मत

होइए। यह सब उस दण्डी साधु के शाप के कारण हुआ है। अत: वही दण्डी महाराज हमें इस विपत्ति से छुटकारा दिला सकते हैं। दामाद के वचन सुनकर व्यापारी दण्डी साधु की तलाश में चल दिया। कुछ देर ढूंढ़ने पर उसे एक वृक्ष के नीचे दण्डी साधु के रूप में सत्यनारायण भगवान् मिल गए। व्यापारी ने दण्डी साधु के चरणों पर गिरकर झूठ बोलने की क्षमा मांगी। दण्डी स्वरूप सत्यनारायण भगवान् बोले, 'हे वणिक-पुत्र! तेरे बार-बार झूठ बोलने के कारण ही मैंने तुझे इतना दण्ड दिया है। तूने बार-बार सत्यनारायण भगवान् अर्थात् मेरी पूजा करने के लिए कहा, लेकिन कभी पूजा की नहीं।' व्यापारी ने तब हाथ जोड़कर कहा, 'हे भगवन्! आप तो दीन-दुखियों के कष्ट दूर करनेवाले हैं। सबकी मनोकामनाएं पूरी करते हैं। मेरी इस गलती को भी क्षमा करें। आपके रूप को तो ब्रह्मा भी नहीं जान पाते। फिर भला मैं अज्ञानी कैसे आपकी लीला को समझ पाता। अब मैं जीवन में कभी झूठ नहीं बोलूंगा। सदैव श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत और पूजा किया करूंगा। आप मुझ पर अनुकम्पा

करें।' व्यापारी की क्षमा-याचना सुनकर दण्डी साधु ने उसे क्षमा कर दिया। उसी समय व्यापारी की नावों में भरे हुए बेल और पत्ते धन-धान्य में परिवर्तित हो गए। व्यापारी ने अपने सेवकों के साथ अगले दिन श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत करके उनकी पूजा की। सबको प्रसाद वितरित करके स्वयं भी प्रसाद ग्रहण किया। उसके बाद व्यापारी ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

अपने नगर में पहुंचकर व्यापारी ने एक सेवक को अपने घर भेजा। सेवक ने उसके घर पहुंचकर लीलावती को सूचित किया। उस समय लीलावती और कलावती दोनों श्री सत्यनारायण भगवान् की पूजा कर रही थीं। पति और दामाद के लौट आने का समाचार सुनकर लीलावती ने पूजा पूरी करके प्रसाद ग्रहण करने के बाद कलावती से कहा, 'बेटी! मैं नदी किनारे जा रही हूं। तू घर का काम पूरा करके आ जाना।' कहकर लीलावती नदी की ओर चल पड़ी। परन्तु कलावती पति से मिलने की खुशी में प्रसाद ग्रहण किए बिना ही घर से निकलकर नदी किनारे जा पहुंची। उसके प्रसाद ग्रहण न करने के कारण सत्यनारायण भगवान् क्रोधित हो उठे। उन्होंने व्यापारी की नावों को नदी में डुबो दिया। अपने पति को वहां न देख कलावती ने जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। तब व्यापारी ने कहा, 'पुत्री! अवश्य ही तुझसे कोई भूल हुई है। उस भूल के कारण श्री सत्यनारायण भगवान् ने तुझे यह दण्ड दिया है।' तब व्यापारी ने सत्यनारायण

भगवान् से प्रार्थना की, 'हे भगवन्! मेरे परिवार के किसी स्त्री-पुरुष से कोई भूल हुई हो तो उसे अवश्य क्षमा कर देना।' तभी आकाशवाणी हुई, 'हे वणिक-पुत्र! तेरी कन्या मेरा प्रसाद ग्रहण किए बिना ही चली आई है। यदि अब घर पहुंचकर तेरी कन्या प्रसाद ग्रहण करके वापस आए तो उसे पति के दर्शन होंगे और डूबी हुई नावें भी जल के ऊपर आ सकेंगी।' कलावती ने वैसा ही किया। उसके प्रसाद ग्रहण करके वापस लौटने पर नावें जल के ऊपर आ गईं। दामाद भी सुरक्षित नदी से निकल आया। घर लौटकर व्यापारी ने अपने परिवार और बंधु-बांधवों के साथ मिलकर विधिनुसार श्री सत्यनारायण भगवान् की पूजा की। उसकी सभी मंगलकामनाएं पूरी हुईं और वह आनंदपूर्वक जीवन-यापन करता हुआ विष्णुलोक को चला गया।

॥ इति चतुर्थ अध्याय:॥

पंचम अध्याय

श्री सूतजी बोले, 'हे ऋषि-मुनियो! मैं और भी कथा सुनाता हूं। कौशलपुर में एक राजा था–तुंगध्वज। उसकी प्रजा उसकी छत्रछाया में आनंदपूर्वक रह रही थी। राजा तुंगध्वज अपनी प्रजा के सुख-दु:ख का बहुत ध्यान रखता था। लेकिन एक बार उसने भी सत्यनारायण भगवान् का प्रसाद ग्रहण नहीं किया। तब सभी को चिन्ताओं से मुक्त करके, धन-सम्पत्ति से भण्डार भरकर प्राणियों को जीवन के सभी सुख देनेवाले श्री सत्यनारायण भगवान् ने राजा को प्रसाद ग्रहण न करने का दण्ड दिया।

एक दिन राजा तुंगध्वज जंगल में हिंसक पशुओं का शिकार करने निकला था। तेजी से घोड़ा दौड़ाकर शिकार का पीछा करते हुए वह अपने सैनिकों से अलग हो गया और देर तक हिंसक जानवरों का शिकार किया। अत: कुछ देर विश्राम करने की इच्छा से वह एक बड़े वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया। समीप ही कुछ चरवाहे श्री सत्यनारायण भगवान् की पूजा कर रहे थे। राजा ने उनके पास से गुजरते हुए सत्यनारायण भगवान् को नमस्कार नहीं किया। चरवाहों ने राजा को पूजा के बाद प्रसाद दिया, तो राजा ने उन्हें छोटे लोग समझकर प्रसाद ग्रहण नहीं किया और घोड़े पर सवार हो अपने नगर की ओर चल दिया। राजा जब नगर में पहुंचा तो देखा कि उसका सारा वैभव तथा

धन-सम्पत्ति आदि नष्ट हो गया है। श्री सत्यनारायण के प्रकोप से राजा निर्धन हो गया। तब राजज्योतिषी ने राजा से कहा, 'महाराज! आपसे अवश्य ही कोई भूल हुई है। अगर आप उस भूल का प्रायश्चित्त कर लें तो सबकुछ पहले जैसा हो जाएगा।' राजा को तुरन्त अपनी भूल का स्मरण हो आया। अत: मंदिर में जाकर राजा ने श्री सत्यनारायण भगवान् से क्षमा मांगी और उनकी पूजा की। पूजा के बाद प्रसाद ग्रहण करने से श्री सत्यनारायण भगवान् की अनुकम्पा से चमत्कार हुआ। राजा का खोया वैभव पुन: लौट आया। श्री सत्यनारायण भगवान की अनुकम्पा से जीवन के सभी सुखों का भोग करते हुए अंत में राजा तुंगध्वज वैकुण्ठ धाम को गया और मोक्ष को प्राप्त किया। श्री सत्यनारायण भगवान् के व्रत-पूजा को जो भी मनुष्य करता है, उसके सभी दु:ख, चिन्ताएं नष्ट होती हैं। उसके घर में धन-धान्य के भण्डार भरे रहते हैं। निस्संतानों को सन्तान की प्राप्ति होती है और सभी मनोकामनाओं को प्राप्त कर मनुष्य अंत में मोक्ष को प्राप्त कर सीधे वैकुण्ठ धाम को जाता है।

श्री सूतजी ने कुछ पल रुककर कहा, 'हे श्रेष्ठ मुनियो! श्री सत्यनारायण भगवान् के व्रत को पूर्व जन्म में जिन लोगों ने किया उन्हें दूसरे जन्म में भी सभी तरह के सुख प्राप्त हुए। वृद्ध शतानंद ब्राह्मण ने पूर्वजन्म में सत्यनारायण का विधिवत् व्रत किया, तो दूसरे जन्म में सुदामा के रूप में भगवान् की पूजा करते हुए अंत में मोक्ष को प्राप्त कर वैकुण्ठ धाम को चला गया। उल्कामुख राजा अगले जन्म में राजा दशरथ के रूप में मोक्ष को प्राप्त करके वैकुण्ठ को गए। व्यापारी ने मोरध्वज के रूप में जन्म लिया और अपने पुत्र को आरे से चीरकर भगवान् की अनुकम्पा से वैकुण्ठ को प्राप्त किया। राजा तुंगध्वज अगले जन्म में मनु के रूप में जन्म लेकर भगवान् का पूजा-पाठ करते हुए, लोकप्रिय होकर सद्कर्म करते हुए मोक्ष को प्राप्त कर वैकुण्ठ धाम को चले गए। हे ऋषि-मुनियो! श्री सत्यनारायण भगवान् का व्रत और पूजा मनुष्य को सभी चिन्ताओं से मुक्त करके, धन-सम्पत्ति के भण्डार भरकर अंत में जन्म-जन्मान्तर के चक्रव्यूह से मुक्ति दिलाकर मोक्ष प्रदान करता है।

॥इति पंचम अध्याय॥

सावन के सोमवार (शिवजी के व्रत)

श्रावण मास के प्रत्येक सोमवार को शिवजी के व्रत किये जाते है। श्रावण मास में शिवजी के व्रत एवं पूजा का विशेष महत्व हैं। शिवजी के यह व्रत बहुत फलदायी माने जाते हैं। इन व्रतों को करने वाले भक्तों से शिवजी बहुत प्रसन्न होते हैं। यह व्रत शिव जी को प्रसन्न करने के लिये किए जाते हैं।

इन व्रतों में शिव जी का पूजन करके एक समय भोजन किया जाता है। इस व्रत में भगवान् शिव और माता पार्वती का ध्यान करते हुए पूजन करना चाहिए। इससे भगवान् शिव प्रसन्न होकर मनवांछित फल देते हैं। सावन के प्रत्येक सोमवार को गणेशजी, शिवजी, पार्वती जी और नन्दी की पूजा करने का विधान है।

शिवजी की पूजा में जल, दूध, दही, चीनी, घी, शहद, पंचामृत, कलावा, वस्त्र, चंदन, रोली, चावल, फूल, विजया, आक, बेल पात्र, धतूरा, कमलगट्टा, पान, सुपारी, लौंग, इलायची, पंचमेवा, धूप, दीप, दक्षिणा सहित पूजा होती है। साथ ही कपूर से आरती करके भजन-कीर्तन और जागरण करना चाहिए। पूजन के पश्चात् कथा सुननी चाहिए और किसी ब्राह्मण से रूद्राभिषेक करना चाहिए। ऐसा करने से भगवान् शिव शीघ्र ही प्रसन्न होकर सभी मनोकामनाएं पूर्ण कर देते हैं। सोमवार का व्रत करने से पुत्र, धन, विद्या आदि मनवांछित फल की प्राप्ति होती है।

इस दिन सोलह सोमवार व्रत कथा का माहात्म्य सुनना चाहिए।

पूजा की विधि एवं विधान

श्री दुर्गा पूजा विशेष रूप से वर्ष में दो बार चैत्र व अश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होकर नवमी तक होती है। देवी दुर्गा के नव(९) स्वरूपों की पूजा होने के कारण 'नवदुर्गा' तथा ९ दिन में पूजा होने से नवरात्र कहा जाता है । चैत्र मास के नवरात्र "वार्षिक नवरात्र" तथा आश्विन मास के नवरात्र "शारदीय नवरात्र" कहलाते है।

भगवती दुर्गा का साधक भक्त स्नानादि से शुद्ध होकर, शुद्ध वस्त्र पहनकर पूजा स्थल को सजाये । मण्डप में श्री दुर्गा की मूर्ति स्थापित करें । मूर्ति के दायीं ओर कलश की स्थापन कर ठीक कलश के सामने मिट्टी और रेत मिलाकर जौ बो दें । मण्डप के पूर्व कोने में दीपक की स्थापना करे । पूजन मे सर्वप्रथम गणेश जी का पूजन करके अन्य देवी-देवताओ का पूजन करें । उसके बाद जगदम्बा का पूजन करें ।

पूजन सामग्री : जल,चन्दन, रोली, कलावा, अक्षत, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीप, नेवैद्य, फल, पान, सुपारी, लौंग, इलाचयी, आसन, चौकी, पूजन पात्र, आरती कलशादि ।

कुमारी-पूजन :

आठ या नौ दिन तक इस प्रकार पूजा करने के बाद महाष्टमी या रामनवमी को पूजा करने के बाद कुमारी कन्याओ को खिलाना चाहिए । इस कुमारियों की संख्या ९ हो तो अति उत्तम, नही तो कम से कम दो होनी चाहिए । कुमारियों की आयु १ से १० वर्ष तक होनी चाहिए।

कमृश: इन सब कुमारियों के नमस्कार मंत्र ये है :

(१) कुमार्य्यै नम: (२) त्रिमूर्त्यै नम: (३) कल्याण्यै नम: (४) रोहिण्यै नम: (५) कालिकायै नम: (६) चाण्डिकायै नम: (७) शाम्भव्यै नम: (८) दुर्गायै नम: (९) सुभाद्रायै नम: ।

पूजन करने के बाद जब कुमारी देवी भोजन कर लें तो उनसे अपने सिर पर अक्षत छुड़वायें और उन्हे दक्षिणा दें । इस तरह करने से महामाया भगवती अत्यन्त प्रसन्न होकर मनोरथ पूर्ण करती हैं।

नवरात्री व्रत कथा

प्राचीन काल में चैत्र वंशी सुरथ नामक एक राजा राज करते थे। एक बार उनके शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया और उन्हे युद्ध में हरा दिया । राजा को बलहीन देखकर उसके दुष्ट मंत्रियों ने राजा की सेना और खजाना अपने अधिकार में कर लिया। जिसके परिणाम स्वरूप राजा सुरथ दुखी और निराश होकर वन की ओर चले गए और वहाँ महर्षि मेधा के आश्रम में रहने लगे ।

एक दिन आश्रम के निकट राजा की भेंट समाधि नामक एक वैश्य से हुई, जो अपनी स्त्री और पुत्रों के दुर्व्यवहार से अपमानित होकर वहाँ निवास कर रहा था। समाधि ने राजा को बताया कि वह अपने दुष्ट स्त्री-पुत्रादिकों से अपमानित होने के बाद भी उनका मोह नहीं छोड़ पा रहा है। उसके चित्त को शान्ति नहीं मिल पा रही है । इधर राजा का मन भी उसके अधीन नहीं था। राज्य, धनादिक की चिंता अभी भी उसे बनी हुई थी, जिससे वह बहुत दुखी थे । तदान्तर दोनों महर्षि मेधा के पास गए । महर्षि मेधा यथायोग्य सम्भाषण करके दोनों ने वार्ता आरम्भ की । उन्होने बताया - 'यद्यपि हम दोनों अपने स्वजनों से अत्यन्त अपमानित और तिरस्कृत होकर यहाँ आए हैं, फिर भी उनके प्रति हमारत मोह नहीं छुटता । इसका क्या कारण है ?'

महर्षि मेधा ने कहा - "मन शक्ति के अधीन होता है । आदिशक्ति भगवती के दो रूप है - विद्या और अविद्या । विद्या ज्ञान का स्वरूप है तथा अविद्या अज्ञान का स्वरूप है । अविद्या मोह की जननी है किंतु जो लोग मां भगवती को संसार का आदि कारण मानकर भक्ति करते है, मां भगवती उनहे जीवन मुक्त कर देती है ।"

कम्रश:

राजा सुरथ ने पूछा - "भगवन् ! वह देवी कौन सी है, जिसको आप महामाया कहते है ? हे ब्रह्मन्! वह कैसे उपन्न हुइ! और उसका क्या कार्य है? उसके चरित्र कौन-कौन से है? प्रभो! उसका प्रभाव, स्वरूप आदि सबके बारे में विस्तार में बताइये ।"
महर्षि मेधा बोले - राजन्! वह देवी तो नित्यास्वरूप है, उनके द्वारा यह संसार रचा गया हैं। तब भी उसकी उत्पति अनेक प्रकार से होती है, जिसे मैं बताता हूं । संसार को जलमय करके जब भगवान् विष्णु योगनिद्रा का आश्रय लेकर, शेरशय्या पर सो रहे थे, तब मधु-कैटभ नाम के असुर उनके कानों के मैल से प्रकट हुए और वह श्री ब्रह्माजी को मारने के लिए तैयार हो गए। उनके इस भयानक रूप को देखकर ब्रह्माजी ने अनुमान लगा लिया कि भगवान विष्णु के सिवाय मेरा कोई रक्षक नहीं है । किंतु विडम्बना यह थी कि भगवान सो रहे थे ।
तब उन्होने श्री भगवान को जगाने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली योगनिद्रा की स्तुति की। परिणामत: तमोगुण अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रा भगवान विष्णु के नेत्र, नासिका, मुख, बाहु और हृदय से निकलकर बह्माजी के सामने खड़ी हो गई। योगनिद्रा के निकलते ही श्रीहीर तुरन्त जाग उठे ।उन्हे देखकर राक्षस क्रोधित हो उठे और युद्ध के लिए उनकी तरफ दौड़े । भगवान विष्णु और उन राक्षसों में पाँच हजार वर्षों तक युद्ध हुआ। अंत में दोनों राक्षसो ने भगवान की वीरता से प्रसन्न होकर उन्हे वर माँगने को कहा ।
भगवान ने कहा - यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथों मर जाओ। बस, इतना ही वर मैं तुम से माँगता हूं ।" महर्षि मेधा बोले - इस तरह से जब वह धोखे में आ गए और अपने चारों ओर जल ही जल देखा तो भगवान से कहने लगे - जहाँ पर जल न हो, उसी जगह हमारा वध कीजिए ।"तथास्तु" कहकर भगवान श्रीहरि ने उन दोनों को अपनी जांघ पर लिटा कर सिर काट डाले। महर्षि मेधा बोले - 'इस तरह से यह देवी श्री ब्रह्माजी के स्तुति करने पर प्रकट हुई थी, अब तुम से उनके प्रभाव का वर्णन करता हूँ, सो सुनो ।

क्रमश:

प्रचीन काल में देवताओं के स्वामी इंद्र और असुरों के स्वामी महिषासुर के बीच पूरे सौ वर्ष तक घोर युद्ध हुआ था। इस युद्ध में देवताओं की सेना परास्त हो गई और इस प्रकार देवत्ताओं को जीत महिषासुर इन्द्र बन बैठा था । तब हारे हुए देवता श्री ब्रह्माजी को साथ लेकर भगवान शंकर व विष्णु जी के पास गए और अपनी हार का सारा वृत्तान्त उन्हे कह सुनाया। उन्होने महिषासुर के वध के उपाय की प्रार्थना की। साथ ही अपना राज्य वापस पाने के लिए उनकी कृपा की स्तुति की। देवताओं की बातें सुनकर भगवान विष्णु और शंकर जी को दैत्यों पर बड़ा गुस्सा आया। गुस्से मे भरें हुए भगवान विष्णु के मुख से बड़ा भारी तेज निकला और उसी प्रकार का तेज भगवान शंकर, ब्रह्माजी और इन्द्र आदि दूसरे देवताओं के मुख से प्रकट हुआ, जिससे दसों दिशाएं जलने लगी। अंत में यही तेज एक देवी के रूप में परिवर्तित हो गया।
देवी ने सभी देवताओं से आयुध, शक्ति तथा आभूषण प्राप्त कर उच्च-स्वर से गगनभेदी गर्जना की। जिससे समस्त विश्व में हलचल मच गई पृथ्वी, पर्वत आदि डोल गए। क्रोधित महिषासुर दैत्य सेना लेकर इस सिंहनाद की ओर दौड़ा। उसने देखा की देवी की प्रभा से तीनों लोक प्रकाशित हो रहे है। महिषासुर ने अपना समस्त बल और छल लगा दिया परन्तु देवी के सामने उसकी एक न चली। अंत में वह देवी के हाथों मारा गया। आगे चलकर यही देवी शुम्भ-निशुम्भ नामक असुरों का वध करने के लिए गौरी देवी के शरीर से उत्पन्न हुई।
उस समय देवी हिमालय पर विचर रही थी। जब शुम्भ-निशुम्भ के सेवकों ने उस परम मनोहर रूप वाली अम्बिका देवी को देखा और तुरन्त अपनें स्वामी के पास जाकर कहा - "महाराज! दुनिया के सारे रत्न आपके अधिकार में है। वे सब आपके यहाँ शोभा पाते है । ऐसे ही एक स्त्री रत्न को हमनें हिमालय की पहड़ियों में देखा है । आप हिमालय को प्रकाशित करने वाली दिव्य-कांति युक्त इस देवी का वरण कीजिए ।

क्रमशः

यह सुनकर दैत्यराज शुम्भ ने सुग्रीव को अपना दूत बनाकर देवी के पास अपना विवाह प्रस्ताव भेजा। देवी ने प्रस्ताव को ना मानकर कहा- "जो मुझसे युद्ध में जीतेगा । मैं उससे विवाह करूँगी ।"
यह सुनकर असुरेन्द्र के क्रोध का पारावार न रहा और उसने अपने सेनापति धूम्रलोचन को देवी को केशो से पकड़कर लाने का आदेश दिया । इस पर धूम्रलोचन साठ हजार राक्षसों की सेना साथ लेकर देवी से युद्ध के लिए वहाँ पहुँचा और देवी को ललकारनें लगा । देवी ने सिर्फ अपनी हुंकार से ही उसे भस्म कर दिया और देवी के वाहन सिंह ने बाकी असुर सेना का संहार कर डाला ।
इसके बाद चण्ड-मुण्ड नामक दैत्यों को एक बड़ी सेना के साथ युद्ध के लिए भेजा गया । जब असुर देवी को पकड़ने के लिए तलवारें लेकर उनकी ओर बढे तब देवी ने काली का विकराल रूप धारण करके उन पर टूट पड़ी । कुछ ही देर में सम्पूर्ण दैत्य सेना को नष्ट कर दिया। फिर देवी ने "हूँ" शब्द कहकर चण्ड का सिर काटकर अलग कर दिया और फिर मुण्ड को यमलोक पहुँचा दिया । तब से देवी काली की संसार में चामुण्डा के नाम से ख्याति होने लगी ।
महर्षि मेधा ने आगे बताया - चण्ड-मुण्ड और सारी सेना के मारे जाने की खबर सुनकर असरों के राजा शुम्भ ने अपनी सम्पूर्ण सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी । शुम्भ की सेना को अपनी ओर आता देखकर देवी ने अपने धनुष की टंकोर से पृथ्वी और आकाश के बीच का भाग गुंजा दिया। ऐसे भयंकर शब्द को सुनकर राक्षसी सेना ने देवी और सिंह को चारों ओर से घेर लिया । उस समय दैत्यों के नाश के लिये और देवताओं के हित के लिए समस्त देवताओं की शक्तियाँ उनके शरीर से निकलकर उन्ही के रूप में आयुधों से सजकर दैत्यों से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गई । इन देव शक्तियों से घिरे हुए भगवान शंकर ने देवी से कहा - मेरी प्रसन्नता के लिए तुम शीघ्र ही इन असुरों को मारो । इसके पश्चात् देवी के शरीर से अत्यन्त उग्र रूप वाली और सैकड़ों गीदड़ियों के समान आवाज करने वाली चण्डिका- शक्ति प्रकट हुई । उस अपराजिता देवी ने भगवान शंकर को अपना दूत बनाकर शुम्भ-

क्रमश:

निशुम्भ के पास इस संदेश के साथ भेजा - जो तुम्हें अपने जीवित रहने की इच्छा हो तो त्रिलोकी का राज्य इन्द्र को दे दो, देवताओं को उनका यज्ञ भाग मिलना आरम्भ हो जाये और तुम पाताल को लौट जाओ, किन्तु यदि बल के गर्व से तुम्हारी लड़ने की इच्छा हो तो फिर आ जाओ, तुम्हारे माँस से मेरी योनियाँ तृप्त होंगी, चूंकि उस देवी ने भगवान शंकर को दूत का कार्य में नियुक्त किया था, इसलिए वह संसार में शिवदूती के नाम से विख्यात हुई ।मगर दैत्य भला कहां मानने वाले थे । वे तो अपनी शक्ति के मद में चूर थे। उन्होने देवी की बात अनसुनी कर दी और युद्ध को तत्पर हो उठे । देखते ही देखते पुन: युद्ध छिड़ गया। किंतु देवी के समक्ष असुर कब तक ठहर सकते थे । कुछ ही वक्त में देवी ने उनके अस्त्र-शस्त्रों को काट डाला ।

जब बहुत से दैत्य काल के मुख में समा गए तो महादैत्य रक्तबीज युद्ध के लिये आगे बढ़ा । उसके शरीर से रक्त की बूँदें पृथ्वी पर जैसे ही गिरती थीं तुरन्त वैसे ही शरीर वाला तथा बलवान दैत्य पृथ्वी पर उत्पन्न हो जाता था। यह देखकर देवताओ को भय हुआ, देवताओं को भयभीत देखकर चंडिका ने काली से कहा - चामुण्डे ! तुम अपने मुख को फैलाओ और और मेरे शस्त्रघात से उत्पन्न हुए रक्त बिन्दुओं तथा रक्त बिन्दुओं से उत्पन्न हुए महा असुरों को तुम अपने इस मुख से भक्षण करती हुई तुम रणभूमि में विचरो । इस प्रकार उस दैत्य का रक्त क्षीण हो जाएगा और वह स्वयं नष्ट हो जाएगा । इस प्रकार अन्य दैत्य उत्पन्न नहीं होगें। काली से इस प्रकार कहकर चण्डिका देवी रक्तबीज पर अपने त्रिशुल से प्रहार किया और काली देवी ने अपने मुख में उसका रक्त ले लिया । काली के मुख में उस रक्त से जो असुर उत्पन्न हुए, उनको उसने भक्षण कर लिया । चण्डिका ने उस दैत्य को बज्र, बाण, खड्ग इत्यादि से मार डाला ।

महादैत्य रक्तबीज के मरते ही देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और माताएं उन असुरों का रक्त पीने के पश्चात् उद्धत होकर नृत्य करने लगीं ।

क्रमशः

रक्तबीज के मारे जाने पर शुम्भ व निशुम्भ को बड़ा क्रोध आया और अपनी बहुत बड़ी सेना लेकर महाशक्ति से युद्ध करने चल दिए । महापक्रामी शुम्भ भी अपनी सेना सहित मातृगणों से युद्ध करने के लिए आ पहुँचा। किंतु शीघ्र ही सभी दैत्य मारे गए और देवी ने शुम्भ-निशुम्भ का संहार कर दिया। सारे संसार में शांति हो गई और देवतागण हर्षित होकर देवी की वंदना करने लगे ।

इन सब उपाख्यानों को सुनकर मेधा ऋषि ने राजा सुरथ तथा वणिक समाधि से देवी स्तवन की विधिवत व्याख्या की, जिसके प्रभाव से दोनों नदी तट पर जाकर तपस्या में लीन हो गए । तीन वर्ष बाद दुर्गा माता ने प्रकट होकर दोनों को आशीर्वाद दिया । इस प्रकार वणिक तो संसारिक मोह से मुक्त होकर आत्मचिंतन में लग गया तथा राजा ने शत्रुओं को पराजित कर अपना खोया हुआ राज वैभव पुन: प्राप्त कर लिया ।

समाप्त

वट सावित्री व्रत

यह व्रत सौभाग्यवती स्त्रियों का मुख्य त्यौहार माना जाता है । यह व्रत मुख्यत: ज्येष्ठ कृष्ण की अमावस्या को किया जाता है । इस दिन वट (बरगद) के वृक्ष की पूजा होती है । इस दिन सत्यवान-सावित्री और यमराज की पूजा की जाती है। स्त्रियाँ इस व्रत को अखण्ड सौभाग्यवती अर्थात अपने पति की लम्बी आयु, सेहत तथा तरक्की के लिए करती हैं । सावित्री ने इसी व्रत के द्वारा अपने पति सत्यवान को धर्मराज से छीन लिया था ।

व्रत का विधि-विधान

इस दिन स्त्रियाँ सुबह-सवेरे केशों सहित स्नान करें । तत्पश्चात् एक बांस की टोकरी में रेत भरकर ब्रह्मा की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए । ब्रह्मा के वाम-पार्श्व में सावित्री की मूर्ति स्थापित करनी चाहिए । इसी प्रकार दूसरी टोकरी में सत्यवान तथा सावित्री की मूर्तियाँ स्थापित करके दोनों टोकरियाँ वट वृक्ष के नीचे रखनी चाहिए । सर्व प्रथम ब्रह्मा और सावित्री का पूजन करना चाहिए, उसके बाद सत्यवान तथा सावित्री की पूजा करें तथा वट के पेड़ को पानी दें । जल, फूल, मौली, रोली, कच्चा सूत, भिगोया चना, गुड़ तथा धूप-दीप से वट वृक्ष की पूजा करी जाती है । वट वृक्ष को जल चढ़ा कर उसके तने के चारों ओर कच्चा धागा लपेटकर तीन बार परिक्रमा करें । वट के पत्तों के गहने पहनकर वट-सावित्री की कथा सुननी चाहिए । भीगे हुए चने का बायना निकालकर उस पर रुपये रखकर अपनी सास को दें तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त करें । यदि सास दूर हो तो बायना बनाकर वहां भेज दें । वट तथा सावित्री की पूजा के बाद प्रतिदिन पान, सिंदूर तथा कुंकुम से सुहागिन स्त्री की पूजा का भी विधान है । पूजा के समाप्त होने पर ब्राह्मणों को वस्त्र तथा फल आदि बांस के पत्ते में रखकर दान करनी चाहिए ।
यदि आपके आस-पास कोई वट वृक्ष नहीं हो तो दिवार पर वट वृक्ष की तस्वीर लगा कर पूरी श्रद्धा और आस्था से पूजा करें ।
इसके पश्चात् वट-सावित्री की कथा सुननी चाहिए ।

वट-सावित्री व्रत कथा

एक समय मद्र देश में अश्वपति नामक परम ज्ञानी राजा राज करता था । उन्होने संताप प्राप्ति के लिए अपनी पत्नि के साथ सावित्री देवी का विधिपूर्वक व्रत तथा पूजन किया और पूत्री होने का वर प्राप्त किया । इस पूजा के फल से उनके यहाँ सर्वगुण सम्पन्न सावित्री का जन्म हुआ ।
सावित्री जब विवाह योग्य हुई तो राजा ने उसे स्वयं अपना वर चुनने को कहा । अश्वपति ने उसे अपने पति के साथ वर का चुनाव करने के लिए भेज दिया ।
एक दिन महार्षि नारद जी राजा अश्वपति के यहाँ आए हुए थे तभी सावित्री अपने वर का चयन करके लौटी । उसने आदरपूर्वक नारद जी को प्रणाम किया । नारद जी के पूछने पर सावित्री ने कहा -" राजा द्युमत्सेन, जिनका राज्य हर लिया गया है, जो अन्धे होकर अपनी पत्नी के साथ वनों में भटक रहे है, उन्ही के इकलौते आज्ञाकारी पुत्र सत्यवान को मैने अपने पतिरूप में वरण किया है ।"
तब नारद जी ने सत्यवान तथा सावित्री के ग्रहों की गणना करके उसके भूत, वर्तमान तथा भविष्य को देखकर राजा से कहा - " राजन् ! तुम्हारी कन्या ने नि:सन्देह बहुत योग्य वर काचुनाव किया है । सत्वान गुणी तथा धर्मत्मा है । वह सावित्री के लिए सब प्रकार से योग्य है परन्तु एक भारी दोष है। वह अल्पायु है और एक वर्ष के बाद अर्थात जब सावित्री बारह वर्ष की हो जाएगी उसकी मृत्यु हो जाएगी ।
नारदजी की ऐसी भविष्यवाणी सुनकरराजा ने अपनी पुत्री को कोई अन्य वर खोजने के लिए कहा ।इस पर सावित्री के कहा -"पिताजी ! आर्य कन्याएं जीवन में एक ही बार अपने पति का चयन करती है। मैने भी सत्यवान को मन से अपना पति स्वीकार कर लिया है, अब चाहे वह अल्पायु हो या दीर्घायु, मैं किसी अन्य को अपने हृदय में स्थान नही दे सकती ।"
सावित्री ने आगे कहा -"पिताजी, आर्य कन्याएँ अपना पति एक बार चुनती है । राजा एक बार ही आज्ञा देते है, पण्डित एक बार प्रतिज्ञा करते है तथा कन्यादान भी एक बार किया जाता है । अब चाहे जो हो सत्यवान ही मेरा पति होगा ।"
सावित्री के ऐसे दृढ़ वचन सुनकर राजा अश्वपति ने उसका विवाह सत्यवान से कर दिया। सावित्री ने नारद जी से अपने पति की मृत्यु का समय ज्ञात कर लिया था । सावित्री अपने पति और सास-ससुर की सेवा करती हुई वन में रहने लगी ।
समय बीतता गया और सावित्री बारह वर्ष की हो गयी । नारद जी के वचन उसको दिन-प्रतिदिन परेशान करते रहे । आखिर जब नारदजी के कथनानुसार उसके पति के जविन के तीन दिन बचें, तभी से वह उपवास करने लगी । नारद जी द्वारा

क्रमश:

कथित निश्चित तिथि पर पितरों का पूजन किया । प्रतिदिन की भांति उस दिन भी सत्यवान लकड़ियाँ काटने के लिए चला तो सास-ससुर से आज्ञा लेकर वह भी उसके साथ वन में चल दी ।
वन में सत्यवान ने सावित्री को मीठे-मीठे फल लाकर दिये और स्वयं एक वृक्ष पर लकड़ियाँ काटने के लिए चढ़ गया । वृक्ष पर चढ़ते ही सत्यवान के सिर में असहनीय पीड़ा होने लगी । वह वृक्ष से नीचे उतर आया । सावित्री ने उसे पास के बड़ के वृक्ष के नीचे लिटाकर सिर अपनी गोद में रख लिया । सावित्री का हृदय कांप रहा था । तभी उसने दक्षिण दिशा से यमराज को आते देखा । यमराज और उसके दूत धर्मराज सत्यवान के जीव को लेकर चल दिये तो सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी । पीछा करती सावित्री को यमराज ने समझाकर वापस लौट जाने को कहा । परन्तु सावित्री ने कहा - "हे यमराज ! पत्नी के पत्नीत्व की सार्थकता इसी में है कि वह पति का छाया के समान अनुसरण करे । पति के पीछे जाने जाना ही स्त्री धर्म है । पतिव्रत के प्रभाव से और आपकी कृपा से कोई मेरी गति नही रोक सकता यह मेरी मर्यादा है । इसके विरूद्ध कुछ भी बोलना आपके लिए शोभनीय नहीं हैं ।"
सावित्री के धर्मयुक्त वचनों से प्रसन्न होकर यमराज ने उससे उसके पति के प्राणों के अतिरिक्त कोई भी वरदान माँगने को कहा । सावित्री ने यमराज से अपने सास-ससुर की आँखो की खोई हुई ज्योति तथा दीर्घायु माँग ली । यमराज "तथास्तु" कहकर आगे बढ़ गए । फिर भी सावित्री ने यमराज का पीछा नहीं छोड़ा । यमराज ने उसे फिर वापस जाने के लिए कहा । इस पर सावित्री ने कहा - " हे धर्मराज ! मुझे अपने पति के पीछे चलने में कोई परेशानी नहीं हैं । पति के बिना नारी जीवन की कोई सार्थकता नहीं है । हम पति-पत्नि भिन्न-भिन्न मार्ग कैसे जा सकते है । पति का अनुगमन मेरा कर्तव्य है ।"
यमराज ने सावित्री के पतिव्रत धर्म की निष्ठा देख कर पुन: वर मांगने के लिए कहा । सावित्री ने अपने सास-ससुर के खोये हुए राज्य की प्राप्ति तथा सौ भाइयों की बहन होने का वर माँगा । यमराज पुन: "तथास्तु" कहकर आगे बढ़ गए । परन्तु सावित्री अब भी यमराज का पीछा किए जा रही थी । यमराज ने फिर से उसे वापस लौट जाने को कहा, किंतु सावित्री अपने प्रण पर अडिग रही ।
तब यमराज ने कहा - " हे देवी ! यदि तुम्हारे मन में अब भी कोई कामना है तो कहो । जो माँगोगी वही मिलेगा ।" इस पर सावित्री ने कहा - "यदि आप सच में मुझ पर प्रसन्न है और सच्चे हृदय से वरदानदेना चाहते है तो मुझे सौ पुत्रों की माँ बनने का वरदान दें ।" यमराज "तथास्तु" कहकर आगे बढ़ गए ।

क्रमश:

यमराज ने पीछे मुड़कर देखा और सावित्री से कहा - " अब आगे मत बढ़ो । तुम्हे मुंहमाँगा वर दे चुका हूं, फिर भी मेरा पीछा क्यों कर रही हो ?
सावित्री बोली - "धर्मराज ! आपने मुझे सौ पुत्रों की माँ होने का वरदान तो दे दिया, पर क्या मैं पति के बिना संतान को जन्म दे सकती हूँ ? मुझे मेरा पति वापस मिलना ही चाहिए, तभी मैं आपका वरदान पूरा कर सकूँगी ।"
सावित्री की धर्मनिष्ठा, पतिभक्ति और युक्तिपूर्ण वचनों को सुनकर यमराज नें सत्यवान के जीव को मुक्त कर दिया । सावित्री को वर देकर यमराज अंतर्ध्यान हो गए ।
सावित्री उसी वट वृक्ष के नीचे पहुंची जहाँ सत्यवान का शरीर पड़ा था । सावित्री ने प्रणाम करके जैसे ही वट वृक्ष की परिक्रमा पूर्ण की वैसे ही सत्यवान के मृत शरीर जीवित हो उठा । दोनों हर्षातुर से घर की ओर चल पड़े ।
प्रसन्नचित सावित्री अपने पति सहित सास-ससुर के पास गई । उनकी नेत्र ज्योति वापस लौट आई थी । उनके मंत्री उन्हे खोज चुके थे । द्युमत्सेन ने पुन: अपना राज सिंहासन संभाल लिया था ।
उधर महाराज अश्वसेन सौ पुत्रों के पिता हुए और सावित्री सौ भाइयों की बहन । यमराज के वरदान से सावित्री सौ पुत्रों की माँ बनी । इस प्रकार सावित्री ने अपने पतिव्रत का पालन करते हुए अपने पति के कुल एवं पितृकुल दोनों का कल्याण कर दिया । सत्यवान और सावित्री चिरकाल तक राज सुख भोगते रहे और चारों दिशाओं में सावित्री के पतिव्रत धर्म के पालन की कीर्ति गूंज उठी ।

धन-धान्य, सुख-समृद्धि व ऐश्वर्य-वैभव प्रदान करने वाली
असली प्राचीन चमत्कारी व्रत-कथा पूजन विधान सहित

मनोज पॉकेट बुक्स

॥श्री गणेशाय नमः॥

श्री वैभवलक्ष्मी व्रतकथा

सांसारिक सुख-शांति-वैभव प्रदान करने वाली मां श्री वैभव लक्ष्मी के शास्त्रोक्त व्रत-नियम, व्रत-कथा, चमत्कारी प्रभाव, पूजन विधि, चालीसा, आरती, मां के आठ स्वरूपों व महिमामयी मनोपूरक श्रीयंत्र के चित्रों व माहात्म्य-उद्यापन सहित

मनोज पॉकेट बुक्स

दो शब्द

मां के प्रिय भक्तो! इस पुस्तक में वर्णित कथाएं श्रुति पर आधारित हैं। फल आपकी श्रद्धा, विश्वास, एकाग्रता और पावनता पर निर्भर है। इसके लेखन का लक्ष्य व्यापार या धन प्राप्ति नहीं है। आप इस पुस्तक को क्रय कर **'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'** के उद्देश्य से नि:शुल्क वितरित करें, ताकि आपको अधिकाधिक लाभार्जन हो सके। इसके लिए आप हमें भी सहयोग दें। एक बार प्रेम से बोलें:

'माता श्री वैभव लक्ष्मी की जय'

–प्रकाशक

नक्कालों से सावधान!

मां के भक्तों से विनम्र निवेदन है कि आप जब भी पुस्तक खरीदें तो पुस्तक पर **मनोज पॉकेट बुक्स** लिखा अवश्य देखें, क्योंकि अनेक प्रकाशक इधर-उधर से नकल करके मां की पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं, जो पूर्ण फलदायी नहीं हैं। वैभव लक्ष्मी व्रत कथा की अपनी श्रद्धा व सामर्थ्यानुसार प्रतियां वितरित अवश्य करें, क्योंकि पुस्तक वितरित करने से मां प्रसन्न होंगी और भक्त को दोहरा लाभ भी प्राप्त होगा। प्रचार हेतु पुस्तक वितरित करने वाले श्रद्धालुजन प्रकाशक से सीधे संपर्क स्थापित करें। हमारा वादा है कि पुस्तकें लागत मूल्य पर ही दी जाएंगी।

मनोज पॉकेट बुक्स

761, मेन रोड, बुराड़ी, दिल्ली-110084

✆ 27619638, 27619639, 9212036444, 27615430

शोरूम: 1673-74, मेन रोड, नई सड़क, दिल्ली-6

✆ 65755767, 9891174741

e-mail: camford@sifv.com

हे मातुलक्ष्मी करो कृपा, करो भक्तों के हृदय में वास।
मनोकामना पूरी करो, बेगि हरो सब त्रास॥

व्रत आरंभ करने से पूर्व

भक्तो! यह व्रत वैसे तो शीघ्र फल देने वाला है, किंतु यदि कर्म त्रुटि या भाग्य त्रुटि के कारण व्रत का फल न मिले तो निराश न हों, मां लक्ष्मी पर असीम श्रद्धा रखते हुए दो-तीन माह बाद पुन: व्रत प्रारंभ करना चाहिए तथा जब तक इच्छित फल न मिले, तब तक तपस्या की भांति दो-दो माह के अंतराल में व्रत करते रहना चाहिए। इस बीच पुस्तक में दिए गए चालीसा का नियमित पाठ व वैभवलक्ष्मी का गुणगान करते रहना चाहिए। ऐसा करने से मां लक्ष्मी अवश्य प्रसन्न होंगी और मनवांछित फल देंगी। निम्न विधि द्वारा व्रत करने से मां लक्ष्मी की अनुकंपा प्राप्त होगी, ऐसा विश्वास रखें। मां वैभवलक्ष्मी का व्रत प्रारंभ करने से पूर्व पुस्तक में दिए 'श्री यंत्र' को श्रद्धापूर्वक नमन करें।

यूं तो मां वैभवलक्ष्मी के आठों स्वरूपों को प्रणाम करना चाहिए, किंतु यदि आपने 'श्री यंत्र' को प्रणाम कर लिया तो समझ लें कि मां लक्ष्मी के हर स्वरूप को प्रणाम कर लिया। मां लक्ष्मी के आठ स्वरूप हैं, जिनकी छवि पुस्तक में दी गई हैं। माता का पहला स्वरूप 'धनलक्ष्मी मां' का है, दूसरा स्वरूप 'श्री गजलक्ष्मी मां' का, तीसरा स्वरूप है 'श्री अधिलक्ष्मी मां' का, चौथा स्वरूप है 'श्री विजयलक्ष्मी मां' का, 'श्री ऐश्वर्य लक्ष्मी' मां का पांचवां स्वरूप है, छठा स्वरूप 'श्री वीरलक्ष्मी मां' का है, सातवां स्वरूप 'श्री धान्यलक्ष्मी मां' का है और मां का आठवां स्वरूप है 'श्री संतान लक्ष्मी मां' का। मां के हर स्वरूप या 'श्री यंत्र' को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने के उपरांत आभूषणों की पूजा करते समय निम्नलिखित 'लक्ष्मी स्तवन' का पाठ करें।

या रक्ताम्बुजवासिनी विलसिनी चण्डांशु तेजस्विनी।
या रक्ता रुधिराम्बरा हरिसखी भारती मनोह्लादिनी।।

या रत्नाकरमन्थनात्प्रगटिता विष्णोश्च या गेहिनी।
सा मां पातु मनोरमा भगवती लक्ष्मीश्च पद्मावती।।

अर्थात जो लाल कमल के पुष्प पर विराजमान हैं, जो अतुलनीय कांति वाली हैं, जो महान तेज वाली हैं, जिन्होंने लाल वस्त्र धारण किए हुए हैं, जो भगवान श्री हरि की पत्नी हैं, वह लक्ष्मी मां सबके मन को आनंद देती हैं। जिनका उद्‌भव समुद्र मंथन के समय सागर से हुआ था और जो भगवान विष्णु को अति प्रिय हैं, जो कमल पर विराजमान हैं और जो अतिशय पूजनीय हैं, वही मां लक्ष्मी! मुझ पर प्रसन्न रहें तथा मेरी रक्षा करें।

धनदा कवच

यं बीजं मे शिरः पातु ह्रीं बीजं मे ललाटकम्!
श्री बीजं मे मुखं रकार हृदयेऽवतु।
तिकारं पातु जठरं प्रिकारं पृष्ठतोऽवतु।
ये कारं जंघयोर्युग्म रक्ताकारं पादमूलके।
शीर्षादिपाद पर्यंतं हकारं सर्वतोऽवतु।

उक्त धनदा कवच का नित्य 5 या 7 बार पाठ करने से वैभव लक्ष्मी पाठकर्ता पर दयावान रहती हैं तथा उसके सभी मनोरथ पूर्ण करती हैं।

श्रीयंत्र की महिमा

चमत्कारी विधाओं में यंत्रों को सहज ही सर्वोपरि माना जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि यंत्रपूजा के अभाव में देवता प्रसन्न नहीं होते, तभी कहा भी गया है:

यंत्र मंत्रमय प्रोक्तं मंत्रात्मा दैवतैत हि।
देहात्मनोर्यथा भेदो मंत्र देवतयोस्त्था।।

जिस प्रकार शरीर और आत्मा में कोई भेद नहीं होता, उसी प्रकार यंत्र और देवता में भी कोई अंतर नहीं होता।

समस्त प्रकार के यंत्रों में श्रीयंत्र को राजा माना जा सकता है क्योंकि यह धन की दात्री देवी लक्ष्मी का यंत्र है; और ऐसा मनुष्य तो शायद विरले ही ढूंढ़ने पर मिले, जो धनी होने की इच्छा न रखता हो। इस यंत्र की पूजा करने वाले या धारण करने वाले को ऐसा प्रतीत होता है कि मां लक्ष्मी का वरदहस्त उस पर हर समय बना हुआ है। यह यंत्र निश्चित रूप से अनंत ऐश्वर्य और असीमित लक्ष्मी प्रदायी है, आवश्यक है तो बस इतना कि यंत्र पूजन पूर्ण श्रद्धा, निष्ठा और शास्त्रोक्त विधि-अनुसार किया जाए। जिस प्रकार अमृत से बढ़कर अन्य कोई औषधि नहीं, उसी प्रकार लक्ष्मी की कृपा प्राप्ति हेतु श्रीयंत्र की पूजा से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं।

सामान्यतया किसी भी माह के शुक्लपक्ष में अष्टमी के दिन ब्रह्ममुहूर्त में शय्या त्यागकर, दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर शुद्ध-शांत स्थान में पूर्वाभिमुख बैठकर धूप-दीप जलाकर भोजपत्र पर इस यंत्र को लिखना चाहिए। वैसे ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करवाकर यंत्र स्थापना करना श्रेष्ठ रहता है। यदि भोजपत्र पर लिखना हो तो अनार या तुलसी की कलम से लाल चंदन से लिखें। वैसे इस यंत्र की स्थापना हेतु रविवार और अष्टमी का योग पौष संक्रांति के दिन हो तो सर्वोत्तम माना जाता है।

श्रीयंत्र
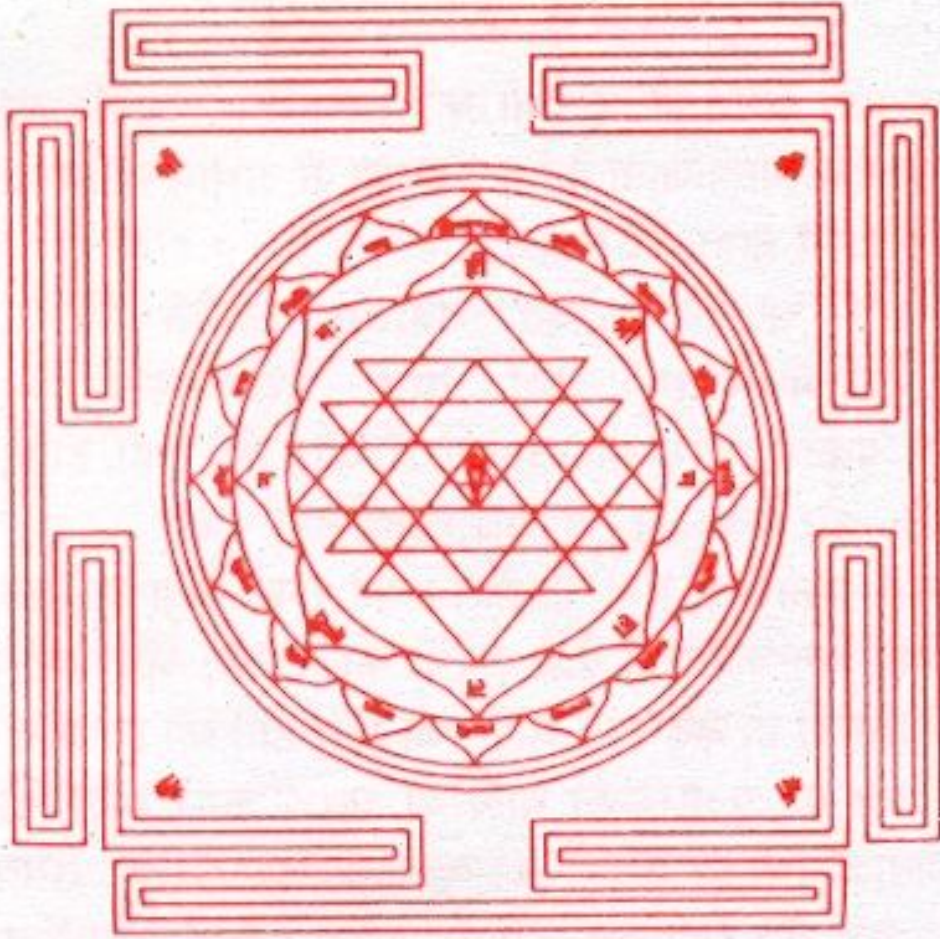
वैभव लक्ष्मी की कृपा प्राप्त कराने वाला,
धन-समृद्धि देने वाला महिमामयी श्रीयंत्र

मां वैभवलक्ष्मी की कृपा प्राप्ति हेतु व्रतकथा प्रारंभ करने से पूर्व इस श्रीयंत्र को प्रणाम कर नमन करना चाहिए। इससे मां वैभवलक्ष्मी शीघ्र प्रसन्न होकर भक्तों की समस्त मंगलकामनाएं पूरी करती हैं।

□□

व्रत हेतु विधि-विधान

किसी भी कार्य को विधिपूर्वक संपन्न करने के लिए उसके कुछ नियम होते हैं। इन नियमों का पालन करके प्राणी जटिल-से-जटिल कार्यों में भी सफलता प्राप्त कर लेता है। मां वैभवलक्ष्मी के व्रत को रखने के लिए भी हमारे धर्मगुरुओं ने कुछ नियम निर्धारित कर रखे हैं, जो इस प्रकार हैं:

- यह व्रत शुक्रवार के दिन रखा जाता है। इस व्रत को प्रत्येक श्रद्धालु, कुंआरी कन्या, स्त्री या पुरुष रख सकते हैं।
- यदि पति-पत्नी इस व्रत को मिलकर रखें तो मां लक्ष्मी अति प्रसन्न होती हैं।
- यह व्रत 7, 11, 21, 31, 51, 101 या उससे भी अधिक शुक्रवारों की मन्नत एवं मनोकामना मानकर रखा जा सकता है।
- व्रत हेतु मन एवं विचार शुद्ध होने चाहिए। व्रत करते समय मन में ऐसी स्वार्थ भावना नहीं रहनी चाहिए कि हमें धन प्राप्त करना है या धन की प्राप्ति के लिए ही हम यह व्रत कर रहे हैं, बल्कि मन में हर क्षण यह भावना होनी चाहिए कि हमें मां लक्ष्मी को प्रसन्न करना है। मां वैभवलक्ष्मी की कृपा प्राप्त करनी है।
- मां वैभवलक्ष्मी का व्रत घर पर ही श्रद्धापूर्वक करना चाहिए, किंतु यदि किसी शुक्रवार को आप घर से बाहर हों तो उस शुक्रवार को व्रत स्थगित करके अगले शुक्रवार को करें।
- रजस्वला नारियां भी उन दिनों के शुक्रवार छोड़ सकती हैं। बीमारी की हालत में भी वह शुक्रवार छोड़कर अगले शुक्रवार को व्रत रखें।
- कुल मिलाकर व्रतों की संख्या उतनी होनी चाहिए, जितने शुक्रवारों की आपने मन्नत मानी है।
- अंतिम शुक्रवार को विधिपूर्वक मां वैभवलक्ष्मी के व्रत का उद्यापन करना चाहिए।

श्री गजलक्ष्मी

हे मां गजलक्ष्मी! आप अपने भक्तों की पूजा-अर्चना से प्रसन्न होकर उनकी सभी मंगलकामनाएं पूर्ण करें।

- व्रत संपूर्ण हो जाने पर लक्ष्मी पूजन के उपरांत श्रद्धापूर्वक सात कन्याओं को भोजन कराना चाहिए।
- व्रत की संपूर्णता पर उद्यापन के उपरांत अपनी श्रद्धानुसार मां वैभवलक्ष्मी व्रतकथा की 11, 21, 31, 51, 101, 501 या अधिक पुस्तकें अपने आस-पड़ोस, मित्रों व संबंधियों में बांटनी चाहिए।

जिस शुक्रवार से व्रत रखने प्रारंभ करें, उस शुक्रवार को सुबह सूर्योदय से पूर्व उठकर नित्य क्रियाओं से निवृत्त होने के पश्चात स्नान आदि कर स्वच्छ वस्त्र धारण करें, तब व्रत की तैयारी आरंभ करें। इस बीच कार्य करते समय निरंतर 'जय मां वैभवलक्ष्मी' का जाप करते रहें।

व्रतकथा प्रारंभ करने से पूर्व एक चौकी (पटरे) पर चावल की एक छोटी-सी ढेरी बनाकर उस पर पानी से भरा तांबे का कलश स्थापित करें। उस पर कटोरी रखनी चाहिए; उसी कटोरी में सोने-चांदी की कोई वस्तु (आभूषण आदि) या चांदी का रुपया रखना चाहिए। शुद्ध घी का दीपक तथा अगरबत्ती जलाएं। तत्पश्चात मां के सभी स्वरूपों व 'श्रीयंत्र' को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करना चाहिए। ऐसा करने से व्रत करने वाले प्राणी से मां वैभवलक्ष्मी अति प्रसन्न होती हैं। वह भक्त की सभी मनोकामनाओं को अति शीघ्र पूर्ण करती हैं।

व्रतकथा प्रारंभ करने से पूर्व प्रसाद के रूप में कोई भी मीठी वस्तु खीर, गुड़-शक्कर आदि या नैवेद्य बनाकर रख लेना चाहिए। पूजा-अर्चना करने से पूर्व मां वैभवलक्ष्मी का स्तवन व स्तुति करनी चाहिए।

❑❑

पूजन सामग्री

रोली, मौली, धूप, अगरबत्ती, ऋतुफल, पान, पुष्प, पुष्पमाला, दूब, दही, शहद, घी, मेहंदी, सिंदूर, गुड़, बताशे, श्वेत वस्त्र, रक्त वस्त्र (लाल कपड़ा), हल्दी, चावल, पंचमेवा, लौंग, इलायची, श्रीफल, दीपक, रूई, माचिस, पंचपल्लव, सुपारी, समिधा (हवन हेतु लकड़ियां), हवन सामग्री, लोटा (पानी का बरतन), कटोरी, चम्मच।

वैभव लक्ष्मी पूजन मंत्र

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।
शंखचक्र गदाहस्ते महालक्ष्मी नमोऽस्तुते॥
पद्मासन स्थिते देवि वैभवलक्ष्मि स्वरूपिणि।
सर्वपाप हरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तुते॥
श्वेतांबर धरे देवि नाना अलंकार भूषिते।
जगत् स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तुते॥

वैभव लक्ष्मी का ध्यान मंत्र

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजौर्विभृती,
दानं पद्म युगाभये च वपुषा सौदामिनी सन्निभा॥
मुक्ताहार विराजमान पृथुलोत्तुंगस्यनोद्भासिनी।
वायाद्वः कमल कटाक्ष विभवैरानंदयंती हरिम्॥

□□

अथ श्री वैभवलक्ष्मी व्रतकथा

लाखों की जनसंख्या को अपने में समेटे कुशीनगर एक महानगर था। जैसी कि अन्य महानगरों की जीवनचर्या होती है, वैसा ही कुछ यहां भी था। यानी बुराई अधिक अच्छाई कम...पाप अधिक पुण्य कम। इसी कुशीनगर में हरिवंश नामक एक सद्गृहस्थ अपनी पत्नी दामिनी के साथ सुखी-सम्पन्न जीवन गुजार रहा था। दोनों ही बड़े नेक और संतोषी स्वभाव के थे। धार्मिक कार्यों-अनुष्ठानों में उनकी अपार श्रद्धा थी। दुनियादारी से उनका कोई विशेष लेना-देना नहीं था। अपने में ही मगन गृहस्थी की गाड़ी खींचे चले जा रहे थे दोनों।

किसी ने ठीक ही कहा है-'संकट और अतिथि के आने के लिए कोई समय निर्धारित नहीं होता।' कुछ ऐसा ही हुआ दामिनी के साथ-जब उसका पति हरिवंश न जाने कैसे बुरे लोगों की संगत में फंस गया और घर-गृहस्थी से उसका मन उचट गया। देर रात शराब पीकर घर आना और गाली-गलौज तथा मारपीट करना उसका नित्य का नियम-सा बन गया था। जुए, सट्टे, रेस तथा वेश्यागमन जैसे बुरे कर्म भी कुसंगति की बदौलत उसके पल्ले पड़ गए। धन कमाने की तीव्र लालसा ने हरिवंश की बुद्धि हर ली और उसको अच्छे-बुरे का भी ज्ञान न रहा। घर में जो कुछ भी था, सब उसके दुर्व्यसनों की भेंट चढ़ गया। जो लोग पहले उसका सम्मान करते थे, अब उसे देखते ही रास्ता बदलने लगे। भुखमरी की हालत में भिखमंगों के समान उनकी स्थिति हो गई।

लेकिन दामिनी बेहद संयमी और आस्थावान तथा संस्कारी स्त्री थी। ईश्वर पर उसे अटल विश्वास था। वह जानती थी कि यह सब कर्मों का फल है। दुख के बाद सुख तो एक दिन आना ही है...इस आस्था को मन में लिए वह ईशभक्ति में लीन रहती और प्रार्थना करती कि उसके दुख शीघ्र दूर हो जाएं। समय का चक्र अपनी रफ्तार से चलता रहा।

श्री अधिलक्ष्मी

हे अधिलक्ष्मी मां! मैंने अपनी सामर्थ्यानुसार आपकी पूजा-अर्चना की है, आप मेरे परिवार पर आए कष्टों का निवारण करें।

अचानक एक दिन दोपहर के समय द्वार पर हुई दस्तक की आवाज सुनकर दामिनी की तंद्रा भंग हुई। अतिथि सत्कार के भयमात्र से उसकी अंतरात्मा कांप उठी क्योंकि घर में अन्न का एक दाना भी नहीं था, जो अतिथि की सेवा में अर्पित किया जा सकता। फिर भी संस्कारों की ऐसी प्रबलता थी कि उसका मन अतिथि सत्कार को उद्धत हो उठा। उसने उठकर द्वार खोला। देखा, सामने एक दिव्य-पुरुष खड़ा था। बड़े-बड़े घुंघराले श्वेत केश...चेहरे को ढंके हुए लहराती दाढ़ी...गेरुए वस्त्रों का आवरण पहने...उसके चेहरे से तेज टपका पड़ रहा था...आंखें मानो अमृत-वर्षा सी कर रही थीं। उस दिव्य-पुरुष को देखकर दामिनी को अपार शांति का अनुभव हुआ और वह उसे देखते ही समझ गई कि आगत वास्तव में कोई पहुंचा हुआ सिद्ध महात्मा है। उसके मन में अतिथि के प्रति गहन श्रद्धा के भाव उमड़ पड़े और वह उसे सम्मान सहित घर के भीतर ले गई। दामिनी ने जब उसे फटे हुए आसन पर बैठाया तो वह मारे लज्जा के जमीन में गड़-सी गई।

उधर वह संत पुरुष दामिनी की ओर एकटक निहारे जा रहा था। घर में जो कुछ भी बचा-खुचा था दामिनी ने अतिथि की सेवा में अर्पित कर दिया, पर उसने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह तो बस दामिनी को यूं निहारे जा रहा था, मानो उसे कुछ याद दिलाने की चेष्टा कर रहा हो। जब काफी देर तक दामिनी कुछ न बोली तो उसने कहा-'बेटी, मुझे पहचाना नहीं क्या?'

उसका यह प्रश्न सुनकर दामिनी जैसे सोते से जागी और अत्यंत सकुचाते हुए मृदुल स्वर में बोली-'महाराज, मेरी धृष्टता को क्षमा करें, जो आप जैसे दिव्य पुरुष को मैं पहचानकर भी नहीं पहचान पा रही हूं, पारिवारिक कष्टों ने तो जैसे मेरी सोचने-समझने की शक्ति ही छीन ली है। लेकिन यह निश्चित है कि संकट की इस घड़ी में मुझे आप जैसे साधु पुरुष का ही सहारा है...तभी जैसे

दामिनी को कुछ याद हो आया...वह उस साधु के चरणों में गिरकर बोल उठी–'अब मैं आपको पहचान गई हूं महाराज! स्नेहरूपी अमृत की वर्षा करने वाले अपने शुभचिंतक को कोई कैसे भूल सकता है भला!' वास्तव में वह साधु मंदिर की राह के मध्य में बनी अपनी कुटिया के बाहर वटवृक्ष के नीचे बैठ साधना किया करता था और मंदिर आने-जाने वाले सभी श्रद्धालु उसे प्रणाम करके स्वयं को कृतार्थ अनुभव करते थे। दामिनी भी उन्हीं में से एक थी। जब पिछले काफी दिनों से उसने उसे मंदिर की ओर आते-जाते नहीं देखा तो उसकी कुशलक्षेम जानने के लिए पूछताछ करते हुए उसके घर की ओर आ निकला था।

दामिनी अभी अपनी सोचों में ही डूबी हुई थी कि साधु महाराज ने मौन भंग किया–'क्या कारण है पुत्री! तू आजकल मंदिर आती-जाती दिखाई नहीं पड़ती? तुझे जो भी कष्ट है, मुझे बता, शायद मैं तेरी कुछ सहायता कर सकूं।'

व्यक्ति दुखों के बोझ तले दबा हो तो ऐसे में सहानुभूति के दो बोल ही काफी होते हैं। दामिनी भी खुद पर संयम नहीं रख पाई और बिलखकर रोने लगी। तभी वह साधु वात्सल्यपूर्ण स्वर में बोला–'मन छोटा करने से समस्या हल नहीं होगी...सुख-दुख तो एक गाड़ी के दो पहियों के समान हैं। इनका आना-जाना तो जिंदगीभर लगा ही रहता है। अपना दुख किसी को बता देने से मन हल्का हो जाता है।'

कुछ देर चुप रहने के बाद दामिनी ने बोलना शुरू किया–'महाराज! सर्वसुखों से भरपूर था मेरा घर...कण-कण में खुशियों का नृत्य होता था। पति भी नेक और ईमानदार थे...सादा जीवन उच्च विचार की आधारशिला पर टिकी थी हमारी गृहस्थी। रुपये-पैसे की भी कोई कमी नहीं थी। सुबह-शाम घर में ईश वंदना होती थी। लेकिन अचानक न जाने किसकी नजर लग गई–हमारा भाग्य हमसे

श्री विजय लक्ष्मी

हे मां विजयलक्ष्मी! मेरे परिवार पर जो भी दुख या कष्ट आ पड़े हैं, आप अपनी कृपा-दृष्टि से उनका निवारण करें।

रूठ गया...मेरे पति कुसंगति में फंसकर अपना सबकुछ गंवा बैठे। अब तो ऐसा लगता है जैसे साया भी साथ छोड़कर जाने को तैयार बैठा है। भिखारियों से भी बदतर स्थिति हो गई है हमारी...।'

दामिनी की करुण-व्यथा सुनकर साधु का हृदय हाहाकार कर उठा; वह द्रवित स्वर में बोल उठा-'बेटी! कर्म का लिखा तो भोगना ही पड़ता है-तुम्हारे कष्टों का भी कर्मों से नाता है। लेकिन तुम चिंता न करो...सबकुछ पहले जैसा हो जाएगा। दुख के बाद ही सुख आता है...दुख सहे बिना सुख की सच्ची अनुभूति हो ही नहीं सकती। तुम मां लक्ष्मी के प्रति श्रद्धा जारी रखो...सबका उद्धार करने वाली, प्रेम का छलकता सागर हैं मां लक्ष्मी। अपने भक्तों पर सदैव उनकी कृपादृष्टि रहती है। तुम संपूर्ण आस्था के साथ मां वैभवलक्ष्मी का व्रत करना शुरू करो...तुम्हारी साधना अवश्य रंग लाएगी।'

दामिनी एक संस्कारी स्त्री थी। धर्म-कर्म में उसकी अगाध आस्था थी। मां वैभवलक्ष्मी के व्रत की बात सुनकर उसका चेहरा दमक उठा, बोली- 'महाराज, यदि इस व्रत को करने से मेरे परिवार पर आई विपदा टल सकती है तो मैं इसे जरूर करूंगी। आप मुझे बताएं कि इस व्रत को कब और कैसे किया जाता है?'

साधु महाराज दामिनी की भक्ति-भावना देखकर प्रसन्न होकर बोले-'बेटी! सारे जगत का कल्याण करने वाली मां वैभवलक्ष्मी के व्रत की विधि मैं जनकल्याणार्थ तुम्हें बता रहा हूं-प्रत्येक शुक्रवार को यह व्रत किया जाता है। सर्वप्रथम, जितने शुक्रवार को यह व्रत करना हो, उसका संकल्प लेकर मां वैभवलक्ष्मी को मन-ही-मन प्रणाम करें। स्नानादि से निवृत्त होकर स्वच्छ धवल वस्त्र पहनकर पूरब दिशा की ओर मुंह करके आसन पर बैठें। सामने एक चौकी पर चावल की एक ढेरी लगाकर उस पर पानी से भरा कलश

स्थापित करें, जो तांबे का होना चाहिए। कलश को कटोरी से ढंक दें और उस कटोरी में कोई भी स्वर्णाभूषण रखें...सोना न हो तो चांदी का आभूषण रखें...वह भी पास न हो तो रुपये का सिक्का भी काम दे सकता है। शुद्ध घी का दीपक तथा अगरबत्ती जलाएं और मन-ही-मन पूर्ण श्रद्धा के साथ मां वैभवलक्ष्मी का जाप करते रहें। 'श्री यंत्र' मां लक्ष्मी का प्रिय यंत्र है, उसे शत-शत नमन करें। (श्रीयंत्र उपलब्ध न हो तो पुस्तक में दिए उसके स्वरूप से काम चल जाएगा।) साथ ही मां वैभवलक्ष्मी के सभी स्वरूपों को नमस्कार करें (इनकी सभी छवियां पुस्तक में दी गई हैं)। कटोरी में रखे गहने या रुपये पर हल्दी, कुंकुम तथा अक्षत अर्पित करें। कोई भी मिष्ठान्न प्रसाद रूप में रखें। संभव न हो पाए तो गुड़ या शक्कर से भी काम चल सकता है। फिर श्रद्धापूर्वक मां की आरती करके 14 बार प्रेम सहित बोलें—'जय मां वैभवलक्ष्मी।'

'मां वैभवलक्ष्मी मेरी मनोकामना पूरी करें' ऐसा संकल्प लेकर सच्चे मन से मां से विनती करें। प्रसाद बांटें और स्वयं भी ग्रहण करें। दिन में एक बार सात्विक भोजन करें, यदि संभव हो तो उपवास रखें। पूजा में रखा गहना या रुपया लाल कपड़े में लपेटकर सुरक्षित रख लें। यह आगे आने वाले शुक्रवारों को पूजा में काम आएगा। कलश में भरा जल तुलसी के पौधे को समर्पित कर दें तथा अक्षत पक्षियों को आहारस्वरूप डालें। ऐसी शास्त्रोक्त विधि से व्रत करने वालों को शीघ्र फल मिलता है।'

साधु महाराज के मुखारविंद से यह वृत्तांत सुनकर दामिनी पुलकित हो उठी। उनके चरण स्पर्श कर उत्साहित स्वर में बोली—'अब लगे हाथ उद्यापन की विधि भी बता दें महाराज! इसके बिना तो व्रत अधूरा ही रह जाएगा?'

'अवश्य बेटी!' कहकर साधु महाराज उद्यापन की विधि बताने लगे—'चाहे जितने भी शुक्रवार (प्राय: 11 या 21) व्रत करने

श्री ऐश्वर्यलक्ष्मी

हे माँ ऐश्वर्यलक्ष्मी! पूजा-अर्चना से प्रसन्न होकर जैसे अपने अन्य भक्तों को ऐश्वर्य प्रदान किया, वैसा ही मुझे भी प्रदान करें।

का संकल्प लिया हो, लेकिन मन में मां वैभवलक्ष्मी के प्रति श्रद्धा तथा आस्था बराबर बनी रहनी चाहिए। जिस दिन अंतिम शुक्रवार का व्रत हो, उस दिन शास्त्रोक्त विधि से उद्यापन किया जाता है। अन्य शुक्रवारों की भांति ही इस दिन भी पूजन करें। हां, प्रसाद के रूप में खीर अवश्य रखें। पूजा के बाद नारियल फोड़कर सात कुंआरी कन्याओं के चरण धोकर, कुंकुम का तिलक लगाकर पूजन करें, उन्हें सामर्थ्यानुसार दक्षिणा दें और मां वैभवलक्ष्मी व्रत की पुस्तकें उपहारस्वरूप भेंट में दें। फिर प्रसाद के रूप में खीर वितरित करें। अब मां वैभवलक्ष्मी के सभी स्वरूपों को मन-ही-मन नमन करते हुए कहें-'हे मां! यदि मैंने शुद्ध तथा निर्मल हृदय से आपकी स्तुति करते हुए वैभवलक्ष्मी व्रत विधि- विधानानुसार पूर्ण किए हों तो मेरी मनोकामना (यहां पर अपनी मनोकामना का स्मरण करें) अवश्य पूरी करना। संतानहीनों को संतान देने वाली, दुखियों का दुख हरने वाली, अखंड सौभाग्य का वरदान देने वाली, कुंआरी कन्याओं को मनचाहा वर दिलाने वाली मां वैभवलक्ष्मी आपकी महिमा अपरम्पार है। अपने हर भक्त की विपत्तियां हरकर उन्हें सुख-समृद्धि प्रदान करना।'

साधु महाराज से वैभवलक्ष्मी व्रत का शास्त्रोक्त ज्ञान प्राप्त करके दामिनी भावविभोर हो उठी। उसे अपने भीतर एक अनोखे तथा असीमित आत्मबल का संचार होता महसूस हुआ। उसने भी मां वैभवलक्ष्मी के 21 व्रत आते शुक्रवार से शुरू करने का संकल्प लेकर साधु महाराज को आदर सहित विदा किया और मन-ही-मन मां वैभवलक्ष्मी का स्तुतिगान करने लगी।

दो दिन बाद ही शुक्रवार आ गया। उससे पहली रात दुखों की मारी दामिनी ठीक से सो भी न सकी। मां वैभवलक्ष्मी के व्रत करने से उसकी समस्याओं का अंत हो जाएगा, यह सोचकर वह मुंह अंधेरे ही उठ बैठी और स्नानादि कर स्वच्छ वस्त्र धारण किए।

आसन पर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके दामिनी ने अपने सम्मुख रखी चौकी पर चावल की छोटी-सी ढेरी बनाकर उस पर तांबे का कलश रखा। लेकिन जब स्वर्णाभूषण रखने की बात आई तो धर्मसंकट में पड़ गई। सारे गहने पति के दुर्व्यसनों की भेंट चढ़ चुके थे...विवाहिता स्त्री थी, सो मंगलसूत्र भी उतारकर नहीं रख सकती थी, और कोई गहना था नहीं। तभी उसे उन नन्ही पायलों का स्मरण हो आया, जो उसने अपनी आने वाली संतान के लिए बनवाकर रख छोड़ी थीं और पति की निगाहों से उन्हें बचा रखा था। उसने झटपट वह पायलें निकालीं और गंगाजल से धोकर उन्हें शुद्ध करके कलश पर रखी कटोरी में डाल दिया। डिब्बे की तली में से बची-खुची शक्कर निकालकर उसे प्रसाद के रूप में रखा और विधि अनुसार व्रत किया। सर्वप्रथम उसने अपने पति को प्रसाद दिया।

आने वाला पूरा सप्ताह बड़ी ही हंसी-खुशी से बीता। बात-बात पर झल्ला उठने वाला उसका पति अपेक्षाकृत शांत तथा संयत रहा—कोई मारपीट तथा क्लेश घर में नहीं हुआ। इसे दामिनी ने मां वैभवलक्ष्मी का चमत्कार समझा और मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया। मां वैभवलक्ष्मी के प्रति उसकी आस्था और भी बलवती हो गई। इसी प्रकार शास्त्रोक्त विधि से दामिनी ने बीस शुक्रवार के व्रत पूरे कर लिए। इस बीच कई परिवर्तन हुए थे... उसका पति कुसंगति छोड़कर सीधी राह पर आ गया था और उसका कामकाज भी जमने लगा था। घर में यदि किसी चीज की बहुतायत नहीं थी तो कमी भी नहीं रह गई थी। यह सब मां वैभवलक्ष्मी के चमत्कार और दामिनी की आस्था तथा विश्वास का परिणाम था।

इक्कीसवें शुक्रवार को व्रत का उद्यापन करना था। साधु महाराज के वचन अब भी मानो दामिनी के कानों में गूंज रहे थे। उनकी बताई विधि के अनुसार ही दामिनी ने शास्त्रोक्त विधि से

श्री वीरलक्ष्मी

हे वीरलक्ष्मी मां! मुझ पर आपकी दयादृष्टि बनी रहे। आपकी कृपा बनी रही तो सभी सुख-वैभव मुझे प्राप्त हो जाएंगे।

उद्यापन किया। सात कुंआरी कन्याओं को भोजन कराकर दक्षिणा दी। आसपास की सौभाग्यवती स्त्रियों में प्रसाद तथा मां वैभवलक्ष्मी व्रतकथा की पुस्तकें वितरित कीं। मां वैभवलक्ष्मी के हर स्वरूप (पुस्तक में दी गई छवियां) को प्रणाम किया और कहा–'आपकी महिमा निराली है मां! आपने मेरे सारे दुख हर लिए...मेरी सभी मनोकामनाएं पूर्ण कर दीं...मेरा उजड़ा घर फिर से बस गया। मेरा यह नया जीवन आप ही की देन है मां...मैं आजीवन आपकी पूजा-अर्चना करूंगी और दूसरों को भी आपकी महिमा से अवगत कराकर वैभवलक्ष्मी के व्रत रखने के लिए प्रेरित करूंगी।

बोलो जय मां वैभवलक्ष्मी! आपकी सदा ही जय हो!

मां वैभवलक्ष्मी व्रत के चमत्कार

मां ने जीने की राह दिखाई

रजनी की शादी हुए अभी पांच-छह वर्ष ही बीते थे। उसकी गृहस्थी सुचारु रूप से चल रही थी। उसका एक पुत्र भी था। दुर्भाग्य से उसके पति का एक सड़क दुर्घटना में आकस्मिक निधन हो गया।

उसके सामने पहाड़-सा जीवन था। रिश्ते-नाते वालों ने दूसरी शादी करने के लिए उस पर काफी दबाव डाला लेकिन वह नहीं मानी और अपने ही पैरों पर खड़े होने का साहसिक निर्णय कर लिया।

जैसे-तैसे समय गुजरता गया। अब उसके सामने समस्या यह थी कि वह क्या करे? उसकी एक सहेली राधा ने उसे धैर्य बंधाते हुए कहा, 'तू हिम्मत रख, मां ने चाहा तो सब ठीक हो जाएगा।' फिर उसने रजनी को सलाह दी कि वह मां वैभवलक्ष्मी के व्रत रख ले। शायद मां ही कोई रास्ता दिखा दे।'

रजनी ने राधा की बात मान ली और 21 शुक्रवार के व्रत करने

श्री मां वैभव लक्ष्मी
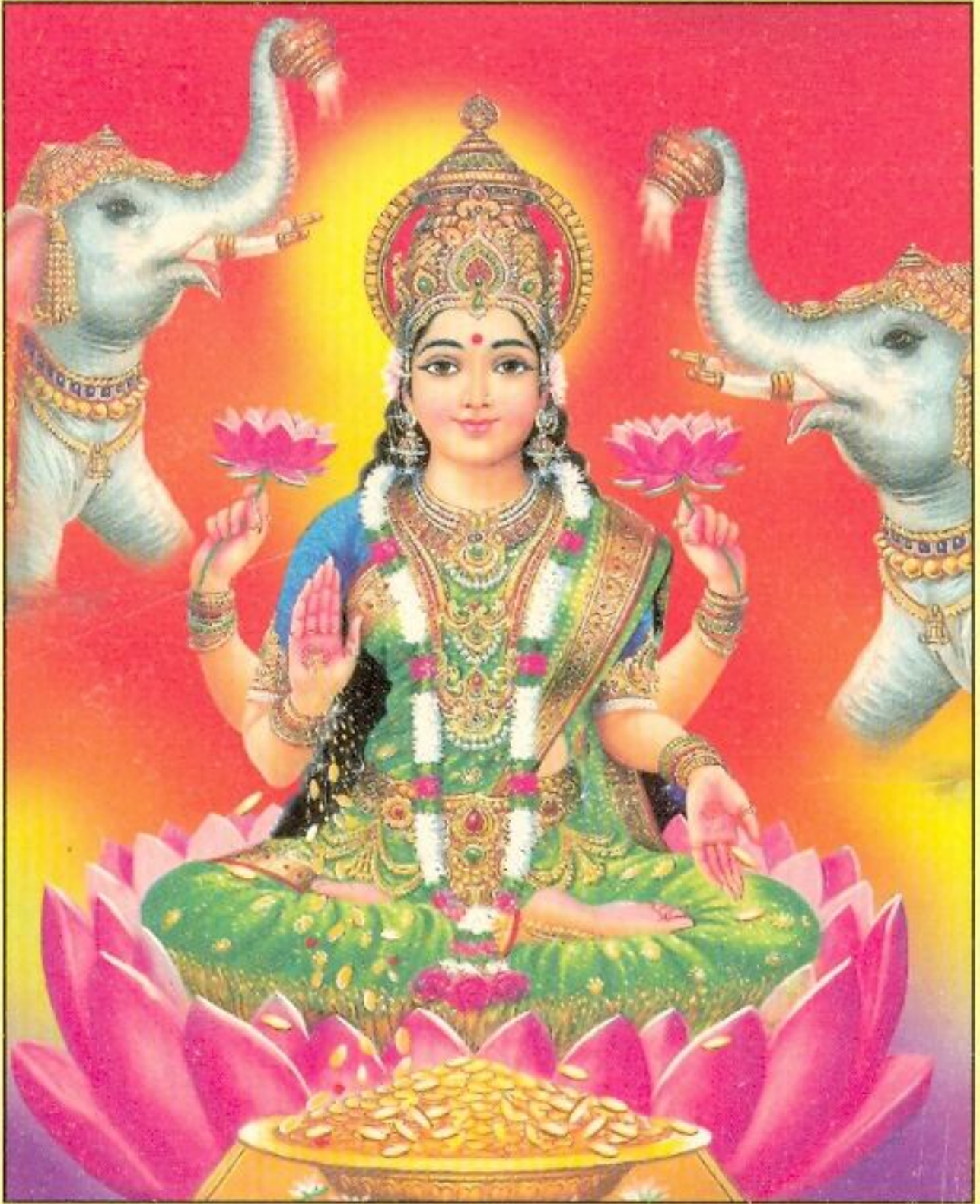
हे मां वैभव लक्ष्मी! सभी की मनोकामनाएं शीघ्र पूर्ण कर जगत का कल्याण करें–यही हमारी प्रार्थना है।

मां वैभव लक्ष्मी को प्रसन्न करने तथा धन-धान्य, सुख-सम्पत्ति, ऐश्वर्य-वैभव को बढ़ाने और समृद्धि प्रदान करने वाला अद्भुत चमत्कारी असली

सर्वसिद्धिकारी मां वैभव लक्ष्मी की इस व्रतकथा को आरंभ करने से पहले इस श्रीयंत्र को पूर्ण श्रद्धा सहित नमन करें।

का संकल्प ले लिया। अभी उसने चार शुक्रवार ही व्रत रखे थे कि उसके मन में विचार आया कि सिलाई का डिप्लोमा तो उसने कर ही रखा है। क्यों न सिलाई सेंटर ही खोल लिया जाए, मकान तो अपना है ही।

रजनी ने सही समय पर घर के एक हिस्से में सिलाई सेंटर खोल लिया और लड़कियों व महिलाओं को सिलाई की ट्रेनिंग देने लगी। जब मां की कृपा होती है तो रास्ते अपने आप ही निकल आते हैं। प्रारंभ में तो उसे काफी मेहनत करनी पड़ी लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया उसका सिलाई सेंटर दिन-दुगनी, रात चौगुनी उन्नति करता गया।

व्रत समाप्ति के दिन उसने मां वैभवलक्ष्मी की विधि-विधान से पूजा की। फिर हवन करके 21 कन्याओं को भोजन कराया। मां के भक्तों को उसने मां वैभवलक्ष्मी व्रतकथा की 21 पुस्तकें भी भेंट कीं।

इस प्रकार मां की असीम कृपा से उसे जीने की नई राह मिली। आज उसके सिलाई सेंटर में सिलाई की कई मशीनें हैं, साथ ही अन्य शिक्षिकाएं भी उसके यहां काम करती हैं। यह मां वैभवलक्ष्मी का ही कृपा प्रसाद है कि आज उसके घर में सब तरह का सुख-वैभव है।

खोया हुआ भतीजा मिला

नवरात्र के दिनों में मैं, मेरे भइया, भाभी व दोनों भतीजे वैष्णव देवी गए। इन दिनों वहां काफी भीड़ रहती है। जब हम दर्शन करके लौट रहे थे तो कटरा में मेरा छोटा भतीजा आशुतोष भीड़ में कहीं गुम हो गया। हमने काफी ढूंढ़ा लेकिन वह नहीं मिला। हमने दूरदर्शन, अखबारों, आकाशवाणी के द्वारा विज्ञापित भी करवा दिया और एक दिन वहां रुके भी, पर वह नहीं मिला। हम सभी का

रो-रोकर बुरा हाल था। आखिर दिल पर पत्थर रखकर हम वापस घर लौट आए।

कुछ दिन बीते होंगे कि हमारे पड़ोस में रहने वाली श्रीमती मालती खोज-खबर लेने आईं। उन्होंने सहानुभूति जताते हुए एक उपाय बताया। उन्होंने भाभी से कहा, 'सुषमा! तुम मां वैभवलक्ष्मी के निमित्त श्रद्धानुसार 11 या 21 व्रत रखो। मां की कृपा से आशुतोष का कहीं-न-कहीं सुराग अवश्य लग जाएगा।' उन्होंने व्रत की विधि भी भाभी को बतला दी।

भाभी ने 11 शुक्रवार का संकल्प करके अगले ही शुक्रवार से व्रत रखने शुरू कर दिए। तीसरे शुक्रवार को जब भाभी ने मां वैभवलक्ष्मी की पूजा की तो उसी रात उन्हें स्वप्न आया कि आशुतोष किसी महिला के साथ एक मंदिर में खड़ा था। उन्होंने भइया को जब यह बताया तो वह बोले कि सुषमा जो मंदिर तुम बता रही हो वह तो जयपुर में है।

बड़े भतीजे को मेरे पास छोड़कर भइया-भाभी दूसरे दिन ही जयपुर रवाना हो गए। सड़क से ही शिला देवी का वह मंदिर साफ दिखाई पड़ता था। भइया ने भाभी से कहा, 'आज हम किसी होटल में रुककर कल इस मंदिर में जाएंगे।'

अगले दिन जब भइया-भाभी उस मंदिर में पहुंचे तो आशुतोष उसी महिला के साथ मंदिर में आया, जो भाभी को स्वप्न में दिखाई दी थी। बातचीत करने पर उस महिला ने बताया, 'यह बच्चा हमें कटरा में एक धर्मशाला के बाहर रोता हुआ मिला था। हमारे कोई संतान नहीं थी इसलिए हम इसे अपने साथ ले गए।'

भइया-भाभी ने आशुतोष को सीने से चिपटा लिया और उस महिला का धन्यवाद ज्ञापित कर वहां से उसी दिन दिल्ली के लिए रवाना हो गए। कुछ समय उस महिला के घर भी भइया-भाभी ने व्यतीत किया और महिला के पति से भी भेंट की।

श्री धान्यलक्ष्मी

हे मां धान्यलक्ष्मी! आपकी वंदना कर मैं आपसे सुख- शांति और समस्त ऐश्वर्यों की प्राप्ति का वरदान मांगता हूं।

इस तरह मां वैभवलक्ष्मी की कृपा से मेरा खोया हुआ भतीजा वापस मिल गया। फिर भाभी ने अपना संकल्प पूरा किया। अंतिम व्रत के दिन विधि- विधान से मां वैभवलक्ष्मी की पूजा की तथा 11 कन्याओं को भोजन कराया। भइया-भाभी ने मां के भक्तों को वैभवलक्ष्मी व्रतकथा की 11 पुस्तकें भी भेंट स्वरूप दीं। आज मेरा भतीजा 13 साल का है। मां की कृपा से सब ठीक हो गया।

ब्रीफकेस वापस मिला

राकेश का हीरे-जवाहरात का कारोबार था। एक बार वह ट्रेन द्वारा अहमदाबाद से दिल्ली आ रहे थे कि एक स्टेशन पर उनका ब्रीफकेस बदल गया। उनके साथ यात्रा कर रहे यात्री का ब्रीफकेस भी लगभग उनके जैसा ही था। यह रहस्य तब खुला जब राकेश ने घर पहुंचकर ब्रीफकेस खोलकर देखा। बदला हुआ ब्रीफकेस देखकर उनका चेहरा पीला पड़ गया। क्योंकि उनके ब्रीफकेस में बिजनेस संबंधी जरूरी कागजातों के अलावा दो अलग-अलग पुड़ियाओं में हीरे-जवाहरात भी थे, जो वह अहमदाबाद से खरीदकर लाए थे।

उनकी पत्नी रेखा ने धैर्य बंधाते हुए कहा, 'जो होना था, सो हो गया। अब तो मां वैभवलक्ष्मी की कृपा हो जाए तो संभव है कि ब्रीफकेस वापस मिल जाए।'

फिर उन दोनों ने मां वैभवलक्ष्मी के निमित्त 21 शुक्रवार का व्रत रखने का संकल्प किया। अभी पांचवां शुक्रवार ही बीता था कि एक व्यक्ति का पत्र मिला जिसमें राकेश को संबोधित करते हुए लिखा था कि गलती से उनका ब्रीफकेस उसके पास पहुंच गया है, कृपया आकर ले जाएं।' पत्र में उस जगह का पता भी लिखा था, जहां का वह व्यक्ति रहने वाला था यानी अहमदाबाद का।

राकेश दूसरे दिन ही अहमदाबाद रवाना हो गए और दो दिन बाद

अपना ब्रीफकेस सुरक्षित लेकर लौट आए। उस व्यक्ति ने राकेश की काफी आवभगत भी की थी।

ब्रीफकेस मिल जाने पर उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। लेकिन वे दोनों 21 शुक्रवार तक व्रत करने का अपना संकल्प भूले नहीं। यही नहीं, व्रत के अंतिम दिन 21 कन्याओं को भोजन कराकर हवन भी किया। उन्होंने मां वैभवलक्ष्मी व्रतकथा की 21 प्रतियां भी भक्तजनों में बांटीं।

इस तरह मां की कृपा से उनका लाखों का नुकसान होते-होते बच गया।

मां की कृपा से पुत्र प्राप्ति

सेठ अमृतलाल के पास अपार संपत्ति थी। फिर भी वह दिन-रात पैसा कमाने की ही सोचा करते थे। यह भाग्य की विडम्बना थी कि शादी के 15 वर्ष बाद भी उनके कोई संतान नहीं थी। यही कारण था कि खुशियां उनको काटने को दौड़ती थीं।

एक दिन जब सेठ अमृतलाल सायंकाल घर लौटे तो अपनी पत्नी को गहन चिंता में बिस्तर पर लेटे पाया। उन्होंने पास जाकर पूछा, 'प्रिये! तुम्हारी यह उदासी किस कारण है? तुम्हारा सारा शरीर सोने से लदा है, कोठी, नौकर-चाकर, धन-दौलत सभी कुछ तो है। फिर तुम्हारी उदासी का कारण समझ में नहीं आ रहा?'

उनकी पत्नी लाजवंती ने कहा, 'हे स्वामी! यह सही है कि हमारे पास अतुल संपत्ति है। लेकिन यह है किसके लिए?'

अमृतलाल ने पूछा, 'तुम कहना क्या चाहती हो?'

लाजवंती ने कहा, 'जब हमारे संतान ही नहीं है तो यह धन-दौलत बेकार ही तो है।'

अमृतलाल ने लाजवंती को दिलासा देते हुए कहा, 'तुम तो अच्छी तरह जानती ही हो कि संतान प्राप्ति के लिए हमने क्या-कुछ

नहीं किया। हालांकि हम दोनों की डॉक्टरी जांच में कोई दोष भी नहीं पाया गया। लगता है, हमारे भाग्य में संतान सुख लिखा ही नहीं है।'

इस तरह दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे के दुख को समझकर उदास हो गए।

तभी एक नौकरानी दौड़ती हुई उनके पास आई और बोली, 'मालकिन एक बहुत ही पहुंचे हुए महात्मा द्वार पर आए हैं।'

दोनों ने सोचा शायद संतों की कृपा से ही कोई उपाय हाथ लग जाए और वे दोनों द्वार पर आ गए।

महात्मा के चरण स्पर्श कर उन्हें विशेष कक्ष में लाकर उच्च आसन पर विराजमान किया और स्वयं धरती पर बैठ गए। दोनों ने उनकी बहुत सेवा की।

सेवा से प्रसन्न होकर महात्मा ने कहा, 'मैं तुम लोगों की सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ हूं, जो चाहो वर मांग लो।'

वे दोनों हाथ जोड़कर विनीत भाव से बोले, 'महात्मन्! वैसे तो हम सब तरह से सुखी हैं लेकिन संतान सुख का अभाव हमें शूल समान चुभता है। यदि आप कोई उपाय बता सकें तो...।'

महात्मा ने फिर मां वैभवलक्ष्मी के व्रत का महत्त्व बताते हुए कहा, 'यदि तुम लोग 21 शुक्रवार तक मां के निमित्त व्रत रखो तो तुम्हारी मनोकामना निश्चित रूप से पूरी होगी।'

दोनों पति-पत्नी ने उस व्रत की विधि जाननी चाही। तब महात्मा ने बताया कि व्रत समाप्ति के दिन हवन करके 21 कन्याओं को भोजन कराकर मां के भक्तों को श्री मां वैभवलक्ष्मी व्रतकथा की पुस्तकें भेंट स्वरूप दें।

सेठ अमृतलाल व उनकी पत्नी लाजवंती ने महात्मा द्वारा बताए उपाय को विधिवत अपनाया। व्रत के अंतिम दिन से नौ दिन बाद

श्री संतानलक्ष्मी

हे मां संतानलक्ष्मी! जैसे अन्य भक्तों को आपने धन-संपदा और योग्य संतान प्रदान की है, ऐसी ही अनुकंपा मुझ पर भी करें।

लाजवंती गर्भवती हुई और नौ माह बाद सुंदर व गुणवान पुत्र को जन्म दिया। यह सब मां की कृपा के कारण ही हुआ। पुत्र जन्म के अवसर पर घर में आनंदोत्सव का-सा माहौल बन गया। खुशियां तो मानो घर के हर कोने में बिखरी-सी पड़ी थीं। फिर दोनों पति-पत्नी अपने पुत्र सहित सकुशल सुखपूर्वक जीवन-यापन करने लगे।

मां की कृपा से नौकरी मिली

कमल काफी पढ़ा-लिखा युवक था। लेकिन योग्य होने के बावजूद उसे कहीं भी नौकरी नहीं मिल पा रही थी। वह आशाओं का दामन थामे रोज नौकरी की खोज में निकलता और शाम को थके कदमों और उदास चेहरे के साथ घर लौट आता। तब उसके माता-पिता का एक ही सवाल होता था, 'बेटा, कहीं बात बनी?' लेकिन वह नकारात्मक मुद्रा में केवल गरदन भर हिला देता था।

जब उसकी आशाओं ने उम्मीद का दामन छोड़ दिया तो एक दिन घर से निकलने पर उसने प्रण किया कि या तो आज वह नौकरी ढूंढ़कर रहेगा अन्यथा आत्महत्या कर लेगा। लेकिन आत्महत्या का विचार आते ही उसके मस्तिष्क में विचार कौंधा कि अपने माता-पिता के बुढ़ापे का वही तो एक सहारा है और फिर उसके माता-पिता ने अपनी कड़ी मेहनत की कमाई भी तो उसी की शिक्षा पर खर्च कर डाली है। यदि वह आत्महत्या कर लेगा तो उनका बुढ़ापा नरक समान गुजरेगा...सोचकर उसने यह विचार त्याग दिया।

वह नौकरी की खोज में सड़क पर पैदल ही चला जा रहा था। दिनभर जूते घिसने के बाद रोज की तरह वह हताश होकर घर लौट रहा था कि उसकी नजर एक मंदिर पर पड़ी। यह सही है कि जब मनुष्य अत्यधिक दुखी होता है तब वह भगवान की ही शरण लेता है। वह भी मंदिर में गया, जहां उसकी भेंट मंदिर के पुजारी से हो गई।

पुजारी ने उसका लटका हुआ मुंह देखकर कारण पूछा तो उसने

बताया, 'वह रोजगार के अभाव में बहुत दुखी है। कोई उपाय हो तो बताएं?'

तब पुजारी ने मां वैभवलक्ष्मी के व्रत का महत्त्व बताते हुए कहा कि 11 शुक्रवार तक यदि वह मां वैभवलक्ष्मी का व्रत करे तो उसकी मनोकामना अवश्य पूरी होगी।

कमल के पूछने पर पुजारी ने व्रत विधि बताते हुए कहा कि व्रत के अंतिम शुक्रवार वाले दिन 11 कन्याओं को भोजन कराए तथा श्रद्धालु भक्तों को मां वैभवलक्ष्मी व्रतकथा की 11 पुस्तकें भेंट करे।

कमल प्रसन्न होकर घर पहुंचा। उसने अपने माता-पिता को मां वैभवलक्ष्मी के व्रत के बारे में बताया। फिर उसने 11 शुक्रवार तक व्रत किया। व्रत के अंतिम दिन वही सब किया जो पुजारी ने बताया।

मां वैभवलक्ष्मी की कृपा से व्रत के अंतिम दिन से ठीक एक सप्ताह बाद कमल को सरकारी विभाग में उच्च पद पर नौकरी मिल गई। इस तरह कमल अपने माता-पिता के साथ सुखपूर्वक जीवन बिताने लगा।

मां वैभवलक्ष्मी ने दिया वैभव

नरेश और महेश दोनों अच्छे मित्र थे। उन्होंने साझेदारी में कपड़े का व्यवसाय किया। कारोबार अच्छा-खासा चल रहा था। दोनों मित्र अपने परिवार सहित सुख के दिन व्यतीत कर रहे थे।

कहा जाता है कि व्यक्ति अपने दुख से दुखी नहीं होता बल्कि दूसरे के सुख से दुखी होता है। दोनों की गहन मित्रता और खुशहाली दिनेश को खलने लगी। उसने ऐसा चक्रव्यूह रचा कि नरेश और महेश में कुछ ही दिनों में फूट पड़ गई। फलस्वरूप महेश ने व्यापार में से न केवल अपना हिस्सा अलग कर लिया बल्कि नरेश का हिस्सा भी हड़प लिया और उसे दर-दर का भिखारी बना दिया।

अब नरेश दिन-रात चिंता में घुलकर अस्वस्थ हो गया। लेकिन उसकी पत्नी सुनीता ने हिम्मत नहीं हारी और अपने पति का हौसला बढ़ाती रही। उसने घर-खर्च भी अपने गहने आदि बेचकर इस ढंग से चलाया कि नरेश को कुछ महसूस ही नहीं हुआ। साथ ही उसका इलाज भी करवाया।

उसके पड़ोस में रहने वाली एक वृद्धा से उसकी यह स्थिति देखी नहीं गई। एक दिन वह उसके पास आई और कहने लगी, 'बेटी! भाग्य में जो लिखा है उसे भला कौन टाल सका है। फिर भी मनुष्य को धर्म-कर्म अवश्य करते रहना चाहिए। यदि तुम्हारी धर्म में आस्था है तो एक उपाय बताऊं।'

सुनीता बोली, 'मांजी! जब व्यक्ति पर दुख पड़ता है तो नास्तिक भी आस्तिक हो जाता है। मेरी तो वैसे भी धर्म में काफी आस्था है। आप कुछ उपाय जानती हैं तो अवश्य बताएं।'

वृद्धा बोली, 'बेटी! भगवान विष्णु के आशीर्वाद से तुम मां वैभवलक्ष्मी की कृपा प्राप्त करो। मां तुम्हारी हर विपदा दूर करेंगी।'

सुनीता ने पूछा, 'कैसे मांजी?'

वृद्धा ने बताया, 'मां वैभवलक्ष्मी के प्रति श्रद्धा-भक्ति से कम-से-कम 21 शुक्रवार तक व्रत रखने का तुम संकल्प करो। मेरा अटूट विश्वास है कि कुछ ही समय में तुम्हें उसका फल अवश्य मिलेगा।'

सुनीता ने 21 शुक्रवार तक मां वैभवलक्ष्मी के व्रत करने का संकल्प लिया। उसने अभी चार शुक्रवार के ही व्रत किए थे कि उसके पति का स्वास्थ्य सुधरने लगा। जब छठे शुक्रवार का व्रत किया तो उसके पति के पास उसका एक जानकार वृद्ध व्यापारी आया और उसका सहयोग मांगा।

वृद्ध व्यापारी ने नरेश से कहा, 'बेटा! अब मैं वृद्ध हो चला हूं।

तुम्हें तो पता ही है कि मेरे कोई पुत्र भी नहीं है जो मेरे कारोबार को संभाल सके। इसलिए पूरी तरह स्वस्थ होकर तुम मेरा कारोबार पुत्रवत संभाल लो। क्योंकि तुम इस कार्य के अनुभवी हो और मेरे विश्वासपात्र भी।'

नरेश की आंखों में खुशी के आंसू छलक पड़े। उसने वृद्ध की बात मानकर अगले दिन से ही उसका कारोबार संभाल लिया।

जब वह पहले दिन दुकान पर गया तो मां वैभवलक्ष्मी की कृपा से उसे अच्छा लाभ हुआ। अब तो मां वैभवलक्ष्मी पर उसकी आस्था और भी बलवती हो गई। फिर दोनों पति-पत्नी ने विधि- विधान से मां के निमित्त 21 शुक्रवारों का व्रत किया।

व्रत के अंतिम दिन दोनों ने घर में ही मां की पूजा कर हवन किया तथा 21 कन्याओं को भोजन कराया। मां वैभवलक्ष्मी व्रतकथा की 21 पुस्तकें भी उन्होंने मां के भक्तों को भेंटस्वरूप दीं।

मां की कृपा से अब नरेश की खुशियां लौट आईं। वह मां वैभवलक्ष्मी की भक्ति कर सुख से रहने लगा। फिर उसे कभी कोई कष्ट नहीं हुआ।

गड़ा हुआ स्वर्ण कलश मिला

गांव मनोहरपुर में मां वैभवलक्ष्मी के चमत्कारों की चारों तरफ गूंज थी। हर किसी की जुबान पर 'जय मां वैभवलक्ष्मी'...'जय मां वैभवलक्ष्मी' का जयघोष था।

उसी गांव के रामू को जब भनक पड़ी तो वह भी चमत्कारों की टोह लेने पहुंचा। तरह-तरह के चमत्कारों को सुनकर उसके भी मन में आया कि उसे भी कम-से-कम 11 शुक्रवार के व्रत कर ही लेने चाहिए। फिर देखा जाएगा कि मां क्या चमत्कार करती हैं।

वह वापस घर लौटा और घर वालों को मां के चमत्कारों के

बारे में बताया तो सभी लोगों ने मां में आस्था व्यक्त करते हुए 11 शुक्रवार के व्रत करने का संकल्प ले लिया।

तीन शुक्रवार के व्रत करने पर रामू को मां के चमत्कार स्वरूप एक स्वप्न दिखाई दिया। स्वप्न में उसने देखा कि उसके खेत में एक पेड़ के नीचे सोने का कलश दबा है जिसमें रत्न व स्वर्ण मुद्राएं भरी हैं।

सुबह जागने पर उसने स्वप्न के बारे में घर के लोगों को बताया। सभी ने आश्चर्य व्यक्त किया और कहा शायद मां के चमत्कार के कारण ही ऐसा स्वप्न आया हो। चलकर देखते हैं। फिर सभी लोग खेत में गए।

रामू ने जैसा पेड़ स्वप्न में देखा था वैसा ही पेड़ खेत में मौजूद था। सबने मिलकर पेड़ के नीचे खोदना शुरू किया। करीब पांच हाथ गहरा खोदने पर उन्हें स्वर्ण कलश मिल गया। सब इसे मां का प्रसाद मानकर वह कलश बाहर निकालकर घर ले गए।

मां के चमत्कार स्वरूप वह परिवार गांव का प्रतिष्ठित परिवार बन गया। अब रामू के पास कई मकान और खेत हो गए थे। उसने गांव में भगवान विष्णु और मां वैभवलक्ष्मी का मंदिर भी बनवाया। इस तरह रामू का परिवार मां की कृपा से फलने-फूलने लगा।

रामू ने परिवार सहित 11 शुक्रवार के व्रत का संकल्प पूरा किया। 11वें शुक्रवार को उसने मां का विधिवत पूजन हवन कर 11 कन्याओं को भोजन कराया। इसके अलावा गांव भर में मां वैभवलक्ष्मी व्रत कथा की पुस्तकें भी वितरित कीं।

बिना दहेज की शादी

मनोहर एक प्राइवेट फर्म में साधारण पद पर कार्य करता था। जितना वेतन मिलता था, उसमें घर खर्च मुश्किल से ही पूरा हो पाता था। यही कारण था कि वह धन का यथोचित संग्रह नहीं कर पाया

था। उसने इतना अवश्य किया था कि अपनी लड़की रंजना को अच्छी शिक्षा दिलाने में लापरवाही नहीं बरती थी। रंजना जितनी खूबसूरत थी, उतनी ही गुणवान व बुद्धिमान भी थी। समय के साथ-साथ उसने यौवन की दहलीज पर कदम रखा।

एक दिन मनोहर की पत्नी माधवी ने कहा, 'सुनो जी! लड़की अब सयानी हो गई है। इसके बारे में भी कुछ सोचा है आपने?'

मनोहर ने कहा, 'तुम चिंता क्यों करती हो भाग्यवान! हमारी बिटिया में क्या कमी है? वह सुंदर है, गुणवान है, बुद्धिमान है। इसका हाथ मांगने के लिए तो लड़के वालों की लाइन लग जाएगी ...तुम देखती रहना।'

लेकिन मां तो मां ही होती है। उसे बदलते समय का अनुभव भी था। वह जानती थी कि दहेज की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है और दहेज न देने पर तरह-तरह की घटने वाली दुर्घटनाओं से भी वह परिचित थी।

समय का चक्र निर्बाध गति से चलता रहा। रंजना ने शिक्षा भी पूरी कर ली। उसने बी.ए. प्रथम श्रेणी से पास करके घर में खुशियां ला दी थीं। लेकिन मां को तो बस एक ही चिंता थी-किसी भी तरह रंजना के हाथ पीले हो जाएं।

पिछले कुछ दिनों से मनोहर को भी रंजना की शादी की चिंता सताने लगी थी और वह योग्य वर की तलाश में जुट गया था। वह जहां भी जाता दहेज की मांग मुंह बाए खड़ी मिलती।

सीधा-सादा मनोहर दुनियादारी से अपरिचित था। उसने तो यही सोचा था कि उसकी लड़की की शादी उसके गुणों व रूप के कारण कहीं भी हो जाएगी। लेकिन जब वास्तविकता सामने आई तो वह भी हताश हो गया।

एक दिन मनोहर ऑफिस में अपनी सीट पर मुंह लटकाए बैठा

था। तभी उसका सहकर्मी धनसिंह उसके पास आया और पूछा, 'मनोहर क्या बात है? मुंह लटकाए क्यों बैठे हो? सबकुछ ठीक-ठाक तो है?'

मनोहर ने अपनी समस्या उसके सामने रखी तो वह बोला, आजकल मां वैभवलक्ष्मी के काफी चमत्कार सुनने में आ रहे हैं। चारों तरफ उन्हीं की जय-जयकार हो रही है। सुना है मां वैभवलक्ष्मी हर समस्या का समाधान चुटकियों में ही कर देती हैं। मेरा तो कहना है कि तुम भी उनकी शरण में चले जाओ। बिटिया के लिए योग्य वर खुद-ब-खुद तुम्हारे द्वार पर आ जाएगा।'

धनसिंह की बातों से मनोहर का विवेक जागा और उसने पत्नी सहित मां वैभवलक्ष्मी के 21 शुक्रवार तक व्रत रखने का संकल्प लिया।

व्रत के दिन पति-पत्नी मां का ही गुणगान करते और शाम को पूजन कर भोजन करते। इस तरह जब सातवें शुक्रवार का व्रत था, उसी दिन उसकी फर्म का मालिक सेठ दीनदयाल उसके घर पहुंचा। उन्हें देखकर पहले तो मनोहर चौंका, फिर आवभगत में जुट गया।

सेठ दीनदयाल ने मनोहर से कहा, 'मनोहर! बुरा न मानो तो एक बात कहूं?'

मनोहर ने कहा, 'आप भी कैसी बात करते हैं सेठजी। आप तो बस आदेश करें।'

सेठ दीनदयाल ने कहा, 'तुम्हारी बेटी रंजना मुझे और मेरे लड़के राजेश को बहुत पसंद है। मैं चाहता हूं कि इन दोनों की शादी कर दी जाए। तुम्हें कोई आपत्ति हो तो कहो।'

मनोहर को कानों सुने शब्दों पर विश्वास ही नहीं हुआ। अपनी प्रसन्नता को मन में दबाते हुए बोला, 'सेठजी! कहां आप राजा भोज के समान और कहां मैं गंगू तेली जैसा। आपके सामने मेरी हैसियत ही क्या है।'

श्री धनलक्ष्मी

हे धनलक्ष्मी मां! मैंने पूरे विधि-विधान से आपकी स्तुति की है, आप मेरे परिवार को धन-संपत्ति से परिपूर्ण करें।

सेठ दीनदयाल ने उसकी बात को भांपते हुए कहा, 'मनोहर! तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो। यह शादी दहेज के बिना होगी। बस, मुझे तो रंजना जैसी गुणवान लड़की ही चाहिए।'

मनोहर और उसकी पत्नी माधवी ने इसे मां का ही चमत्कार माना और एक-दूसरे की तरफ देखते हुए स्वीकृति दे दी। फिर रंजना की शादी बड़ी धूमधाम से हुई जिसे देखकर सभी दंग रह गए।

शादी के बाद मनोहर और उसकी पत्नी ने 21 शुक्रवार के व्रत पूरे किए। व्रत के अंतिम दिन दोनों ने 21 कन्याओं को भोजन कराया तथा मां वैभवलक्ष्मी का विधिवत पूजन कर व्रतकथा की 21 पुस्तकें मां के श्रद्धालु भक्तों में बांटीं। मां की कृपा से मनोहर-माधवी सुखपूर्वक रहने लगे। इधर नौ माह बाद रंजना को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। यह सब मां के चमत्कारों की बदौलत ही संभव हो पाया।

□□

अथ श्री लक्ष्मी चालीसा

॥ दोहा॥

मातु लक्ष्मी करि कृपा,
करो हृदय में वास।
मनोकामना सिद्ध करि,
पुरवहु मेरी आस॥

॥ सोरठा॥

यही मोर अरदास,
हाथ जोड़ विनती करूं।
सब विधि करौ सुवास,
जय जननि जगदंबिका॥

॥ चौपाई॥

सिन्धु सुता मैं सुमिरों तोहि,
ज्ञान बुद्धि विद्या दे मोही।
तुम समान नहीं कोई उपकारी,
सब विधि पुरवहु आस हमारी॥
जै जै जै जननी जगदम्बा,
सबकी तुम ही हो अवलम्बा।
तुम हो सब घट-घट की वासी,
विनती यही हमारी खासी॥

हिरण्यवर्णां हरिणिं सुवर्णरजत स्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

जगजननी जै सिन्धु कुमारी,
दीनन की तुम हो हितकारी।
बिनवौं नित्य तुमहिं महारानी,
कृपा करो जगजननी भवानी॥
केहि विधि स्तुति करौं तिहारी,
सुधि लीजै अपराध बिसारी।
कृपा दृष्टि चितवो मम ओरी,
जगजननी विनती सुन मोरी॥
ज्ञान बुद्धि जय सुख की दाता,
संकट हरो हमारी माता।
क्षीर सिन्धु जब विष्णु मथायो,
चौदह रत्न सिन्धु में पायो॥
चौदह रत्न में तुम सुख रासी,
सेवा कियो प्रभु बनि दासी।
जो जो जन्म प्रभु जहां लीना,
रूप बदल तहं सेवा कीन्हा॥
स्वयं विष्णु जब नरतनु धारा,
लीन्हेउ अवधपुरी अवतारा।
तब तुम प्रगट जनकपुर माहीं,
सेवा कियो हृदय पुलकाहीं॥
अपनायो तोहि अन्तर्यामी,
विश्व विदित त्रिभुवन के स्वामी।
तुम सम प्रबल शक्ति नहिं आनि,
कहलौं महिमा कहौं बखानी॥

मन क्रम वचन करै सेवकाई,
मन इच्छित वांछित फल पाई।
तजि छल कपट और चतुराई,
पूजहिं विविध भांति मन लाई।।
और हाल मैं कहौं बुझाई,
जो यह पाठ करै मन लाई।
ताको कोई कष्ट न होई,
मन इच्छित वांछित फल पाई।।
त्राहि-त्राहि जय दुख निवारिणी,
त्रिविध ताप भवबंधन हारिणी।
जो यह पढ़े और पढ़ावै,
ध्यान लगाकर सुने सुनावै।।
ताको कोई रोग न सतावै,
पुत्रादि धन संपत्ति पावै।
पुत्रहीन अरू संपतिहीना,
अन्ध बधिर कोढ़ी अति दीना।।
विप्र बोलाय के पाठ करावै,
शंका दिल में कभी न लावै।
पाठ करावै दिन चालीसा,
तापर कृपा करें गौरीशा।।
सुख संपत्ति बहुत सी पावै,
कमी नहीं काहु की आवै।
प्रतिदिन पाठ करै जो पूजा,
तेहि सम धन्य और नहिं दूजा।।

प्रतिदिन पाठ करै मनमाहीं,
उन सम कोई जग में कहुं नाहीं।
बहुविधि क्या मैं करौं बड़ाई,
लेय परीक्षा ध्यान लगाई॥
करि विश्वास करै व्रत नेमा,
होय सिद्ध उपजै उर प्रेमा।
जै जै जै लक्ष्मी भवानी,
सब में व्यापित हो गुणखानी॥
तुम्हारो तेज प्रबल जग माहिं,
तुम सम कोउ दयालु कहुं नाहिं।
भूल चूक करि क्षमा हमारी,
दर्शन दीजै दशा निहारी॥
बिन दर्शन व्याकुल अधिकारी,
तुमहिं अछत दुख सहते भारी।
नाहिं मोहि ज्ञान बुद्धि है मन में,
सब जानत हो अपने मन में॥
रूप चतुर्भुज करके धारण,
कष्ट मोर अब करहु निवारण।
केहि प्रकार मैं करौं बड़ाई,
ज्ञान बुद्धि मोहि नहिं अधिकाई॥

॥दोहा॥

त्राहि-त्राहि दुख हारिणी, हरो बेगि सब त्रास।
जयति जयति जय लक्ष्मी, करो दुश्मन का नाश॥
रामदास धनि ध्यान नित, विनय करत कर जोर।
मातुलक्ष्मी दास पै करहु दया की कोर॥

श्री लक्ष्मीजी की आरती

जय लक्ष्मी माता जय-जय लक्ष्मी माता।
तुमको निशदिन सेवत हर विष्णु विधाता।
ब्रह्माणी, रुद्राणी, कमला तू ही जगमाता।
सूर्य, चन्द्रमा ध्यावत नारद ऋषि गाता।
दुर्गा रूप निरंजनी सुख संपति दाता।
जो कोई तुमको ध्यावत ऋद्धि-सिद्धि पाता।
तू ही पाताल बसंती तू ही शुभ दाता।
कर्म प्रभाव प्रकाशक जग निधि के त्राता।
जिस घर थारो वासा तिस घर में गुण आता।
कर सके सोई कर ले मन नहीं घबराता।
तुम बिन यज्ञ न होवे वस्त्र न कोई पाता।
खान-पान का वैभव तुम बिन नहीं आता।
शुभ गुण सुंदर मुक्ता क्षीर निधि जाता।
रत्न चतुर्दश तोकू कोई नहीं पाता।
श्री लक्ष्मीजी की आरती जो कोई नर गाता।
उर उमंग अति उपजे पाप उतर जाता।
स्थिर चर जगत रचाये शुभ कर्म नर लाता।
राम प्रताप मैया की शुभ दृष्टि चाहता।

श्री लक्ष्मी महिमा

श्री वैभवलक्ष्मी व्रत में आरती करने के बाद इस श्लोक को पढ़ने से शीघ्र फल मिलता है।

यत्राभ्यागवदानमान चरण प्रक्षालनं भोजन।
सत्सेवा पितृदेववार्चन विधिः सत्यं गवां पालनम्।।
धान्या नामपि सग्रहो न कलहश्चित्ता त्रिरूपा प्रिया।
दृष्टा प्रहा हरि वसामि कमला तस्मिन् गृहे निष्फला।।

भावार्थ

जहां मेहमान की आवभगत की जाती है...उसको भोजन कराया जाता है, जहां सज्जनों की सेवा की जाती है, जहां निरंतर श्रद्धा भाव से पितृ व भगवान की पूजा और अन्य धर्म कार्य किए जाते हैं, जहां सत्य का पालन किया जाता है, जहां दुष्कर्म नहीं होते, जहां गायों की रक्षा होती है, जहां दान देने के लिए धान्य का संग्रह किया जाता है, जहां क्लेश नहीं होता, जहां पत्नी संतोषी और संस्कारी होती है, ऐसी जगह पर मैं सदा निश्चल रहती हूं। इसके सिवा अन्य जगह पर कभी-कभार ही दृष्टि डालती हूं।

श्री वैभव लक्ष्मी व्रतकथा
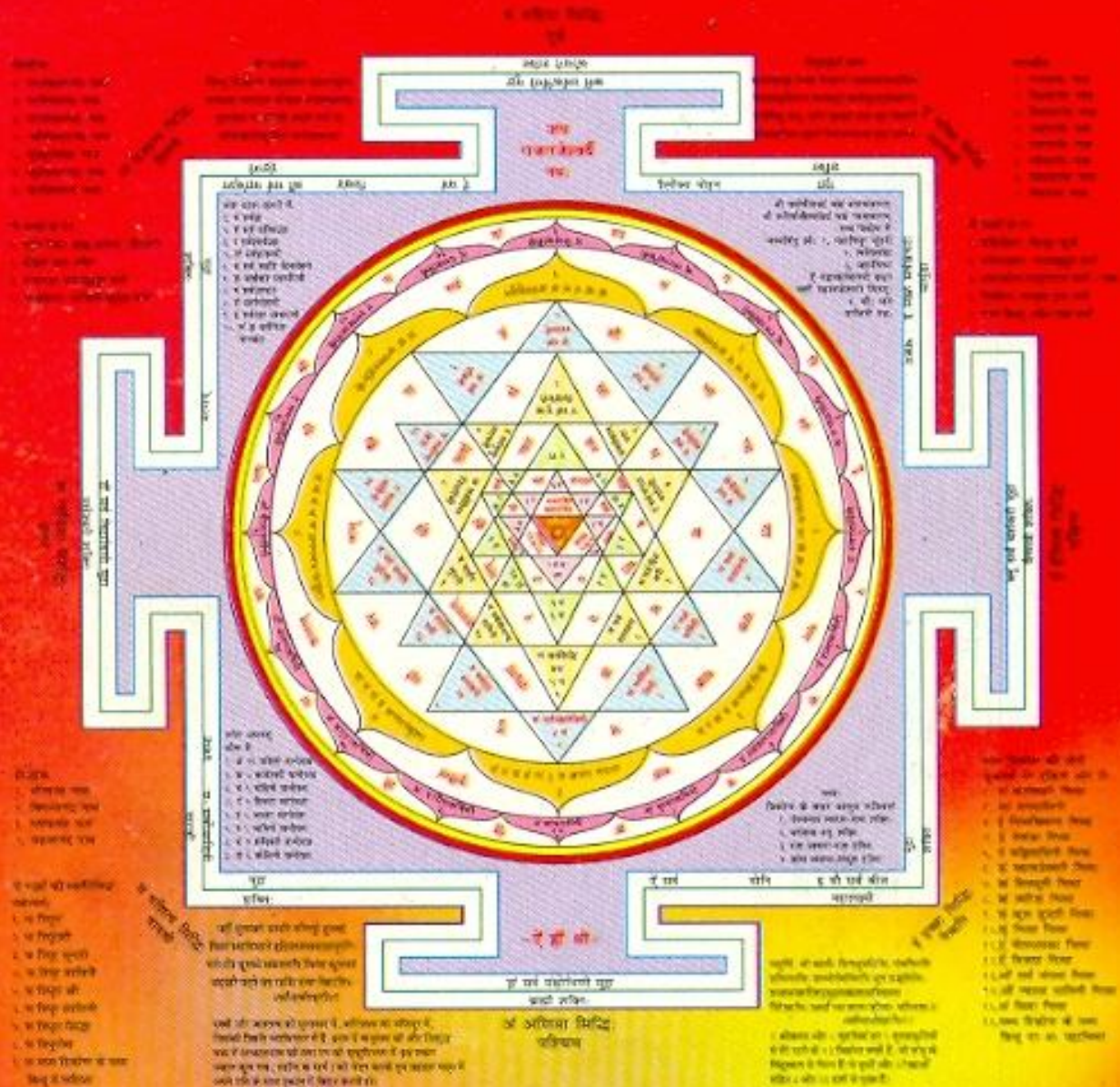
महालक्ष्मी को प्रिय इस अद्भुत श्रीयंत्र
का नित्य दर्शन करने से धन-धान्य की बहुलता रहती है
और सभी मंगलकामनाएं पूर्ण होती हैं।

मनोज पॉकेट बुक्स

एकादशी

महात्मय

पुराणों पर आधारित

एकादशी की रात्रि में श्रीहरि के समीप जागरण का माहात्मय

सब धर्मों के ज्ञाता, वेद और शास्त्रों के अर्थज्ञान में पारंगत, सबके हृदय में रमण करनेवाले श्रीविष्णु के तत्त्व को जाननेवाले तथा भगवत्परायण प्रह्लादजी जब सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उस समय उनके समीप स्वधर्म का पालन करनेवाले महर्षि कुछ पूछने के लिए आये ।

महर्षियों ने कहा : प्रह्लादजी ! आप कोई ऐसा साधन बताइये, जिससे ज्ञान, ध्यान और इन्द्रियनिग्रह के बिना ही अनायास भगवान विष्णु का परम पद प्राप्त हो जाता है ।

उनके ऐसा कहने पर संपूर्ण लोकों के हित के लिए उद्यत रहनेवाले विष्णुभक्त महाभाग प्रह्लादजी ने संक्षेप में इस प्रकार कहा : महर्षियों ! जो अठारह पुराणों

का सार से भी सारतर तत्त्व है, जिसे कार्तिकेयजी के पूछने पर भगवान शंकर ने उन्हें बताया था, उसका वर्णन करता हूँ, सुनिये ।

महादेवजी कार्तिकेय से बोले : जो कलि में एकादशी की रात में जागरण करते समय वैष्णव शास्त्र का पाठ करता है, उसके कोटि जन्मों के किये हुए चार प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं । जो एकादशी के दिन वैष्णव शास्त्र का उपदेश करता है, उसे मेरा भक्त जानना चाहिए ।

जिसे एकादशी के जागरण में निद्रा नहीं आती तथा जो उत्साहपूर्वक नाचता और गाता है, वह मेरा विशेष भक्त है । मैं उसे उत्तम ज्ञान देता हूँ और भगवान विष्णु मोक्ष प्रदान करते हैं । अत: मेरे भक्त को विशेष रुप से जागरण करना चाहिए । जो भगवान विष्णु से वैर करते हैं, उन्हें पाखण्डी जानना चाहिए । जो एकादशी को जागरण करते और गाते हैं, उन्हें आधे निमेष में अग्निष्टोम तथा अतिरात्र यज्ञ के समान फल प्राप्त होता है । जो रात्रि जागरण में बारंबार

भगवान विष्णु के मुखारविंद का दर्शन करते हैं, उनको भी वही फल प्राप्त होता है । जो मानव द्वादशी तिथि को भगवान विष्णु के आगे जागरण करते हैं, वे यमराज के पाश से मुक्त हो जाते हैं ।

जो द्वादशी को जागरण करते समय गीता शास्त्र से मनोविनोद करते हैं, वे भी यमराज के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं । जो प्राणत्याग हो जाने पर भी द्वादशी का जागरण नहीं छोड़ते, वे धन्य और पुण्यात्मा हैं । जिनके वंश के लोग एकादशी की रात में जागरण करते हैं, वे ही धन्य हैं । जिन्होंने एकादशी को जागरण किया हैं, उन्होंने यज्ञ, दान , गयाश्राद्ध और नित्य प्रयागस्नान कर लिया । उन्हें संन्यासियों का पुण्य भी मिल गया और उनके द्वारा इष्टापूर्त कर्मों का भी भलीभाँति पालन हो गया । षडानन ! भगवान विष्णु के भक्त जागरणसहित एकादशी व्रत करते हैं, इसलिए वे मुझे सदा ही विशेष प्रिय हैं । जिसने वर्द्धिनी एकादशी की रात में जागरण किया है, उसने पुनः प्राप्त होनेवाले शरीर को स्वयं ही भस्म कर दिया । जिसने त्रिस्पृशा एकादशी को रात में जागरण किया है, वह

भगवान विष्णु के स्वरुप में लीन हो जाता है । जिसने हरिबोधिनी एकादशी की रात में जागरण किया है, उसके स्थूल सूक्ष्म सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । जो द्वादशी की रात में जागरण तथा ताल स्वर के साथ संगीत का आयोजन करता है, उसे महान पुण्य की प्राप्ति होती है । जो एकादशी के दिन ऋषियों द्वारा बनाये हुए दिव्य स्तोत्रों से, ऋग्वेद , यजुर्वेद तथा सामवेद के वैष्णव मन्त्रों से, संस्कृत और प्राकृत के अन्य स्तोत्रों से व गीत वाद्य आदि के द्वारा भगवान विष्णु को सन्तुष्ट करता है उसे भगवान विष्णु भी परमानन्द प्रदान करते हैं ।

यः पुनः पठते रात्रौ गातां नामसहस्रकम् ।
द्वादश्यां पुरतो विष्णोर्वैष्णवानां समापतः ।
स गच्छेत्परम स्थान यत्र नारायणः त्वयम् ।

जो एकादशी की रात में भगवान विष्णु के आगे वैष्णव भक्तों के समीप गीता और विष्णुसहस्रनाम का पाठ करता है, वह उस परम धाम में जाता है, जहाँ साक्षात् भगवान नारायण विराजमान हैं ।

पुण्यमय भागवत तथा स्कन्दपुराण भगवान विष्णु को प्रिय हैं । मथुरा और व्रज में भगवान विष्णु के बालचरित्र का जो वर्णन किया गया है, उसे जो एकादशी की रात में भगवान केशव का पूजन करके पढ़ता है, उसका पुण्य कितना है, यह मैं भी नहीं जानता । कदाचित् भगवान विष्णु जानते हों । बेटा ! भगवान के समीप गीत, नृत्य तथा स्तोत्रपाठ आदि से जो फल होता है, वही कलि में श्रीहरि के समीप जागरण करते समय 'विष्णुसहस्रनाम, गीता तथा श्रीमद्भागवत' का पाठ करने से सहस्र गुना होकर मिलता है ।

जो श्रीहरि के समीप जागरण करते समय रात में दीपक जलाता है, उसका पुण्य सौ कल्पों में भी नष्ट नहीं होता । जो जागरणकाल में मंजरीसहित

तुलसीदल से भक्तिपूर्वक श्रीहरि का पूजन करता है, उसका पुनः इस संसार में जन्म नहीं होता । स्नान, चन्दन , लेप, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल यह सब जागरणकाल में भगवान को समर्पित किया जाय तो उससे अक्षय पुण्य होता है । कार्तिकेय ! जो भक्त मेरा ध्यान करना चाहता है, वह एकादशी की रात्रि में श्रीहरि के समीप भक्तिपूर्वक जागरण करे । एकादशी के दिन जो लोग जागरण करते हैं उनके शरीर में इन्द्र आदि देवता आकर स्थित होते हैं । जो जागरणकाल में महाभारत का पाठ करते हैं, वे उस परम धाम में जाते हैं जहाँ संन्यासी महात्मा जाया करते हैं । जो उस समय श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र, दशकण्ठ वध पढ़ते हैं वे योगवेत्ताओं की गति को प्राप्त होते हैं ।

जिन्होंने श्रीहरि के समीप जागरण किया है, उन्होंने चारों वेदों का स्वाध्याय, देवताओं का पूजन, यज्ञों का अनुष्ठान तथा सब तीर्थों में स्नान कर लिया । श्रीकृष्ण से बढ़कर कोई देवता नहीं है और एकादशी व्रत के समान दूसरा कोई व्रत नहीं है । जहाँ भागवत शास्त्र है, भगवान विष्णु के लिए जहाँ जागरण किया

जाता है और जहाँ शालग्राम शिला स्थित होती है, वहाँ साक्षात् भगवान विष्णु उपस्थित होते हैं ।

एकादशी व्रत विधि

दशमी की रात्रि को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें तथा भोग विलास से भी दूर रहें । प्रात: एकादशी को लकड़ी का दातुन तथा पेस्ट का उपयोग न करें; नींबू, जामुन या आम के पत्ते लेकर चबा लें और उँगली से कंठ शुद्ध कर लें । वृक्ष से पत्ता तोड़ना भी वर्जित है, अत: स्वयं गिरे हुए पत्ते का सेवन करे । यदि यह सम्भव न हो तो पानी से बारह कुल्ले कर लें । फिर स्नानादि कर मंदिर में जाकर गीता पाठ करें या पुरोहितादि से श्रवण करें । प्रभु के सामने इस प्रकार प्रण करना चाहिए कि: 'आज मैं चोर, पाखण्डी और दुराचारी मनुष्य से बात नहीं करुँगा और न ही किसीका दिल दुखाऊँगा । गौ, ब्राह्मण आदि को फलाहार व अन्नादि देकर प्रसन्न करुँगा । रात्रि को जागरण कर कीर्तन करुँगा , **'ॐ नमो**

भगवते वासुदेवाय' इस द्वादश अक्षर मंत्र अथवा गुरुमंत्र का जाप करूँगा, राम, कृष्ण , नारायण इत्यादि विष्णुसहस्रनाम को कण्ठ का भूषण बनाऊँगा ।' – ऐसी प्रतिज्ञा करके श्रीविष्णु भगवान का स्मरण कर प्रार्थना करें कि : 'हे त्रिलोकपति ! मेरी लाज आपके हाथ है, अत: मुझे इस प्रण को पूरा करने की शक्ति प्रदान करें ।' मौन, जप, शास्त्र पठन , कीर्तन, रात्रि जागरण एकादशी व्रत में विशेष लाभ पँहुचाते हैं।

एकादशी के दिन अशुद्ध द्रव्य से बने पेय न पीयें । कोल्ड ड्रिंक्स, एसिड आदि डाले हुए फलों के डिब्बाबंद रस को न पीयें । दो बार भोजन न करें । आइसक्रीम व तली हुई चीजें न खायें । फल अथवा घर में निकाला हुआ फल का रस अथवा थोड़े दूध या जल पर रहना विशेष लाभदायक है । व्रत के (दशमी, एकादशी और द्वादशी) –इन तीन दिनों में काँसे के बर्तन, मांस, प्याज, लहसुन, मसूर, उड़द, चने, कोदो (एक प्रकार का धान), शाक, शहद, तेल और अत्यम्बुपान (अधिक जल का सेवन) – इनका सेवन न करें । व्रत के पहले दिन

(दशमी को) और दूसरे दिन (द्वादशी को) हविष्यान्न (जौ, गेहूँ, मूँग, सेंधा नमक, कालीमिर्च, शर्करा और गोघृत आदि) का एक बार भोजन करें।

फलाहारी को गोभी, गाजर, शलजम, पालक, कुलफा का साग इत्यादि सेवन नहीं करना चाहिए । आम, अंगूर, केला, बादाम, पिस्ता इत्यादि अमृत फलों का सेवन करना चाहिए ।

जुआ, निद्रा, पान, परायी निन्दा, चुगली, चोरी, हिंसा, मैथुन, क्रोध तथा झूठ, कपटादि अन्य कुकर्मों से नितान्त दूर रहना चाहिए । बैल की पीठ पर सवारी न करें ।

भूलवश किसी निन्दक से बात हो जाय तो इस दोष को दूर करने के लिए भगवान सूर्य के दर्शन तथा धूप दीप से श्रीहरि की पूजा कर क्षमा माँग लेनी चाहिए । एकादशी के दिन घर में झाड़ू नहीं लगायें, इससे चींटी आदि सूक्ष्म

जीवों की मृत्यु का भय रहता है । इस दिन बाल नहीं कटायें । मधुर बोलें, अधिक न बोलें, अधिक बोलने से न बोलने योग्य वचन भी निकल जाते हैं । सत्य भाषण करना चाहिए । इस दिन यथाशक्ति अन्नदान करें किन्तु स्वयं किसीका दिया हुआ अन्न कदापि ग्रहण न करें । प्रत्येक वस्तु प्रभु को भोग लगाकर तथा तुलसीदल छोड़कर ग्रहण करनी चाहिए ।

एकादशी के दिन किसी सम्बन्धी की मृत्यु हो जाय तो उस दिन व्रत रखकर उसका फल संकल्प करके मृतक को देना चाहिए और श्रीगंगाजी में पुष्प (अस्थि) प्रवाहित करने पर भी एकादशी व्रत रखकर व्रत फल प्राणी के निमित्त दे देना चाहिए । प्राणिमात्र को अन्तर्यामी का अवतार समझकर किसीसे छल कपट नहीं करना चाहिए । अपना अपमान करने या कटु वचन बोलनेवाले पर भूलकर भी क्रोध नहीं करें । सन्तोष का फल सर्वदा मधुर होता है । मन में दया रखनी चाहिए । इस विधि से व्रत करनेवाला उत्तम फल को प्राप्त करता है ।

द्वादशी के दिन ब्राह्मणों को मिष्टान्न, दक्षिणादि से प्रसन्न कर उनकी परिक्रमा कर लेनी चाहिए ।

व्रत खोलने की विधि :

द्वादशी को सेवापूजा की जगह पर बैठकर भुने हुए सात चनों के चौदह टुकड़े करके अपने सिर के पीछे फेंकना चाहिए । 'मेरे सात जन्मों के शारीरिक, वाचिक और मानसिक पाप नष्ट हुए' – यह भावना करके सात अंजलि जल पीना और चने के सात दाने खाकर व्रत खोलना चाहिए ।

1.उत्पत्ति एकादशी

उत्पत्ति एकादशी का व्रत हेमन्त ॠतु में मार्गशीर्ष मास के कृष्णपक्ष (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार कार्तिक) को करना चाहिए । इसकी कथा इस प्रकार है :

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : भगवन् ! पुण्यमयी एकादशी तिथि कैसे उत्पन्न हुई? इस संसार में वह क्यों पवित्र मानी गयी तथा देवताओं को कैसे प्रिय हुई?

श्रीभगवान बोले : कुन्तीनन्दन ! प्राचीन समय की बात है । सत्ययुग में मुर नामक दानव रहता था । वह बड़ा ही अदभुत, अत्यन्त रौद्र तथा सम्पूर्ण देवताओं के लिए भयंकर था । उस कालरुपधारी दुरात्मा महासुर ने इन्द्र को भी जीत लिया था । सम्पूर्ण देवता उससे परास्त होकर स्वर्ग से निकाले जा चुके थे और शंकित तथा भयभीत होकर पृथ्वी पर विचरा करते थे । एक दिन सब

देवता महादेवजी के पास गये । वहाँ इन्द्र ने भगवान शिव के आगे सारा हाल कह सुनाया ।

इन्द्र बोले : महेश्वर ! ये देवता स्वर्गलोक से निकाले जाने के बाद पृथ्वी पर विचर रहे हैं । मनुष्यों के बीच रहना इन्हें शोभा नहीं देता । देव ! कोई उपाय बतलाइये । देवता किसका सहारा लें ?

महादेवजी ने कहा : देवराज ! जहाँ सबको शरण देनेवाले, सबकी रक्षा में तत्पर रहने वाले जगत के स्वामी भगवान गरुड़ध्वज विराजमान हैं, वहाँ जाओ । वे तुम लोगों की रक्षा करेंगे ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! महादेवजी की यह बात सुनकर परम बुद्धिमान देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं के साथ क्षीरसागर में गये जहाँ भगवान गदाधर सो रहे थे । इन्द्र ने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की ।

इन्द्र बोले : देवदेवेश्वर ! आपको नमस्कार है ! देव ! आप ही पति, आप ही मति, आप ही कर्त्ता और आप ही कारण हैं । आप ही सब लोगों की माता और आप ही इस जगत के पिता हैं । देवता और दानव दोनों ही आपकी वन्दना करते हैं । पुण्डरीकाक्ष ! आप दैत्यों के शत्रु हैं । मधुसूदन ! हम लोगों की रक्षा कीजिये । प्रभो ! जगन्नाथ ! अत्यन्त उग्र स्वभाववाले महाबली मुर नामक दैत्य ने इन सम्पूर्ण देवताओं को जीतकर स्वर्ग से बाहर निकाल दिया है । भगवन् ! देवदेवेश्वर ! शरणागतवत्सल ! देवता भयभीत होकर आपकी शरण में आये हैं । दानवों का विनाश करनेवाले कमलनयन ! भक्तवत्सल ! देवदेवेश्वर ! जनार्दन ! हमारी रक्षा कीजिये... रक्षा कीजिये । भगवन् ! शरण में आये हुए देवताओं की सहायता कीजिये ।

इन्द्र की बात सुनकर भगवान विष्णु बोले : देवराज ! यह दानव कैसा है ? उसका रुप और बल कैसा है तथा उस दुष्ट के रहने का स्थान कहाँ है ?

इन्द्र बोले: देवेश्वर ! पूर्वकाल में ब्रह्माजी के वंश में तालजंघ नामक एक महान असुर उत्पन्न हुआ था, जो अत्यन्त भयंकर था । उसका पुत्र मुर दानव के नाम से विख्यात है । वह भी अत्यन्त उत्कट, महापराक्रमी और देवताओं के लिए भयंकर है । चन्द्रावती नाम से प्रसिद्ध एक नगरी है, उसीमें स्थान बनाकर वह निवास करता है । उस दैत्य ने समस्त देवताओं को परास्त करके उन्हें स्वर्गलोक से बाहर कर दिया है । उसने एक दूसरे ही इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन पर बैठाया है । अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, वायु तथा वरुण भी उसने दूसरे ही बनाये हैं । जनार्दन ! मैं सच्ची बात बता रहा हूँ । उसने सब कोई दूसरे ही कर लिये हैं । देवताओं को तो उसने उनके प्रत्येक स्थान से वंचित कर दिया है ।

इन्द्र की यह बात सुनकर भगवान जनार्दन को बड़ा क्रोध आया । उन्होंने देवताओं को साथ लेकर चन्द्रावती नगरी में प्रवेश किया । भगवान गदाधर ने देखा कि "दैत्यराज बारंबार गर्जना कर रहा है और उससे परास्त होकर सम्पूर्ण देवता दसों दिशाओं में भाग रहे हैं ।' अब वह दानव भगवान विष्णु को देखकर

बोला : ‘खड़ा रह ... खड़ा रह ।’ उसकी यह ललकार सुनकर भगवान के नेत्र क्रोध से लाल हो गये । वे बोले : ‘ अरे दुराचारी दानव ! मेरी इन भुजाओं को देख ।’ यह कहकर श्रीविष्णु ने अपने दिव्य बाणों से सामने आये हुए दुष्ट दानवों को मारना आरम्भ किया । दानव भय से विह्वल हो उठे । पाण्ड्डनन्दन ! तत्पश्चात् श्रीविष्णु ने दैत्य सेना पर चक्र का प्रहार किया । उससे छिन्न भिन्न होकर सैकड़ो योद्धा मौत के मुख में चले गये ।

इसके बाद भगवान मधुसूदन बदरिकाश्रम को चले गये । वहाँ सिंहावती नाम की गुफा थी, जो बारह योजन लम्बी थी । पाण्ड्डनन्दन ! उस गुफा में एक ही दरवाजा था । भगवान विष्णु उसीमें सो गये । वह दानव मुर भगवान को मार डालने के उद्योग में उनके पीछे पीछे तो लगा ही था । अतः उसने भी उसी गुफा में प्रवेश किया । वहाँ भगवान को सोते देख उसे बड़ा हर्ष हुआ । उसने सोचा : ‘यह दानवों को भय देनेवाला देवता है । अतः निःसन्देह इसे मार डालूँगा ।’ युधिष्ठिर ! दानव के इस प्रकार विचार करते ही भगवान विष्णु के शरीर से एक

कन्या प्रकट हुई, जो बड़ी ही रुपवती, सौभाग्यशालिनी तथा दिव्य अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित थी । वह भगवान के तेज के अंश से उत्पन्न हुई थी । उसका बल और पराक्रम महान था । युधिष्ठिर ! दानवराज मुर ने उस कन्या को देखा । कन्या ने युद्ध का विचार करके दानव के साथ युद्ध के लिए याचना की । युद्ध छिड़ गया । कन्या सब प्रकार की युद्धकला में निपुण थी । वह मुर नामक महान असुर उसके हुंकारमात्र से राख का ढेर हो गया । दानव के मारे जाने पर भगवान जाग उठे । उन्होंने दानव को धरती पर इस प्रकार निष्प्राण पड़ा देखकर कन्या से पूछा : 'मेरा यह शत्रु अत्यन्त उग्र और भयंकर था । किसने इसका वध किया है ?'

कन्या बोली: स्वामिन् ! आपके ही प्रसाद से मैंने इस महादैत्य का वध किया है।

श्रीभगवान ने कहा : कल्याणी ! तुम्हारे इस कर्म से तीनों लोकों के मुनि और देवता आनन्दित हुए हैं। अत: तुम्हारे मन में जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार

मुझसे कोई वर माँग लो । देवदुर्लभ होने पर भी वह वर मैं तुम्हें दूँगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

वह कन्या साक्षात् एकादशी ही थी।

उसने कहा: 'प्रभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं आपकी कृपा से सब तीर्थों में प्रधान, समस्त विघ्नों का नाश करनेवाली तथा सब प्रकार की सिद्धि देनेवाली देवी होऊँ । जनार्दन ! जो लोग आपमें भक्ति रखते हुए मेरे दिन को उपवास करेंगे, उन्हें सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो । माधव ! जो लोग उपवास, नक्त भोजन अथवा एकभुक्त करके मेरे व्रत का पालन करें, उन्हें आप धन, धर्म और मोक्ष प्रदान कीजिये ।'

श्रीविष्णु बोले: कल्याणी ! तुम जो कुछ कहती हो, वह सब पूर्ण होगा ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! ऐसा वर पाकर महाव्रता एकादशी बहुत प्रसन्न हुई । दोनों पक्षों की एकादशी समान रुप से कल्याण करनेवाली है । इसमें शुक्ल और कृष्ण का भेद नहीं करना चाहिए । यदि उदयकाल में थोड़ी सी एकादशी, मध्य में पूरी द्वादशी और अन्त में किंचित् त्रयोदशी हो तो वह 'त्रिस्पृशा एकादशी' कहलाती है । वह भगवान को बहुत ही प्रिय है । यदि एक 'त्रिस्पृशा एकादशी' को उपवास कर लिया जाय तो एक हजार एकादशी व्रतों का फल प्राप्त होता है तथा इसी प्रकार द्वादशी में पारण करने पर हजार गुना फल माना गया है । अष्टमी, एकादशी, षष्ठी, तृतीय और चतुर्दशी – ये यदि पूर्वतिथि से विद्ध हों तो उनमें व्रत नहीं करना चाहिए । परवर्तिनी तिथि से युक्त होने पर ही इनमें उपवास का विधान है । पहले दिन में और रात में भी एकादशी हो तथा दूसरे दिन केवल प्रात: काल एकदण्ड एकादशी रहे तो पहली तिथि का परित्याग करके दूसरे दिन की द्वादशीयुक्त एकादशी को ही उपवास करना चाहिए । यह विधि मैंने दोनों पक्षों की एकादशी के लिए बतायी है ।

जो मनुष्य एकादशी को उपवास करता है, वह वैकुण्ठधाम में जाता है, जहाँ साक्षात् भगवान गरुड़ध्वज विराजमान रहते हैं । जो मानव हर समय एकादशी के माहात्मय का पाठ करता है, उसे हजार गौदान के पुण्य का फल प्राप्त होता है । जो दिन या रात में भक्तिपूर्वक इस माहात्म्य का श्रवण करते हैं, वे निःसंदेह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाते हैं । एकादशी के समान पापनाशक व्रत दूसरा कोई नहीं है ।

2.मोक्षदा एकादशी

युधिष्ठिर बोले : देवदेवेश्वर ! मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष में कौन सी एकादशी होती है ? उसकी क्या विधि है तथा उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है? स्वामिन् ! यह सब यथार्थ रुप से बताइये ।

श्रीकृष्ण ने कहा : नृपश्रेष्ठ ! मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का वर्णन करुँगा, जिसके श्रवणमात्र से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है । उसका नाम 'मोक्षदा एकादशी' है जो सब पापों का अपहरण करनेवाली है । राजन् ! उस दिन यत्नपूर्वक तुलसी की मंजरी तथा धूप दीपादि से भगवान दामोदर का पूजन करना चाहिए । पूर्वाक्त विधि से ही दशमी और एकादशी के नियम का पालन करना उचित है । मोक्षदा एकादशी बड़े बड़े पातकों का नाश करनेवाली है । उस दिन रात्रि में मेरी प्रसन्न्ता के लिए नृत्य, गीत और स्तुति के द्वारा जागरण करना चाहिए । जिसके पितर पापवश नीच योनि में पड़े हों, वे इस एकादशी का

व्रत करके इसका पुण्यदान अपने पितरों को करें तो पितर मोक्ष को प्राप्त होते हैं । इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

पूर्वकाल की बात है, वैष्णवों से विभूषित परम रमणीय चम्पक नगर में वैखानस नामक राजा रहते थे । वे अपनी प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करते थे । इस प्रकार राज्य करते हुए राजा ने एक दिन रात को स्वप्न में अपने पितरों को नीच योनि में पड़ा हुआ देखा । उन सबको इस अवस्था में देखकर राजा के मन में बड़ा विस्मय हुआ और प्रात: काल ब्राह्मणों से उन्होंने उस स्वप्न का सारा हाल कह सुनाया ।

राजा बोले : ब्रह्माणो ! मैंने अपने पितरों को नरक में गिरा हुआ देखा है । वे बारंबार रोते हुए मुझसे यों कह रहे थे कि : 'तुम हमारे तनुज हो, इसलिए इस नरक समुद्र से हम लोगों का उद्धार करो। ' द्विजवरो ! इस रुप में मुझे पितरों के दर्शन हुए हैं इससे मुझे चैन नहीं मिलता । क्या करुँ ? कहाँ जाऊँ? मेरा हृदय रुँधा जा रहा है । द्विजोत्तमो ! वह व्रत, वह तप और वह योग, जिससे मेरे पूर्वज

तत्काल नरक से छुटकारा पा जायें, बताने की कृपा करें । मुझ बलवान तथा साहसी पुत्र के जीते जी मेरे माता पिता घोर नरक में पड़े हुए हैं ! अतः ऐसे पुत्र से क्या लाभ है ?

ब्राह्मण बोले : राजन् ! यहाँ से निकट ही पर्वत मुनि का महान आश्रम है । वे भूत और भविष्य के भी ज्ञाता हैं । नृपश्रेष्ठ ! आप उन्हींके पास चले जाइये ।

ब्राह्मणों की बात सुनकर महाराज वैखानस शीघ्र ही पर्वत मुनि के आश्रम पर गये और वहाँ उन मुनिश्रेष्ठ को देखकर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम करके मुनि के चरणों का स्पर्श किया । मुनि ने भी राजा से राज्य के सातों अंगों की कुशलता पूछी ।

राजा बोले: स्वामिन् ! आपकी कृपा से मेरे राज्य के सातों अंग सकुशल हैं किन्तु मैंने स्वप्न में देखा है कि मेरे पितर नरक में पड़े हैं । अत: बताइये कि किस पुण्य के प्रभाव से उनका वहाँ से छुटकारा होगा ?

राजा की यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ पर्वत एक मुहूर्त तक ध्यानस्थ रहे । इसके बाद वे राजा से बोले :

'महाराज! मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष में जो 'मोक्षदा' नाम की एकादशी होती है, तुम सब लोग उसका व्रत करो और उसका पुण्य पितरों को दे डालो । उस पुण्य के प्रभाव से उनका नरक से उद्धार हो जायेगा ।'

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! मुनि की यह बात सुनकर राजा पुन: अपने घर लौट आये । जब उत्तम मार्गशीर्ष मास आया, तब राजा वैखानस ने मुनि के कथनानुसार 'मोक्षदा एकादशी' का व्रत करके उसका पुण्य समस्त पितरोंसहित पिता को दे दिया । पुण्य देते ही क्षणभर में आकाश से फूलों की

वर्षा होने लगी । वैखानस के पिता पितरोंसहित नरक से छुटकारा पा गये और आकाश में आकर राजा के प्रति यह पवित्र वचन बोले: 'बेटा ! तुम्हारा कल्याण हो ।' यह कहकर वे स्वर्ग में चले गये ।

राजन् ! जो इस प्रकार कल्याणमयी ''मोक्षदा एकादशी' का व्रत करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और मरने के बाद वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है । यह मोक्ष देनेवाली 'मोक्षदा एकादशी' मनुष्यों के लिए चिन्तामणि के समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है । इस माहात्मय के पढ़ने और सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है ।

3.सफला एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : स्वामिन् ! पौष मास के कृष्णपक्ष (गुज., महा. के लिए मार्गशीर्ष) में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? उसकी क्या विधि है तथा उसमें किस देवता की पूजा की जाती है ? यह बताइये ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजेन्द्र ! बड़ी बड़ी दक्षिणावाले यज्ञों से भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना एकादशी व्रत के अनुष्ठान से होता है । पौष मास के कृष्णपक्ष में 'सफला' नाम की एकादशी होती है । उस दिन विधिपूर्वक भगवान नारायण की पूजा करनी चाहिए । जैसे नागों में शेषनाग, पक्षियों में गरुड़ तथा देवताओं में श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतों में एकादशी तिथि श्रेष्ठ है ।

राजन् ! 'सफला एकादशी' को नाम मंत्रों का उच्चारण करके नारियल के फल, सुपारी, बिजौरा तथा जमीरा नींबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषतः आम के फलों और धूप दीप से श्रीहरि का पूजन करे । 'सफला एकादशी' को विशेष रुप से दीप दान करने का विधान है । रात को वैष्णव पुरुषों के साथ जागरण करना चाहिए । जागरण करनेवाले को जिस फल की प्राप्ति होती है, वह हजारों वर्ष तपस्या करने से भी नहीं मिलता ।

नृपश्रेष्ठ ! अब 'सफला एकादशी' की शुभकारिणी कथा सुनो । चम्पावती नाम से विख्यात एक पुरी है, जो कभी राजा माहिष्मत की राजधानी थी । राजर्षि माहिष्मत के पाँच पुत्र थे । उनमें जो ज्येष्ठ था, वह सदा पापकर्म में ही लगा रहता था । परस्त्रीगामी और वेश्यासक्त था । उसने पिता के धन को पापकर्म में ही खर्च किया । वह सदा दुराचारपरायण तथा वैष्णवों और देवताओं की निन्दा किया करता था । अपने पुत्र को ऐसा पापाचारी देखकर राजा माहिष्मत ने राजकुमारों में उसका नाम लुम्भक रख दिया। फिर पिता और भाईयों ने मिलकर

उसे राज्य से बाहर निकाल दिया । लुम्भक गहन वन में चला गया । वहीं रहकर उसने प्राय: समूचे नगर का धन लूट लिया । एक दिन जब वह रात में चोरी करने के लिए नगर में आया तो सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया । किन्तु जब उसने अपने को राजा माहिष्मत का पुत्र बतलाया तो सिपाहियों ने उसे छोड़ दिया । फिर वह वन में लौट आया और मांस तथा वृक्षों के फल खाकर जीवन निर्वाह करने लगा । उस दुष्ट का विश्राम स्थान पीपल वृक्ष बहुत वर्षों पुराना था । उस वन में वह वृक्ष एक महान देवता माना जाता था । पापबुद्धि लुम्भक वहीं निवास करता था ।

एक दिन किसी संचित पुण्य के प्रभाव से उसके द्वारा एकादशी के व्रत का पालन हो गया । पौष मास में कृष्णपक्ष की दशमी के दिन पापिष्ठ लुम्भक ने वृक्षों के फल खाये और वस्त्रहीन होने के कारण रातभर जाड़े का कष्ट भोगा । उस समय न तो उसे नींद आयी और न आराम ही मिला । वह निष्प्राण सा हो रहा था । सूर्योदय होने पर भी उसको होश नहीं आया । 'सफला एकादशी' के

दिन भी लुम्भक बेहोश पड़ा रहा । दोपहर होने पर उसे चेतना प्राप्त हुई । फिर इधर उधर दृष्टि डालकर वह आसन से उठा और लँगड़े की भाँति लड़खड़ाता हुआ वन के भीतर गया । वह भूख से दुर्बल और पीड़ित हो रहा था । राजन् ! लुम्भक बहुत से फल लेकर जब तक विश्राम स्थल पर लौटा, तब तक सूर्यदेव अस्त हो गये । तब उसने उस पीपल वृक्ष की जड़ में बहुत से फल निवेदन करते हुए कहा: 'इन फलों से लक्ष्मीपति भगवान विष्णु संतुष्ट हों ।' यों कहकर लुम्भक ने रातभर नींद नहीं ली । इस प्रकार अनायास ही उसने इस व्रत का पालन कर लिया । उस समय सहसा आकाशवाणी हुई: 'राजकुमार ! तुम 'सफला एकादशी' के प्रसाद से राज्य और पुत्र प्राप्त करोगे ।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने वह वरदान स्वीकार किया । इसके बाद उसका रुप दिव्य हो गया । तबसे उसकी उत्तम बुद्धि भगवान विष्णु के भजन में लग गयी । दिव्य आभूषणों से सुशोभित होकर उसने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया और पंद्रह वर्षों तक वह उसका संचालन करता रहा । उसको मनोज्ञ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । जब वह बड़ा हुआ, तब

लुम्भक ने तुरंत ही राज्य की ममता छोड़कर उसे पुत्र को सौंप दिया और वह स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के समीप चला गया, जहाँ जाकर मनुष्य कभी शोक में नहीं पड़ता ।

राजन् ! इस प्रकार जो 'सफला एकादशी' का उत्तम व्रत करता है, वह इस लोक में सुख भोगकर मरने के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त होता है । संसार में वे मनुष्य धन्य हैं, जो 'सफला एकादशी' के व्रत में लगे रहते हैं, उन्हीं का जन्म सफल है । महाराज! इसकी महिमा को पढ़ने, सुनने तथा उसके अनुसार आचरण करने से मनुष्य राजसूय यज्ञ का फल पाता है ।

4.पुत्रदा एकादशी

युधिष्ठिर बोले: श्रीकृष्ण ! कृपा करके पौष मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का माहात्म्य बतलाइये । उसका नाम क्या है? उसे करने की विधि क्या है ? उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है ?

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा: राजन्! पौष मास के शुक्लपक्ष की जो एकादशी है, उसका नाम 'पुत्रदा' है ।

'पुत्रदा एकादशी' को नाम-मंत्रों का उच्चारण करके फलों के द्वारा श्रीहरि का पूजन करे । नारियल के फल, सुपारी, बिजौरा नींबू, जमीरा नींबू, अनार, सुन्दर आँवला, लौंग, बेर तथा विशेषत: आम के फलों से देवदेवेश्वर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए । इसी प्रकार धूप दीप से भी भगवान की अर्चना करे ।

‘पुत्रदा एकादशी’ को विशेष रुप से दीप दान करने का विधान है । रात को वैष्णव पुरुषों के साथ जागरण करना चाहिए । जागरण करनेवाले को जिस फल की प्राप्ति होति है, वह हजारों वर्ष तक तपस्या करने से भी नहीं मिलता । यह सब पापों को हरनेवाली उत्तम तिथि है ।

चराचर जगतसहित समस्त त्रिलोकी में इससे बढ़कर दूसरी कोई तिथि नहीं है । समस्त कामनाओं तथा सिद्धियों के दाता भगवान नारायण इस तिथि के अधिदेवता हैं ।

पूर्वकाल की बात है, भद्रावतीपुरी में राजा सुकेतुमान राज्य करते थे । उनकी रानी का नाम चम्पा था । राजा को बहुत समय तक कोई वंशधर पुत्र नहीं प्राप्त हुआ । इसलिए दोनों पति पत्नी सदा चिन्ता और शोक में डूबे रहते थे । राजा के पितर उनके दिये हुए जल को शोकोच्छ्वास से गरम करके पीते थे । ‘राजा के

बाद और कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो हम लोगों का तर्पण करेगा ...' यह सोच सोचकर पितर दु:खी रहते थे ।

एक दिन राजा घोड़े पर सवार हो गहन वन में चले गये । पुरोहित आदि किसीको भी इस बात का पता न था । मृग और पक्षियों से सेवित उस सघन कानन में राजा भ्रमण करने लगे । मार्ग में कहीं सियार की बोली सुनायी पड़ती थी तो कहीं उल्लुओं की । जहाँ तहाँ भालू और मृग दृष्टिगोचर हो रहे थे । इस प्रकार घूम घूमकर राजा वन की शोभा देख रहे थे, इतने में दोपहर हो गयी । राजा को भूख और प्यास सताने लगी । वे जल की खोज में इधर उधर भटकने लगे । किसी पुण्य के प्रभाव से उन्हें एक उत्तम सरोवर दिखायी दिया, जिसके समीप मुनियों के बहुत से आश्रम थे । शोभाशाली नरेश ने उन आश्रमों की ओर देखा । उस समय शुभ की सूचना देनेवाले शकुन होने लगे । राजा का दाहिना नेत्र और दाहिना हाथ फड़कने लगा, जो उत्तम फल की सूचना दे रहा था । सरोवर के तट पर बहुत से मुनि वेदपाठ कर रहे थे । उन्हें देखकर राजा को

बड़ा हर्ष हुआ । वे घोड़े से उतरकर मुनियों के सामने खड़े हो गये और पृथक् पृथक् उन सबकी वन्दना करने लगे । वे मुनि उत्तम व्रत का पालन करनेवाले थे । जब राजा ने हाथ जोड़कर बारंबार दण्डवत् किया, तब मुनि बोले : 'राजन् ! हम लोग तुम पर प्रसन्न हैं।'

राजा बोले: आप लोग कौन हैं ? आपके नाम क्या हैं तथा आप लोग किसलिए यहाँ एकत्रित हुए हैं? कृपया यह सब बताइये ।

मुनि बोले: राजन् ! हम लोग विश्वेदेव हैं । यहाँ स्नान के लिए आये हैं । माघ मास निकट आया है । आज से पाँचवें दिन माघ का स्नान आरम्भ हो जायेगा । आज ही 'पुत्रदा' नाम की एकादशी है,जो व्रत करनेवाले मनुष्यों को पुत्र देती है ।

राजा ने कहा: विश्वेदेवगण ! यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो मुझे पुत्र दीजिये।

मुनि बोले: राजन्! आज 'पुत्रदा' नाम की एकादशी है। इसका व्रत बहुत विख्यात है। तुम आज इस उत्तम व्रत का पालन करो । महाराज! भगवान केशव के प्रसाद से तुम्हें पुत्र अवश्य प्राप्त होगा ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं: युधिष्ठिर ! इस प्रकार उन मुनियों के कहने से राजा ने उक्त उत्तम व्रत का पालन किया । महर्षियों के उपदेश के अनुसार विधिपूर्वक 'पुत्रदा एकादशी' का अनुष्ठान किया । फिर द्वादशी को पारण करके मुनियों के चरणों में बारंबार मस्तक झुकाकर राजा अपने घर आये । तदनन्तर रानी ने गर्भधारण किया । प्रसवकाल आने पर पुण्यकर्मा राजा को तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ, जिसने अपने गुणों से पिता को संतुष्ट कर दिया । वह प्रजा का पालक हुआ ।

इसलिए राजन्! 'पुत्रदा' का उत्तम व्रत अवश्य करना चाहिए । मैंने लोगों के हित के लिए तुम्हारे सामने इसका वर्णन किया है । जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर

‘पुत्रदा एकादशी’ का व्रत करते हैं, वे इस लोक में पुत्र पाकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गगामी होते हैं। इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है ।

5.षटतिला एकादशी

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से पूछा: भगवन् ! माघ मास के कृष्णपक्ष में कौन सी एकादशी होती है? उसके लिए कैसी विधि है तथा उसका फल क्या है ? कृपा करके ये सब बातें हमें बताइये ।

श्रीभगवान बोले: नृपश्रेष्ठ ! माघ (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार पौष) मास के कृष्णपक्ष की एकादशी 'षटतिला' के नाम से विख्यात है, जो सब पापों का नाश करनेवाली है । मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्य ने इसकी जो पापहारिणी कथा दाल्भ्य से कही थी, उसे सुनो ।

दाल्भ्य ने पूछा: ब्रह्मन्! मृत्युलोक में आये हुए प्राणी प्राय: पापकर्म करते रहते हैं । उन्हें नरक में न जाना पड़े इसके लिए कौन सा उपाय है? बताने की कृपा करें ।

पुलस्त्यजी बोले: महाभाग ! माघ मास आने पर मनुष्य को चाहिए कि वह नहा धोकर पवित्र हो इन्द्रियसंयम रखते हुए काम, क्रोध, अहंकार ,लोभ और चुगली आदि बुराइयों को त्याग दे । देवाधिदेव भगवान का स्मरण करके जल से पैर धोकर भूमि पर पड़े हुए गोबर का संग्रह करे । उसमें तिल और कपास मिलाकर एक सौ आठ पिंडिकाएँ बनाये । फिर माघ में जब आर्द्रा या मूल नक्षत्र आये, तब कृष्णपक्ष की एकादशी करने के लिए नियम ग्रहण करें । भली भाँति स्नान करके पवित्र हो शुद्ध भाव से देवाधिदेव श्रीविष्णु की पूजा करें । कोई भूल हो जाने पर श्रीकृष्ण का नामोच्चारण करें । रात को जागरण और होम करें । चन्दन, अरगजा, कपूर, नैवेघ आदि सामग्री से शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर श्रीहरि की पूजा करें । तत्पश्चात् भगवान का स्मरण करके बारंबार श्रीकृष्ण नाम का उच्चारण करते हुए कुम्हड़े, नारियल अथवा बिजौरे के फल से भगवान को विधिपूर्वक पूजकर अर्ध्य दें । अन्य सब सामग्रियों के

अभाव में सौ सुपारियों के द्वारा भी पूजन और अर्ध्यदान किया जा सकता है । अर्ध्य का मंत्र इस प्रकार है:

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव ।
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम ॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥
गृहाणार्ध्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते ।

'सच्चिदानन्दस्वरुप श्रीकृष्ण ! आप बड़े दयालु हैं । हम आश्रयहीन जीवों के आप आश्रयदाता होइये । हम संसार समुद्र में डूब रहे हैं, आप हम पर प्रसन्न होइये । कमलनयन ! विश्वभावन ! सुब्रह्मण्य ! महापुरुष ! सबके पूर्वज ! आपको नमस्कार है ! जगत्पते ! मेरा दिया हुआ अर्ध्य आप लक्ष्मीजी के साथ स्वीकार करें ।'

तत्पश्चात् ब्राह्मण की पूजा करें । उसे जल का घड़ा, छाता, जूता और वस्त्र दान करें । दान करते समय ऐसा कहें : 'इस दान के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों ।' अपनी शक्ति के अनुसार श्रेष्ठ ब्राह्मण को काली गौ का दान करें । द्विजश्रेष्ठ ! विद्वान पुरुष को चाहिए कि वह तिल से भरा हुआ पात्र भी दान करे । उन तिलों के बोने पर उनसे जितनी शाखाएँ पैदा हो सकती हैं, उतने हजार वर्षों तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । तिल से स्नान होम करे, तिल का उबटन लगाये, तिल मिलाया हुआ जल पीये, तिल का दान करे और तिल को भोजन के काम में ले ।'

इस प्रकार हे नृपश्रेष्ठ ! छः कामों में तिल का उपयोग करने के कारण यह एकादशी 'षटतिला' कहलाती है, जो सब पापों का नाश करनेवाली है ।

6.जया एकादशी

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : भगवन् ! कृपा करके यह बताइये कि माघ मास के शुक्लपक्ष में कौन सी एकादशी होती है, उसकी विधि क्या है तथा उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजेन्द्र ! माघ मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका नाम 'जया' है । वह सब पापों को हरनेवाली उत्तम तिथि है । पवित्र होने के साथ ही पापों का नाश करनेवाली तथा मनुष्यों को भाग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है । इतना ही नहीं , वह ब्रह्महत्या जैसे पाप तथा पिशाचत्व का भी विनाश करनेवाली है । इसका व्रत करने पर मनुष्यों को कभी प्रेतयोनि में नहीं जाना पड़ता । इसलिए राजन् ! प्रयत्नपूर्वक 'जया' नाम की एकादशी का व्रत करना चाहिए ।

एक समय की बात है । स्वर्गलोक में देवराज इन्द्र राज्य करते थे । देवगण पारिजात वृक्षों से युक्त नंदनवन में अप्सराओं के साथ विहार कर रहे थे । पचास करोड़ गन्धर्वों के नायक देवराज इन्द्र ने स्वेच्छानुसार वन में विहार करते हुए बड़े हर्ष के साथ नृत्य का आयोजन किया । गन्धर्व उसमें गान कर रहे थे, जिनमें पुष्पदन्त, चित्रसेन तथा उसका पुत्र – ये तीन प्रधान थे । चित्रसेन की स्त्री का नाम मालिनी था । मालिनी से एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो पुष्पवन्ती के नाम से विख्यात थी । पुष्पदन्त गन्धर्व का एक पुत्र था, जिसको लोग माल्यवान कहते थे । माल्यवान पुष्पवन्ती के रुप पर अत्यन्त मोहित था । ये दोनों भी इन्द्र के संतोषार्थ नृत्य करने के लिए आये थे । इन दोनों का गान हो रहा था । इनके साथ अप्सराएँ भी थीं । परस्पर अनुराग के कारण ये दोनों मोह के वशीभूत हो गये । चित्त में भ्रान्ति आ गयी इसलिए वे शुद्ध गान न गा सके । कभी ताल भंग हो जाता था तो कभी गीत बंद हो जाता था । इन्द्र ने इस प्रमाद पर विचार किया और इसे अपना अपमान समझकर वे कुपित हो गये ।

अतः इन दोनों को शाप देते हुए बोले : 'ओ मूर्खो ! तुम दोनों को धिक्कार है ! तुम लोग पतित और मेरी आज्ञाभंग करनेवाले हो, अतः पति पत्नी के रुप में रहते हुए पिशाच हो जाओ ।'

इन्द्र के इस प्रकार शाप देने पर इन दोनों के मन में बड़ा दुःख हुआ । वे हिमालय पर्वत पर चले गये और पिशाचयोनि को पाकर भयंकर दुःख भोगने लगे । शारीरिक पातक से उत्पन्न ताप से पीड़ित होकर दोनों ही पर्वत की कन्दराओं में विचरते रहते थे । एक दिन पिशाच ने अपनी पत्नी पिशाची से कहा : 'हमने कौन सा पाप किया है, जिससे यह पिशाचयोनि प्राप्त हुई है ? नरक का कष्ट अत्यन्त भयंकर है तथा पिशाचयोनि भी बहुत दुःख देनेवाली है । अतः पूर्ण प्रयत्न करके पाप से बचना चाहिए ।'

इस प्रकार चिन्तामग्न होकर वे दोनों दुःख के कारण सूखते जा रहे थे । दैवयोग से उन्हें माघ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी की तिथि प्राप्त हो गयी ।

‘जया’ नाम से विख्यात वह तिथि सब तिथियों में उत्तम है । उस दिन उन दोनों ने सब प्रकार के आहार त्याग दिये, जल पान तक नहीं किया । किसी जीव की हिंसा नहीं की, यहाँ तक कि खाने के लिए फल तक नहीं काटा । निरन्तर दुःख से युक्त होकर वे एक पीपल के समीप बैठे रहे । सूर्यास्त हो गया । उनके प्राण हर लेने वाली भयंकर रात्रि उपस्थित हुई । उन्हें नींद नहीं आयी । वे रति या और कोई सुख भी नहीं पा सके ।

सूर्योदय हुआ, द्वादशी का दिन आया । इस प्रकार उस पिशाच दंपति के द्वारा ‘जया’ के उत्तम व्रत का पालन हो गया । उन्होंने रात में जागरण भी किया था । उस व्रत के प्रभाव से तथा भगवान विष्णु की शक्ति से उन दोनों का पिशाचत्व दूर हो गया । पुष्पवन्ती और माल्यवान अपने पूर्वरुप में आ गये । उनके हृदय में वही पुराना स्नेह उमड़ रहा था । उनके शरीर पर पहले जैसे ही अलंकार शोभा पा रहे थे ।

वे दोनों मनोहर रुप धारण करके विमान पर बैठे और स्वर्गलोक में चले गये । वहाँ देवराज इन्द्र के सामने जाकर दोनों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उन्हें प्रणाम किया ।

उन्हें इस रुप में उपस्थित देखकर इन्द्र को बड़ा विस्मय हुआ ! उन्होंने पूछा: 'बताओ, किस पुण्य के प्रभाव से तुम दोनों का पिशाचत्व दूर हुआ है? तुम मेरे शाप को प्राप्त हो चुके थे, फिर किस देवता ने तुम्हें उससे छुटकारा दिलाया है?'

माल्यवान बोला : स्वामिन् ! भगवान वासुदेव की कृपा तथा 'जया' नामक एकादशी के व्रत से हमारा पिशाचत्व दूर हुआ है ।

इन्द्र ने कहा : ... तो अब तुम दोनों मेरे कहने से सुधापान करो । जो लोग एकादशी के व्रत में तत्पर और भगवान श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं, वे हमारे भी पूजनीय होते हैं ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! इस कारण एकादशी का व्रत करना चाहिए । नृपश्रेष्ठ ! 'जया' ब्रह्महत्या का पाप भी दूर करनेवाली है । जिसने 'जया' का व्रत किया है, उसने सब प्रकार के दान दे दिये और सम्पूर्ण यज्ञों का अनुष्ठान कर लिया । इस माहात्म्य के पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है ।

7.विजया एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा: हे वासुदेव! फाल्गुन (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार माघ) के कृष्णपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है और उसका व्रत करने की विधि क्या है? कृपा करके बताइये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले: युधिष्ठिर ! एक बार नारदजी ने ब्रह्माजी से फाल्गुन के कृष्णपक्ष की 'विजया एकादशी' के व्रत से होनेवाले पुण्य के बारे में पूछा था तथा ब्रह्माजी ने इस व्रत के बारे में उन्हें जो कथा और विधि बतायी थी, उसे सुनो :

ब्रह्माजी ने कहा : नारद ! यह व्रत बहुत ही प्राचीन, पवित्र और पाप नाशक है । यह एकादशी राजाओं को विजय प्रदान करती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

त्रेतायुग में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी जब लंका पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र के किनारे पहुँचे, तब उन्हें समुद्र को पार करने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था । उन्होंने लक्ष्मणजी से पूछा : 'सुमित्रानन्दन ! किस उपाय से इस समुद्र को पार किया जा सकता है ? यह अत्यन्त अगाध और भयंकर जल जन्तुओं से भरा हुआ है । मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखायी देता, जिससे इसको सुगमता से पार किया जा सके ।'

लक्ष्मणजी बोले : हे प्रभु ! आप ही आदिदेव और पुराण पुरुष पुरुषोत्तम हैं । आपसे क्या छिपा है? यहाँ से आधे योजन की दूरी पर कुमारी द्वीप में बकदाल्भ्य नामक मुनि रहते हैं । आप उन प्राचीन मुनीश्वर के पास जाकर उन्हींसे इसका उपाय पूछिये ।

श्रीरामचन्द्रजी महामुनि बकदाल्भ्य के आश्रम पहुँचे और उन्होंने मुनि को प्रणाम किया । महर्षि ने प्रसन्न होकर श्रीरामजी के आगमन का कारण पूछा ।

श्रीरामचन्द्रजी बोले : ब्रह्मन् ! मैं लंका पर चढ़ाई करने के उद्धेश्य से अपनी सेनासहित यहाँ आया हूँ । मुने ! अब जिस प्रकार समुद्र पार किया जा सके, कृपा करके वह उपाय बताइये ।

बकदाल्भय मुनि ने कहा : हे श्रीरामजी ! फाल्गुन के कृष्णपक्ष में जो 'विजया' नाम की एकादशी होती है, उसका व्रत करने से आपकी विजय होगी । निश्चय ही आप अपनी वानर सेना के साथ समुद्र को पार कर लेंगे । राजन् ! अब इस व्रत की फलदायक विधि सुनिये :

दशमी के दिन सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टी का एक कलश स्थापित कर उस कलश को जल से भरकर उसमें पल्लव डाल दें । उसके ऊपर भगवान नारायण के सुवर्णमय विग्रह की स्थापना करें । फिर एकादशी के दिन प्रातः काल स्नान करें । कलश को पुनः स्थापित करें । माला, चन्दन, सुपारी तथा नारियल आदि के द्वारा विशेष रुप से उसका पूजन करें । कलश के ऊपर सप्तधान्य और जौ रखें

। गन्ध, धूप, दीप और भाँति भाँति के नैवेघ से पूजन करें । कलश के सामने बैठकर उत्तम कथा वार्ता आदि के द्वारा सारा दिन व्यतीत करें और रात में भी वहाँ जागरण करें । अखण्ड व्रत की सिद्धि के लिए घी का दीपक जलायें । फिर द्वादशी के दिन सूर्योदय होने पर उस कलश को किसी जलाशय के समीप (नदी, झरने या पोखर के तट पर) स्थापित करें और उसकी विधिवत् पूजा करके देव प्रतिमासहित उस कलश को वेदवेत्ता ब्राह्मण के लिए दान कर दें । कलश के साथ ही और भी बड़े बड़े दान देने चाहिए । श्रीराम ! आप अपने सेनापतियों के साथ इसी विधि से प्रयत्नपूर्वक 'विजया एकादशी' का व्रत कीजिये । इससे आपकी विजय होगी ।

ब्रह्माजी कहते हैं : नारद ! यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने मुनि के कथनानुसार उस समय 'विजया एकादशी' का व्रत किया । उस व्रत के करने से श्रीरामचन्द्रजी विजयी हुए । उन्होंने संग्राम में रावण को मारा, लंका पर विजय पायी और सीता

को प्राप्त किया । बेटा ! जो मनुष्य इस विधि से व्रत करते हैं, उन्हें इस लोक में विजय प्राप्त होती है और उनका परलोक भी अक्षय बना रहता है ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! इस कारण 'विजया' का व्रत करना चाहिए । इस प्रसंग को पढ़ने और सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है ।

8.आमलकी एकादशी

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा : श्रीकृष्ण ! मुझे फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम और माहात्म्य बताने की कृपा कीजिये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले: महाभाग धर्मनन्दन ! फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम 'आमलकी' है । इसका पवित्र व्रत विष्णुलोक की प्राप्ति करानेवाला है । राजा मान्धाता ने भी महात्मा वशिष्ठजी से इसी प्रकार का प्रश्न पूछा था, जिसके जवाब में वशिष्ठजी ने कहा था :

'महाभाग ! भगवान विष्णु के थूकने पर उनके मुख से चन्द्रमा के समान कान्तिमान एक बिन्दु प्रकट होकर पृथ्वी पर गिरा । उसीसे आमलक (आँवले) का महान वृक्ष उत्पन्न हुआ, जो सभी वृक्षों का आदिभूत कहलाता है । इसी समय प्रजा की सृष्टि करने के लिए भगवान ने ब्रह्माजी को उत्पन्न किया और ब्रह्माजी ने देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग तथा निर्मल अंतःकरण वाले

महर्षियों को जन्म दिया । उनमें से देवता और ऋषि उस स्थान पर आये, जहाँ विष्णुप्रिय आमलक का वृक्ष था । महाभाग ! उसे देखकर देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ क्योंकि उस वृक्ष के बारे में वे नहीं जानते थे । उन्हें इस प्रकार विस्मित देख आकाशवाणी हुई: 'महर्षियो ! यह सर्वश्रेष्ठ आमलक का वृक्ष है, जो विष्णु को प्रिय है । इसके स्मरणमात्र से गोदान का फल मिलता है । स्पर्श करने से इससे दुगना और फल भक्षण करने से तिगुना पुण्य प्राप्त होता है । यह सब पापों को हरनेवाला वैष्णव वृक्ष है । इसके मूल में विष्णु, उसके ऊपर ब्रह्मा, स्कन्ध में परमेश्वर भगवान रुद्र, शाखाओं में मुनि, टहनियों में देवता, पत्तों में वसु, फूलों में मरुद्गण तथा फलों में समस्त प्रजापति वास करते हैं । आमलक सर्वदेवमय है । अत: विष्णुभक्त पुरुषों के लिए यह परम पूज्य है । इसलिए सदा प्रयत्नपूर्वक आमलक का सेवन करना चाहिए ।'

ऋषि बोले : आप कौन हैं ? देवता हैं या कोई और ? हमें ठीक ठीक बताइये ।

पुन : आकाशवाणी हुई : जो सम्पूर्ण भूतों के कर्त्ता और समस्त भुवनों के स्रष्टा हैं, जिन्हें विद्वान पुरुष भी कठिनता से देख पाते हैं, मैं वही सनातन विष्णु हूँ।

देवाधिदेव भगवान विष्णु का यह कथन सुनकर वे ऋषिगण भगवान की स्तुति करने लगे । इससे भगवान श्रीहरि संतुष्ट हुए और बोले : 'महर्षियो ! तुम्हें कौन सा अभीष्ट वरदान दूँ ?

ऋषि बोले : भगवन् ! यदि आप संतुष्ट हैं तो हम लोगों के हित के लिए कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो स्वर्ग और मोक्षरुपी फल प्रदान करनेवाला हो ।

श्रीविष्णुजी बोले : महर्षियो ! फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में यदि पुष्य नक्षत्र से युक्त एकादशी हो तो वह महान पुण्य देनेवाली और बड़े बड़े पातकों का नाश करनेवाली होती है । इस दिन आँवले के वृक्ष के पास जाकर वहाँ रात्रि में जागरण करना चाहिए । इससे मनुष्य सब पापों से छुट जाता है और सहस्र

गोदान का फल प्राप्त करता है । विप्रगण ! यह व्रत सभी व्रतों में उत्तम है, जिसे मैंने तुम लोगों को बताया है ।

ऋषि बोले : भगवन् ! इस व्रत की विधि बताइये । इसके देवता और मंत्र क्या हैं ? पूजन कैसे करें? उस समय स्नान और दान कैसे किया जाता है?

भगवान श्रीविष्णुजी ने कहा : द्विजवरो ! इस एकादशी को व्रती प्रात:काल दन्तधावन करके यह संकल्प करे कि ' हे पुण्डरीकाक्ष ! हे अच्युत ! मैं एकादशी को निराहार रहकर दुसरे दिन भोजन करुँगा । आप मुझे शरण में रखें ।' ऐसा नियम लेने के बाद पतित, चोर, पाखण्डी, दुराचारी, गुरुपत्नीगामी तथा मर्यादा भंग करनेवाले मनुष्यों से वह वार्तालाप न करे । अपने मन को वश में रखते हुए नदी में, पोखरे में, कुएँ पर अथवा घर में ही स्नान करे । स्नान के पहले शरीर में मिट्टी लगाये ।

मृत्तिका लगाने का मंत्र

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
मृत्तिके हर मे पापं जन्मकोटयां समर्जितम् ।।

वसुन्धरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं तथा वामन अवतार के समय भगवान विष्णु ने भी तुम्हें अपने पैरों से नापा था । मृत्तिके ! मैंने करोड़ों जन्मों में जो पाप किये हैं, मेरे उन सब पापों को हर लो ।'

स्नान का मंत्र

त्वं मातः सर्वभूतानां जीवनं तत्तु रक्षकम्।
स्वेदजोद्भिज्जजातीनां रसानां पतये नमः॥
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु ह्रदप्रस्रवणेषु च्।
नदीषु देवखातेषु इदं स्नानं तु मे भवेत्।।

'जल की अधिष्ठात्री देवी ! मातः ! तुम सम्पूर्ण भूतों के लिए जीवन हो । वही जीवन, जो स्वेदज और उद्भिज्ज जाति के जीवों का भी रक्षक है । तुम रसों की स्वामिनी हो । तुम्हें नमस्कार है । आज मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों, नदियों और देवसम्बन्धी सरोवरों में स्नान कर चुका । मेरा यह स्नान उक्त सभी स्नानों का फल देनेवाला हो ।'

विद्वान पुरुष को चाहिए कि वह परशुरामजी की सोने की प्रतिमा बनवाये । प्रतिमा अपनी शक्ति और धन के अनुसार एक या आधे माशे सुवर्ण की होनी चाहिए । स्नान के पश्चात् घर आकर पूजा और हवन करे । इसके बाद सब प्रकार की सामग्री लेकर आँवले के वृक्ष के पास जाय । वहाँ वृक्ष के चारों ओर की जमीन झाड़ बुहार, लीप पोतकर शुद्ध करे । शुद्ध की हुई भूमि में मंत्रपाठपूर्वक जल से भरे हुए नवीन कलश की स्थापना करे । कलश में पंचरत्न और दिव्य गन्ध आदि छोड़ दे । श्वेत चन्दन से उसका लेपन करे । उसके कण्ठ में फूल की माला पहनाये । सब प्रकार के धूप की सुगन्ध फैलाये । जलते हुए दीपकों

की श्रेणी सजाकर रखे । तात्पर्य यह है कि सब ओर से सुन्दर और मनोहर दृश्य उपस्थित करे । पूजा के लिए नवीन छाता, जूता और वस्त्र भी मँगाकर रखे । कलश के ऊपर एक पात्र रखकर उसे श्रेष्ठ लाजों(खीलों) से भर दे । फिर उसके ऊपर परशुरामजी की मूर्ति (सुवर्ण की) स्थापित करे।

‘**विशोकाय नमः**’ कहकर उनके चरणों की,
‘**विश्वरुपिणे नमः**’ से दोनों घुटनों की,
‘**उग्राय नमः**’ से जाँघो की,
‘**दामोदराय नमः**’ से कटिभाग की,
‘**पधनाभाय नमः**’ से उदर की,
‘**श्रीवत्सधारिणे नमः**’ से वक्षः स्थल की,
‘**चक्रिणे नमः**’ से बायीं बाँह की,
‘**गदिने नमः**’ से दाहिनी बाँह की,
‘**वैकुण्ठाय नमः**’ से कण्ठ की,

‘**यज्ञमुखाय नमः**’ से मुख की,

‘**विशोकनिधये नमः**’ से नासिका की,

‘**वासुदेवाय नमः**’ से नेत्रों की,

‘**वामनाय नमः**’ से ललाट की,

‘**सर्वात्मने नमः**’ से संपूर्ण अंगो तथा मस्तक की पूजा करे ।

ये ही पूजा के मंत्र हैं। तदनन्तर भक्तियुक्त चित्त से शुद्ध फल के द्वारा देवाधिदेव परशुरामजी को अर्ध्य प्रदान करे । अर्ध्य का मंत्र इस प्रकार है :

नमस्ते देवदेवेश जामदग्न्य नमोऽस्तु ते ।
गृहाणार्ध्यमिमं दत्तमामलक्या युतं हरे ॥

‘देवदेवेश्वर ! जमदग्निनन्दन ! श्री विष्णुस्वरुप परशुरामजी ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है । आँवले के फल के साथ दिया हुआ मेरा यह अर्ध्य ग्रहण कीजिये ।’

तदनन्तर भक्तियुक्त चित्त से जागरण करे । नृत्य, संगीत, वाघ, धार्मिक उपाख्यान तथा श्रीविष्णु संबंधी कथा वार्ता आदि के द्वारा वह रात्रि व्यतीत करे । उसके बाद भगवान विष्णु के नाम ले लेकर आमलक वृक्ष की परिक्रमा एक सौ आठ या अट्ठाईस बार करे । फिर सवेरा होने पर श्रीहरि की आरती करे । ब्राह्मण की पूजा करके वहाँ की सब सामग्री उसे निवेदित कर दे । परशुरामजी का कलश, दो वस्त्र, जूता आदि सभी वस्तुएँ दान कर दे और यह भावना करे कि : ‘परशुरामजी के स्वरुप में भगवान विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों ।’ तत्पश्चात् आमलक का स्पर्श करके उसकी प्रदक्षिणा करे और स्नान करने के बाद विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराये । तदनन्तर कुटुम्बियों के साथ बैठकर स्वयं भी भोजन करे ।

सम्पूर्ण तीर्थों के सेवन से जो पुण्य प्राप्त होता है तथा सब प्रकार के दान देने दे जो फल मिलता है, वह सब उपर्युक्त विधि के पालन से सुलभ होता है । समस्त यज्ञों की अपेक्षा भी अधिक फल मिलता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । यह व्रत सब व्रतों में उत्तम है ।'

वशिष्ठजी कहते हैं : महाराज ! इतना कहकर देवेश्वर भगवान विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये । तत्पश्चात् उन समस्त महर्षियों ने उक्त व्रत का पूर्णरुप से पालन किया । नृपश्रेष्ठ ! इसी प्रकार तुम्हें भी इस व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! यह दुर्धर्ष व्रत मनुष्य को सब पापों से मुक्त करनेवाला है ।

9.पापमोचनी एकादशी

महाराज युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से चैत्र (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार फाल्गुन) मास के कृष्णपक्ष की एकादशी के बारे में जानने की इच्छा प्रकट की तो वे बोले : 'राजेन्द्र ! मैं तुम्हें इस विषय में एक पापनाशक उपाख्यान सुनाऊँगा, जिसे चक्रवर्ती नरेश मान्धाता के पूछने पर महर्षि लोमश ने कहा था ।'

मान्धाता ने पूछा : भगवन् ! मैं लोगों के हित की इच्छा से यह सुनना चाहता हूँ कि चैत्र मास के कृष्णपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, उसकी क्या विधि है तथा उससे किस फल की प्राप्ति होती है? कृपया ये सब बातें मुझे बताइये ।

लोमशजी ने कहा : नृपश्रेष्ठ ! पूर्वकाल की बात है । अप्सराओं से सेवित चैत्ररथ नामक वन में, जहाँ गन्धर्वों की कन्याएँ अपने किंकरो के साथ बाजे बजाती हुई

विहार करती हैं, मंजुघोषा नामक अप्सरा मुनिवर मेघावी को मोहित करने के लिए गयी । वे महर्षि चैत्ररथ वन में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते थे । मंजुघोषा मुनि के भय से आश्रम से एक कोस दूर ही ठहर गयी और सुन्दर ढंग से वीणा बजाती हुई मधुर गीत गाने लगी । मुनिश्रेष्ठ मेघावी घूमते हुए उधर जा निकले और उस सुन्दर अप्सरा को इस प्रकार गान करते देख बरबस ही मोह के वशीभूत हो गये । मुनि की ऐसी अवस्था देख मंजुघोषा उनके समीप आयी और वीणा नीचे रखकर उनका आलिंगन करने लगी । मेघावी भी उसके साथ रमण करने लगे । रात और दिन का भी उन्हें भान न रहा । इस प्रकार उन्हें बहुत दिन व्यतीत हो गये । मंजुघोषा देवलोक में जाने को तैयार हुई । जाते समय उसने मुनिश्रेष्ठ मेघावी से कहा: 'ब्रह्मन् ! अब मुझे अपने देश जाने की आज्ञा दीजिये ।'

मेघावी बोले : देवी ! जब तक सवेरे की संध्या न हो जाय तब तक मेरे ही पास ठहरो ।

अप्सरा ने कहा : विप्रवर ! अब तक न जाने कितनी ही संध्याँए चली गयीं ! मुझ पर कृपा करके बीते हुए समय का विचार तो कीजिये !

लोमशजी ने कहा : राजन् ! अप्सरा की बात सुनकर मेघावी चकित हो उठे । उस समय उन्होंने बीते हुए समय का हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि उसके साथ रहते हुए उन्हें सत्तावन वर्ष हो गये । उसे अपनी तपस्या का विनाश करनेवाली जानकर मुनि को उस पर बड़ा क्रोध आया । उन्होंने शाप देते हुए कहा: 'पापिनी ! तू पिशाची हो जा ।' मुनि के शाप से दग्ध होकर वह विनय से नतमस्तक हो बोली : 'विप्रवर ! मेरे शाप का उद्धार कीजिये । सात वाक्य बोलने या सात पद साथ साथ चलनेमात्र से ही सत्पुरुषों के साथ मैत्री हो जाती है । ब्रह्मन् ! मैं तो आपके साथ अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं, अत: स्वामिन् ! मुझ पर कृपा कीजिये ।'

मुनि बोले : भद्रे ! क्या करूँ ? तुमने मेरी बहुत बड़ी तपस्या नष्ट कर डाली है । फिर भी सुनो । चैत्र कृष्णपक्ष में जो एकादशी आती है उसका नाम है 'पापमोचनी ।' वह शाप से उद्धार करनेवाली तथा सब पापों का क्षय करनेवाली है । सुन्दरी ! उसीका व्रत करने पर तुम्हारी पिशाचता दूर होगी ।

ऐसा कहकर मेघावी अपने पिता मुनिवर च्यवन के आश्रम पर गये । उन्हें आया देख च्यवन ने पूछा : 'बेटा ! यह क्या किया ? तुमने तो अपने पुण्य का नाश कर डाला !'

मेघावी बोले : पिताजी ! मैंने अप्सरा के साथ रमण करने का पातक किया है । अब आप ही कोई ऐसा प्रायश्चित बताइये, जिससे पातक का नाश हो जाय ।

च्यवन ने कहा : बेटा ! चैत्र कृष्णपक्ष में जो 'पापमोचनी एकादशी' आती है, उसका व्रत करने पर पापराशि का विनाश हो जायेगा ।

पिता का यह कथन सुनकर मेघावी ने उस व्रत का अनुष्ठान किया । इससे उनका पाप नष्ट हो गया और वे पुन: तपस्या से परिपूर्ण हो गये । इसी प्रकार मंजुघोषा ने भी इस उत्तम व्रत का पालन किया । 'पापमोचनी' का व्रत करने के कारण वह पिशाचयोनि से मुक्त हुई और दिव्य रुपधारिणी श्रेष्ठ अप्सरा होकर स्वर्गलोक में चली गयी ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! जो श्रेष्ठ मनुष्य 'पापमोचनी एकादशी' का व्रत करते हैं उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । इसको पढ़ने और सुनने से सहस्र गौदान का फल मिलता है । ब्रह्महत्या, सुवर्ण की चोरी, सुरापान और गुरुपत्नीगमन करनेवाले महापातकी भी इस व्रत को करने से पापमुक्त हो जाते हैं । यह व्रत बहुत पुण्यमय है ।

10. कामदा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा: वासुदेव ! आपको नमस्कार है ! कृपया आप यह बताइये कि चैत्र शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! एकाग्रचित्त होकर यह पुरातन कथा सुनो, जिसे वशिष्ठजी ने राजा दिलीप के पूछने पर कहा था ।

वशिष्ठजी बोले : राजन् ! चैत्र शुक्लपक्ष में 'कामदा' नाम की एकादशी होती है । वह परम पुण्यमयी है । पापरुपी ईँधन के लिए तो वह दावानल ही है ।

प्राचीन काल की बात है: नागपुर नाम का एक सुन्दर नगर था, जहाँ सोने के महल बने हुए थे । उस नगर में पुण्डरीक आदि महा भयंकर नाग निवास करते थे । पुण्डरीक नाम का नाग उन दिनों वहाँ राज्य करता था । गन्धर्व,

किन्नर और अप्सराएँ भी उस नगरी का सेवन करती थीं । वहाँ एक श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका नाम ललिता था । उसके साथ ललित नामवाला गन्धर्व भी था । वे दोनों पति पत्नी के रुप में रहते थे । दोनों ही परस्पर काम से पीड़ित रहा करते थे । ललिता के हृदय में सदा पति की ही मूर्ति बसी रहती थी और ललित के हृदय में सुन्दरी ललिता का नित्य निवास था ।

एक दिन की बात है । नागराज पुण्डरीक राजसभा में बैठकर मनोंरंजन कर रहा था । उस समय ललित का गान हो रहा था किन्तु उसके साथ उसकी प्यारी ललिता नहीं थी । गाते गाते उसे ललिता का स्मरण हो आया । अत: उसके पैरों की गति रुक गयी और जीभ लड़खड़ाने लगी ।

नागों में श्रेष्ठ कर्कोटक को ललित के मन का सन्ताप ज्ञात हो गया, अत: उसने राजा पुण्डरीक को उसके पैरों की गति रुकने और गान में त्रुटि होने की बात बता दी । कर्कोटक की बात सुनकर नागराज पुण्डरीक की आँखे क्रोध से

लाल हो गयीं । उसने गाते हुए कामातुर ललित को शाप दिया : 'दुर्बुद्धे ! तू मेरे सामने गान करते समय भी पत्नी के वशीभूत हो गया, इसलिए राक्षस हो जा ।'

महाराज पुण्डरीक के इतना कहते ही वह गन्धर्व राक्षस हो गया । भयंकर मुख, विकराल आँखें और देखनेमात्र से भय उपजानेवाला रुप – ऐसा राक्षस होकर वह कर्म का फल भोगने लगा ।

ललिता अपने पति की विकराल आकृति देख मन ही मन बहुत चिन्तित हुई । भारी दुःख से वह कष्ट पाने लगी । सोचने लगी: 'क्या करुँ? कहाँ जाऊँ? मेरे पति पाप से कष्ट पा रहे हैं...'

वह रोती हुई घने जंगलों में पति के पीछे पीछे घूमने लगी । वन में उसे एक सुन्दर आश्रम दिखायी दिया, जहाँ एक मुनि शान्त बैठे हुए थे । किसी भी प्राणी के साथ उनका वैर विरोध नहीं था । ललिता शीघ्रता के साथ वहाँ गयी

और मुनि को प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हुई । मुनि बड़े दयालु थे । उस दु:खिनी को देखकर वे इस प्रकार बोले : 'शुभे ! तुम कौन हो ? कहाँ से यहाँ आयी हो? मेरे सामने सच सच बताओ ।'

ललिता ने कहा : महामुने ! वीरधन्वा नामवाले एक गन्धर्व हैं । मैं उन्हीं महात्मा की पुत्री हूँ । मेरा नाम ललिता है । मेरे स्वामी अपने पाप दोष के कारण राक्षस हो गये हैं । उनकी यह अवस्था देखकर मुझे चैन नहीं है । ब्रह्मन् ! इस समय मेरा जो कर्त्तव्य हो, वह बताइये । विप्रवर! जिस पुण्य के द्वारा मेरे पति राक्षसभाव से छुटकारा पा जायें, उसका उपदेश कीजिये ।

ऋषि बोले : भद्रे ! इस समय चैत्र मास के शुक्लपक्ष की 'कामदा' नामक एकादशी तिथि है, जो सब पापों को हरनेवाली और उत्तम है । तुम उसीका विधिपूर्वक व्रत करो और इस व्रत का जो पुण्य हो, उसे अपने स्वामी को दे डालो । पुण्य देने पर क्षणभर में ही उसके शाप का दोष दूर हो जायेगा ।

राजन् ! मुनि का यह वचन सुनकर ललिता को बड़ा हर्ष हुआ । उसने एकादशी को उपवास करके द्वादशी के दिन उन ब्रह्मर्षि के समीप ही भगवान वासुदेव के (श्रीविग्रह के) समक्ष अपने पति के उद्धार के लिए यह वचन कहा: 'मैंने जो यह 'कामदा एकादशी' का उपवास व्रत किया है, उसके पुण्य के प्रभाव से मेरे पति का राक्षसभाव दूर हो जाय ।'

वशिष्ठजी कहते हैं : ललिता के इतना कहते ही उसी क्षण ललित का पाप दूर हो गया । उसने दिव्य देह धारण कर लिया । राक्षसभाव चला गया और पुन: गन्धर्वत्व की प्राप्ति हुई ।

नृपश्रेष्ठ ! वे दोनों पति पत्नी 'कामदा' के प्रभाव से पहले की अपेक्षा भी अधिक सुन्दर रुप धारण करके विमान पर आरुढ़ होकर अत्यन्त शोभा पाने लगे । यह जानकर इस एकादशी के व्रत का यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए ।

मैंने लोगों के हित के लिए तुम्हारे सामने इस व्रत का वर्णन किया है । ‘कामदा एकादशी’ ब्रह्महत्या आदि पापों तथा पिशाचत्व आदि दोषों का नाश करनेवाली है । राजन् ! इसके पढ़ने और सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है ।

11. वरुथिनी एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : हे वासुदेव ! वैशाख मास के कृष्णपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है? कृपया उसकी महिमा बताइये।

भगवान श्रीकृष्ण बोले: राजन् ! वैशाख (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार चैत्र) कृष्णपक्ष की एकादशी 'वरुथिनी' के नाम से प्रसिद्ध है । यह इस लोक और परलोक में भी सौभाग्य प्रदान करनेवाली है । 'वरुथिनी' के व्रत से सदा सुख की प्राप्ति और पाप की हानि होती है । 'वरुथिनी' के व्रत से ही मान्धाता तथा धुन्धुमार आदि अन्य अनेक राजा स्वर्गलोक को प्राप्त हुए हैं । जो फल दस हजार वर्षों तक तपस्या करने के बाद मनुष्य को प्राप्त होता है, वही फल इस 'वरुथिनी एकादशी' का व्रत रखनेमात्र से प्राप्त हो जाता है ।

नृपश्रेष्ठ ! घोड़े के दान से हाथी का दान श्रेष्ठ है । भूमिदान उससे भी बड़ा है । भूमिदान से भी अधिक महत्त्व तिलदान का है । तिलदान से बढ़कर स्वर्णदान और स्वर्णदान से बढ़कर अन्नदान है, क्योंकि देवता, पितर तथा मनुष्यों को अन्न से ही तृप्ति होती है । विद्वान पुरुषों ने कन्यादान को भी इस दान के ही समान बताया है । कन्यादान के तुल्य ही गाय का दान है, यह साक्षात् भगवान का कथन है । इन सब दानों से भी बड़ा विद्यादान है । मनुष्य 'वरुथिनी एकादशी' का व्रत करके विद्यादान का भी फल प्राप्त कर लेता है । जो लोग पाप से मोहित होकर कन्या के धन से जीविका चलाते हैं, वे पुण्य का क्षय होने पर यातनामक नरक में जाते हैं । अत: सर्वथा प्रयत्न करके कन्या के धन से बचना चाहिए उसे अपने काम में नहीं लाना चाहिए । जो अपनी शक्ति के अनुसार अपनी कन्या को आभूषणों से विभूषित करके पवित्र भाव से कन्या का दान करता है, उसके पुण्य की संख्या बताने में चित्रगुप्त भी असमर्थ हैं । 'वरुथिनी एकादशी' करके भी मनुष्य उसीके समान फल प्राप्त करता है ।

राजन् ! रात को जागरण करके जो भगवान मधुसूदन का पूजन करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो परम गति को प्राप्त होते हैं । अतः पापभीरु मनुष्यों को पूर्ण प्रयत्न करके इस एकादशी का व्रत करना चाहिए । यमराज से डरनेवाला मनुष्य अवश्य 'वरुथिनी एकादशी' का व्रत करे । राजन् ! इसके पढ़ने और सुनने से सहस्र गौदान का फल मिलता है और मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

(सुयोग्य पाठक इसको पढ़ें, सुनें और गौदान का पुण्यलाभ प्राप्त करें ।)□

12. मोहिनी एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : जनार्दन ! वैशाख मास के शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है? उसका क्या फल होता है? उसके लिए कौन सी विधि है?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : धर्मराज ! पूर्वकाल में परम बुद्धिमान श्रीरामचन्द्रजी ने महर्षि वशिष्ठजी से यही बात पूछी थी, जिसे आज तुम मुझसे पूछ रहे हो ।

श्रीराम ने कहा : भगवन् ! जो समस्त पापों का क्षय तथा सब प्रकार के दु:खों का निवारण करनेवाला, व्रतों में उत्तम व्रत हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ ।

वशिष्ठजी बोले : श्रीराम ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है । मनुष्य तुम्हारा नाम लेने से ही सब पापों से शुद्ध हो जाता है । तथापि लोगों के हित की इच्छा से मैं पवित्रों में पवित्र उत्तम व्रत का वर्णन करूँगा । वैशाख मास के शुक्लपक्ष में जो

एकादशी होती है, उसका नाम ‘मोहिनी’ है । वह सब पापों को हरनेवाली और उत्तम है । उसके व्रत के प्रभाव से मनुष्य मोहजाल तथा पातक समूह से छुटकारा पा जाते हैं ।

सरस्वती नदी के रमणीय तट पर भद्रावती नाम की सुन्दर नगरी है । वहाँ धृतिमान नामक राजा, जो चन्द्रवंश में उत्पन्न और सत्यप्रतिज्ञ थे, राज्य करते थे । उसी नगर में एक वैश्य रहता था, जो धन धान्य से परिपूर्ण और समृद्धशाली था । उसका नाम था धनपाल । वह सदा पुण्यकर्म में ही लगा रहता था । दूसरों के लिए पौसला (प्याऊ), कुआँ, मठ, बगीचा, पोखरा और घर बनवाया करता था । भगवान विष्णु की भक्ति में उसका हार्दिक अनुराग था । वह सदा शान्त रहता था । उसके पाँच पुत्र थे : सुमना, धुतिमान, मेघावी, सुकृत तथा धृष्टबुद्धि । धृष्टबुद्धि पाँचवाँ था । वह सदा बड़े बड़े पापों में ही संलग्न रहता था । जुए आदि दुर्व्यसनों में उसकी बड़ी आसक्ति थी । वह वेश्याओं से मिलने के लिए लालायित रहता था । उसकी बुद्धि न तो देवताओं के पूजन में लगती थी और न

पितरों तथा ब्राह्मणों के सत्कार में । वह दुष्टात्मा अन्याय के मार्ग पर चलकर पिता का धन बरबाद किया करता था। एक दिन वह वेश्या के गले में बाँह डाले चौराहे पर घूमता देखा गया । तब पिता ने उसे घर से निकाल दिया तथा बन्धु बान्धवों ने भी उसका परित्याग कर दिया । अब वह दिन रात दु:ख और शोक में डूबा तथा कष्ट पर कष्ट उठाता हुआ इधर उधर भटकने लगा । एक दिन किसी पुण्य के उदय होने से वह महर्षि कौण्डिन्य के आश्रम पर जा पहुँचा । वैशाख का महीना था । तपोधन कौण्डिन्य गंगाजी में स्नान करके आये थे । धृष्टबुद्धि शोक के भार से पीड़ित हो मुनिवर कौण्डिन्य के पास गया और हाथ जोड़ सामने खड़ा होकर बोला : 'ब्रह्मन् ! द्विजश्रेष्ठ ! मुझ पर दया करके कोई ऐसा व्रत बताइये, जिसके पुण्य के प्रभाव से मेरी मुक्ति हो ।'

कौण्डिन्य बोले : वैशाख के शुक्लपक्ष में 'मोहिनी' नाम से प्रसिद्ध एकादशी का व्रत करो । 'मोहिनी' को उपवास करने पर प्राणियों के अनेक जन्मों के किये हुए मेरु पर्वत जैसे महापाप भी नष्ट हो जाते हैं ।'

वशिष्ठजी कहते है : श्रीरामचन्द्रजी ! मुनि का यह वचन सुनकर धृष्टबुद्धि का चित्त प्रसन्न हो गया । उसने कौण्डिन्य के उपदेश से विधिपूर्वक 'मोहिनी एकादशी' का व्रत किया । नृपश्रेष्ठ ! इस व्रत के करने से वह निष्पाप हो गया और दिव्य देह धारण कर गरुड़ पर आरुढ़ हो सब प्रकार के उपद्रवों से रहित श्रीविष्णुधाम को चला गया । इस प्रकार यह 'मोहिनी' का व्रत बहुत उत्तम है । इसके पढ़ने और सुनने से सहस्र गौदान का फल मिलता है ।'

13. अपरा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : जनार्दन ! ज्येष्ठ मास के कृष्णपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है? मैं उसका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ । उसे बताने की कृपा कीजिये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आपने सम्पूर्ण लोकों के हित के लिए बहुत उत्तम बात पूछी है । राजेन्द्र ! ज्येष्ठ (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार वैशाख) मास के कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम 'अपरा' है । यह बहुत पुण्य प्रदान करनेवाली और बड़े बडे पातकों का नाश करनेवाली है । ब्रह्महत्या से दबा हुआ, गोत्र की हत्या करनेवाला, गर्भस्थ बालक को मारनेवाला, परनिन्दक तथा परस्त्रीलम्पट पुरुष भी 'अपरा एकादशी' के सेवन से निश्चय ही पापरहित हो जाता है । जो झूठी गवाही देता है, माप तौल में धोखा देता है, बिना जाने ही नक्षत्रों की गणना करता है और कूटनीति से आयुर्वेद का ज्ञाता बनकर वैध का काम करता है... ये सब नरक में निवास करनेवाले प्राणी हैं । परन्तु 'अपरा एकादशी' के सवेन से ये

भी पापरहित हो जाते हैं । यदि कोई क्षत्रिय अपने क्षात्रधर्म का परित्याग करके युद्ध से भागता है तो वह क्षत्रियोचित धर्म से भ्रष्ट होने के कारण घोर नरक में पड़ता है । जो शिष्य विद्या प्राप्त करके स्वयं ही गुरुनिन्दा करता है, वह भी महापातकों से युक्त होकर भयंकर नरक में गिरता है । किन्तु 'अपरा एकादशी' के सेवन से ऐसे मनुष्य भी सदगति को प्राप्त होते हैं ।

माघ में जब सूर्य मकर राशि पर स्थित हो, उस समय प्रयाग में स्नान करनेवाले मनुष्यों को जो पुण्य होता है, काशी में शिवरात्रि का व्रत करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, गया में पिण्डदान करके पितरों को तृप्ति प्रदान करनेवाला पुरुष जिस पुण्य का भागी होता है, बृहस्पति के सिंह राशि पर स्थित होने पर गोदावरी में स्नान करनेवाला मानव जिस फल को प्राप्त करता है, बदरिकाश्रम की यात्रा के समय भगवान केदार के दर्शन से तथा बदरीतीर्थ के सेवन से जो पुण्य फल उपलब्ध होता है तथा सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में दक्षिणासहित यज्ञ करके हाथी, घोड़ा और सुवर्ण दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, 'अपरा

एकादशी' के सेवन से भी मनुष्य वैसे ही फल प्राप्त करता है । 'अपरा' को उपवास करके भगवान वामन की पूजा करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो श्रीविष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है । इसको पढ़ने और सुनने से सहस्र गौदान का फल मिलता है ।

14. निर्जला एकादशी

युधिष्ठिर ने कहा : जनार्दन ! ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी पड़ती हो, कृपया उसका वर्णन कीजिये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! इसका वर्णन परम धर्मात्मा सत्यवतीनन्दन व्यासजी करेंगे, क्योंकि ये सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्वज्ञ और वेद वेदांगों के पारंगत विद्वान हैं ।

तब वेदव्यासजी कहने लगे : दोनों ही पक्षों की एकादशियों के दिन भोजन न करे । द्वादशी के दिन स्नान आदि से पवित्र हो फूलों से भगवान केशव की पूजा करे । फिर नित्य कर्म समाप्त होने के पश्चात् पहले ब्राह्मणों को भोजन देकर अन्त में स्वयं भोजन करे । राजन् ! जननाशौच और मरणाशौच में भी एकादशी को भोजन नहीं करना चाहिए ।

यह सुनकर भीमसेन बोले : परम बुद्धिमान पितामह ! मेरी उत्तम बात सुनिये । राजा युधिष्ठिर, माता कुन्ती, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये एकादशी को कभी भोजन नहीं करते तथा मुझसे भी हमेशा यही कहते हैं कि : 'भीमसेन ! तुम भी एकादशी को न खाया करो...' किन्तु मैं उन लोगों से यही कहता हूँ कि मुझसे भूख नहीं सही जायेगी ।

भीमसेन की बात सुनकर व्यासजी ने कहा : यदि तुम्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति अभीष्ट है और नरक को दूषित समझते हो तो दोनों पक्षों की एकादशीयों के दिन भोजन न करना ।

भीमसेन बोले : महाबुद्धिमान पितामह ! मैं आपके सामने सच्ची बात कहता हूँ । एक बार भोजन करके भी मुझसे व्रत नहीं किया जा सकता, फिर उपवास करके तो मैं रह ही कैसे सकता हूँ? मेरे उदर में वृक नामक अग्नि सदा प्रज्वलित

रहती है, अत: जब मैं बहुत अधिक खाता हूँ, तभी यह शांत होती है । इसलिए महामुने ! मैं वर्षभर में केवल एक ही उपवास कर सकता हूँ । जिससे स्वर्ग की प्राप्ति सुलभ हो तथा जिसके करने से मैं कल्याण का भागी हो सकूँ, ऐसा कोई एक व्रत निश्चय करके बताइये । मैं उसका यथोचित रुप से पालन करुँगा ।

व्यासजी ने कहा : भीम ! ज्येष्ठ मास में सूर्य वृष राशि पर हो या मिथुन राशि पर, शुक्लपक्ष में जो एकादशी हो, उसका यत्नपूर्वक निर्जल व्रत करो । केवल कुल्ला या आचमन करने के लिए मुख में जल डाल सकते हो, उसको छोड़कर किसी प्रकार का जल विद्वान पुरुष मुख में न डाले, अन्यथा व्रत भंग हो जाता है । एकादशी को सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन के सूर्योदय तक मनुष्य जल का त्याग करे तो यह व्रत पूर्ण होता है । तदनन्तर द्वादशी को प्रभातकाल में स्नान करके ब्राह्मणों को विधिपूर्वक जल और सुवर्ण का दान करे । इस प्रकार सब कार्य पूरा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणों के साथ भोजन करे । वर्षभर में जितनी एकादशीयाँ होती हैं, उन सबका फल निर्जला एकादशी के सेवन से मनुष्य प्राप्त

कर लेता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान केशव ने मुझसे कहा था कि: ‘यदि मानव सबको छोड़कर एकमात्र मेरी शरण में आ जाय और एकादशी को निराहार रहे तो वह सब पापों से छूट जाता है ।’

एकादशी व्रत करनेवाले पुरुष के पास विशालकाय, विकराल आकृति और काले रंगवाले दण्ड पाशधारी भयंकर यमदूत नहीं जाते । अंतकाल में पीताम्बरधारी, सौम्य स्वभाववाले, हाथ में सुदर्शन धारण करनेवाले और मन के समान वेगशाली विष्णुदूत आखिर इस वैष्णव पुरुष को भगवान विष्णु के धाम में ले जाते हैं । अत: निर्जला एकादशी को पूर्ण यत्न करके उपवास और श्रीहरि का पूजन करो । स्त्री हो या पुरुष, यदि उसने मेरु पर्वत के बराबर भी महान पाप किया हो तो वह सब इस एकादशी व्रत के प्रभाव से भस्म हो जाता है । जो मनुष्य उस दिन जल के नियम का पालन करता है, वह पुण्य का भागी होता है । उसे एक एक प्रहर में कोटि कोटि स्वर्णमुद्रा दान करने का फल प्राप्त होता

सुना गया है । मनुष्य निर्जला एकादशी के दिन स्नान, दान, जप, होम आदि जो कुछ भी करता है, वह सब अक्षय होता है, यह भगवान श्रीकृष्ण का कथन है । निर्जला एकादशी को विधिपूर्वक उत्तम रीति से उपवास करके मानव वैष्णवपद को प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य एकादशी के दिन अन्न खाता है, वह पाप का भोजन करता है । इस लोक में वह चाण्डाल के समान है और मरने पर दुर्गति को प्राप्त होता है ।

जो ज्येष्ठ के शुक्लपक्ष में एकादशी को उपवास करके दान करेंगे, वे परम पद को प्राप्त होंगे । जिन्होंने एकादशी को उपवास किया है, वे ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा गुरुद्रोही होने पर भी सब पातकों से मुक्त हो जाते हैं ।

कुन्तीनन्दन ! 'निर्जला एकादशी' के दिन श्रद्धालु स्त्री पुरुषों के लिए जो विशेष दान और कर्त्तव्य विहित हैं, उन्हें सुनोः उस दिन जल में शयन करनेवाले भगवान विष्णु का पूजन और जलमयी धेनु का दान करना चाहिए अथवा प्रत्यक्ष

धेनु या घृतमयी धेनु का दान उचित है । पर्याप्त दक्षिणा और भाँति भाँति के मिष्ठान्नों द्वारा यत्नपूर्वक ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना चाहिए । ऐसा करने से ब्राह्मण अवश्य संतुष्ट होते हैं और उनके संतुष्ट होने पर श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं । जिन्होंने शम, दम, और दान में प्रवृत हो श्रीहरि की पूजा और रात्रि में जागरण करते हुए इस 'निर्जला एकादशी' का व्रत किया है, उन्होंने अपने साथ ही बीती हुई सौ पीढ़ियों को और आनेवाली सौ पीढ़ियों को भगवान वासुदेव के परम धाम में पहुँचा दिया है । निर्जला एकादशी के दिन अन्न, वस्त्र, गौ, जल, शैय्या, सुन्दर आसन, कमण्डलु तथा छाता दान करने चाहिए । जो श्रेष्ठ तथा सुपात्र ब्राह्मण को जूता दान करता है, वह सोने के विमान पर बैठकर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । जो इस एकादशी की महिमा को भक्तिपूर्वक सुनता अथवा उसका वर्णन करता है, वह स्वर्गलोक में जाता है । चतुर्दशीयुक्त अमावस्या को सूर्यग्रहण के समय श्राद्ध करके मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है, वही फल इसके श्रवण से भी प्राप्त होता है । पहले दन्तधावन करके यह नियम लेना चाहिए कि : 'मैं

भगवान केशव की प्रसन्न्ता के लिए एकादशी को निराहार रहकर आचमन के सिवा दूसरे जल का भी त्याग करूँगा ।' द्वादशी को देवेश्वर भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिए । गन्ध, धूप, पुष्प और सुन्दर वस्त्र से विधिपूर्वक पूजन करके जल के घड़े के दान का संकल्प करते हुए निम्नांकित मंत्र का उच्चारण करे :

देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक ।
उदकुम्भप्रदानेन नय मां परमां गतिम्॥

'संसारसागर से तारनेवाले हे देवदेव हृषीकेश ! इस जल के घड़े का दान करने से आप मुझे परम गति की प्राप्ति कराइये ।'

भीमसेन ! ज्येष्ठ मास में शुक्लपक्ष की जो शुभ एकादशी होती है, उसका निर्जल व्रत करना चाहिए । उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को शक्कर के साथ जल के

घड़े दान करने चाहिए । ऐसा करने से मनुष्य भगवान विष्णु के समीप पहुँचकर आनन्द का अनुभव करता है । तत्पश्चात् द्वादशी को ब्राह्मण भोजन कराने के बाद स्वयं भोजन करे । जो इस प्रकार पूर्ण रुप से पापनाशिनी एकादशी का व्रत करता है, वह सब पापों से मुक्त हो आनंदमय पद को प्राप्त होता है ।

यह सुनकर भीमसेन ने भी इस शुभ एकादशी का व्रत आरम्भ कर दिया । तबसे यह लोक मे 'पाण्डव द्वादशी' के नाम से विख्यात हुई ।

15. योगिनी एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : वासुदेव ! आषाढ़ के कृष्णपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? कृपया उसका वर्णन कीजिये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : नृपश्रेष्ठ ! आषाढ़ (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार ज्येष्ठ) के कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम 'योगिनी' है। यह बड़े बडे पातकों का नाश करनेवाली है। संसारसागर में डूबे हुए प्राणियों के लिए यह सनातन नौका के समान है ।

अलकापुरी के राजाधिराज कुबेर सदा भगवान शिव की भक्ति में तत्पर रहनेवाले हैं । उनका 'हेममाली' नामक एक यक्ष सेवक था, जो पूजा के लिए फूल लाया करता था । हेममाली की पत्नी का नाम 'विशालाक्षी' था । वह यक्ष कामपाश में आबद्ध होकर सदा अपनी पत्नी में आसक्त रहता था । एक दिन

हेममाली मानसरोवर से फूल लाकर अपने घर में ही ठहर गया और पत्नी के प्रेमपाश में खोया रह गया, अतः कुबेर के भवन में न जा सका । इधर कुबेर मन्दिर में बैठकर शिव का पूजन कर रहे थे । उन्होंने दोपहर तक फूल आने की प्रतीक्षा की । जब पूजा का समय व्यतीत हो गया तो यक्षराज ने कुपित होकर सेवकों से कहा : 'यक्षों ! दुरात्मा हेममाली क्यों नहीं आ रहा है ?'

यक्षों ने कहा: राजन् ! वह तो पत्नी की कामना में आसक्त हो घर में ही रमण कर रहा है । यह सुनकर कुबेर क्रोध से भर गये और तुरन्त ही हेममाली को बुलवाया । वह आकर कुबेर के सामने खड़ा हो गया । उसे देखकर कुबेर बोले : 'ओ पापी ! अरे दुष्ट ! ओ दुराचारी ! तूने भगवान की अवहेलना की है, अतः कोढ़ से युक्त और अपनी उस प्रियतमा से वियुक्त होकर इस स्थान से भ्रष्ट होकर अन्यत्र चला जा ।'

कुबेर के ऐसा कहने पर वह उस स्थान से नीचे गिर गया । कोढ़ से सारा शरीर पीड़ित था परन्तु शिव पूजा के प्रभाव से उसकी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं हुई । तदनन्तर वह पर्वतों में श्रेष्ठ मेरुगिरि के शिखर पर गया । वहाँ पर मुनिवर मार्कण्डेयजी का उसे दर्शन हुआ । पापकर्मा यक्ष ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया । मुनिवर मार्कण्डेय ने उसे भय से काँपते देख कहा : 'तुझे कोढ़ के रोग ने कैसे दबा लिया ?'

यक्ष बोला : मुने ! मैं कुबेर का अनुचर हेममाली हूँ । मैं प्रतिदिन मानसरोवर से फूल लाकर शिव पूजा के समय कुबेर को दिया करता था । एक दिन पत्नी सहवास के सुख में फँस जाने के कारण मुझे समय का ज्ञान ही नहीं रहा, अत: राजाधिराज कुबेर ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया, जिससे मैं कोढ़ से आक्रान्त होकर अपनी प्रियतमा से बिछुड़ गया । मुनिश्रेष्ठ ! संतों का चित्त स्वभावत: परोपकार में लगा रहता है, यह जानकर मुझ अपराधी को कर्त्तव्य का उपदेश दीजिये ।

मार्कण्डेयजी ने कहा: तुमने यहाँ सच्ची बात कही है, इसलिए मैं तुम्हें कल्याणप्रद व्रत का उपदेश करता हूँ । तुम आषाढ़ मास के कृष्णपक्ष की 'योगिनी एकादशी' का व्रत करो । इस व्रत के पुण्य से तुम्हारा कोढ़ निश्चय ही दूर हो जायेगा ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं: राजन् ! मार्कण्डेयजी के उपदेश से उसने 'योगिनी एकादशी' का व्रत किया, जिससे उसके शरीर को कोढ़ दूर हो गया । उस उत्तम व्रत का अनुष्ठान करने पर वह पूर्ण सुखी हो गया ।

नृपश्रेष्ठ ! यह 'योगिनी' का व्रत ऐसा पुण्यशाली है कि अठ्ठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल मिलता है, वही फल 'योगिनी एकादशी' का व्रत करनेवाले मनुष्य को मिलता है । 'योगिनी' महान पापों को शान्त करनेवाली और महान पुण्य फल देनेवाली है । इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

16. शयनी एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : भगवन् ! आषाढ़ के शुक्लपक्ष में कौन सी एकादशी होती है ? उसका नाम और विधि क्या है? यह बतलाने की कृपा करें ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम 'शयनी' है। मैं उसका वर्णन करता हूँ । वह महान पुण्यमयी, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, सब पापों को हरनेवाली तथा उत्तम व्रत है । आषाढ़ शुक्लपक्ष में 'शयनी एकादशी' के दिन जिन्होंने कमल पुष्प से कमललोचन भगवान विष्णु का पूजन तथा एकादशी का उत्तम व्रत किया है, उन्होंने तीनों लोकों और तीनों सनातन देवताओं का पूजन कर लिया । 'हरिशयनी एकादशी' के दिन मेरा एक स्वरुप राजा बलि के यहाँ रहता है और दूसरा क्षीरसागर में शेषनाग की शैय्या पर तब तक शयन करता है, जब तक आगामी कार्तिक की एकादशी नहीं आ जाती, अत: आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक

मनुष्य को भलीभाँति धर्म का आचरण करना चाहिए । जो मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है, इस कारण यत्नपूर्वक इस एकादशी का व्रत करना चाहिए । एकादशी की रात में जागरण करके शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान विष्णु की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए । ऐसा करनेवाले पुरुष के पुण्य की गणना करने में चतुर्मुख ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं ।

राजन् ! जो इस प्रकार भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सर्वपापहारी एकादशी के उत्तम व्रत का पालन करता है, वह जाति का चाण्डाल होने पर भी संसार में सदा मेरा प्रिय रहनेवाला है । जो मनुष्य दीपदान, पलाश के पत्ते पर भोजन और व्रत करते हुए चौमासा व्यतीत करते हैं, वे मेरे प्रिय हैं । चौमासे में भगवान विष्णु सोये रहते हैं, इसलिए मनुष्य को भूमि पर शयन करना चाहिए । सावन में साग, भादों में दही, क्वार में दूध और कार्तिक में दाल का त्याग कर देना चाहिए । जो चौमसे में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह परम गति को प्राप्त होता

है । राजन् ! एकादशी के व्रत से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, अत: सदा इसका व्रत करना चाहिए । कभी भूलना नहीं चाहिए । ‘शयनी’ और ‘बोधिनी’ के बीच में जो कृष्णपक्ष की एकादशीयाँ होती हैं, गृहस्थ के लिए वे ही व्रत रखने योग्य हैं – अन्य मासों की कृष्णपक्षीय एकादशी गृहस्थ के रखने योग्य नहीं होती । शुक्लपक्ष की सभी एकादशी करनी चाहिए ।

17. कामिका एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : गोविन्द ! वासुदेव ! आपको मेरा नमस्कार है ! श्रावण (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार आषाढ़) के कृष्णपक्ष में कौन सी एकादशी होती है ? कृपया उसका वर्णन कीजिये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! सुनो । मैं तुम्हें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसे पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने नारदजी के पूछने पर कहा था ।

नारदजी ने प्रशन किया : हे भगवन् ! हे कमलासन ! मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि श्रवण के कृष्णपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है? उसके देवता कौन हैं तथा उससे कौन सा पुण्य होता है? प्रभो ! यह सब बताइये ।

ब्रह्माजी ने कहा : नारद ! सुनो । मैं सम्पूर्ण लोकों के हित की इच्छा से तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ । श्रावण मास में जो कृष्णपक्ष की एकादशी होती है, उसका नाम 'कामिका' है । उसके स्मरणमात्र से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है । उस दिन श्रीधर, हरि, विष्णु, माधव और मधुसूदन आदि नामों से भगवान का पूजन करना चाहिए ।

भगवान श्रीकृष्ण के पूजन से जो फल मिलता है, वह गंगा, काशी, नैमिषारण्य तथा पुष्कर क्षेत्र में भी सुलभ नहीं है । सिंह राशि के बृहस्पति होने पर तथा व्यतीपात और दण्डयोग में गोदावरी स्नान से जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल भगवान श्रीकृष्ण के पूजन से भी मिलता है ।

जो समुद्र और वनसहित समूची पृथ्वी का दान करता है तथा जो 'कामिका एकादशी' का व्रत करता है, वे दोनों समान फल के भागी माने गये हैं ।

जो ब्यायी हुई गाय को अन्यान्य सामग्रियोंसहित दान करता है, उस मनुष्य को जिस फल की प्राप्ति होती है, वही ‘कामिका एकादशी’ का व्रत करनेवाले को मिलता है । जो नरश्रेष्ठ श्रावण मास में भगवान श्रीधर का पूजन करता है, उसके द्वारा गन्धर्वों और नागोंसहित सम्पूर्ण देवताओं की पूजा हो जाती है ।

अत: पापभीरु मनुष्यों को यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करके ‘कामिका एकादशी’ के दिन श्रीहरि का पूजन करना चाहिए । जो पापरुपी पंक से भरे हुए संसारसमुद्र में डूब रहे हैं, उनका उद्धार करने के लिए ‘कामिका एकादशी’ का व्रत सबसे उत्तम है । अध्यात्म विधापरायण पुरुषों को जिस फल की प्राप्ति होती है, उससे बहुत अधिक फल ‘कामिका एकादशी’ व्रत का सेवन करनेवालों को मिलता है ।
‘कामिका एकादशी’ का व्रत करनेवाला मनुष्य रात्रि में जागरण करके न तो कभी भयंकर यमदूत का दर्शन करता है और न कभी दुर्गति में ही पड़ता है ।

लालमणि, मोती, वैदूर्य और मूँगे आदि से पूजित होकर भी भगवान विष्णु वैसे संतुष्ट नहीं होते, जैसे तुलसीदल से पूजित होने पर होते हैं । जिसने तुलसी की मंजरियों से श्रीकेशव का पूजन कर लिया है, उसके जन्मभर का पाप निश्चय ही नष्ट हो जाता है ।

या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुष्पावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी ।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवत: कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नम: ।।

'जो दर्शन करने पर सारे पापसमुदाय का नाश कर देती है, स्पर्श करने पर शरीर को पवित्र बनाती है, प्रणाम करने पर रोगों का निवारण करती है, जल से सींचने पर यमराज को भी भय पहुँचाती है, आरोपित करने पर भगवान श्रीकृष्ण के

समीप ले जाती है और भगवान के चरणों मे चढ़ाने पर मोक्षरुपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवी को नमस्कार है ।'

जो मनुष्य एकादशी को दिन रात दीपदान करता है, उसके पुण्य की संख्या चित्रगुप्त भी नहीं जानते । एकादशी के दिन भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख जिसका दीपक जलता है, उसके पितर स्वर्गलोक में स्थित होकर अमृतपान से तृप्त होते हैं । घी या तिल के तेल से भगवान के सामने दीपक जलाकर मनुष्य देह त्याग के पश्चात् करोड़ो दीपकों से पूजित हो स्वर्गलोक में जाता है ।'

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : युधिष्ठिर ! यह तुम्हारे सामने मैंने 'कामिका एकादशी' की महिमा का वर्णन किया है । 'कामिका' सब पातकों को हरनेवाली है, अत: मानवों को इसका व्रत अवश्य करना चाहिए । यह स्वर्गलोक तथा महान पुण्यफल प्रदान करनेवाली है । जो मनुष्य श्रद्धा के साथ इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह सब पापों से मुक्त हो श्रीविष्णुलोक में जाता है ।

18. पुत्रदा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : मधुसूदन ! श्रावण के शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ? कृपया मेरे सामने उसका वर्णन कीजिये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! प्राचीन काल की बात है । द्वापर युग के प्रारम्भ का समय था । माहिष्मतीपुर में राजा महीजित अपने राज्य का पालन करते थे किन्तु उन्हें कोई पुत्र नहीं था, इसलिए वह राज्य उन्हें सुखदायक नहीं प्रतीत होता था । अपनी अवस्था अधिक देख राजा को बड़ी चिन्ता हुई । उन्होंने प्रजावर्ग में बैठकर इस प्रकार कहा: 'प्रजाजनो ! इस जन्म में मुझसे कोई पातक नहीं हुआ है । मैंने अपने खजाने में अन्याय से कमाया हुआ धन नहीं जमा किया है । ब्राह्मणों और देवताओं का धन भी मैंने कभी नहीं लिया है । पुत्रवत् प्रजा का पालन किया है । धर्म से पृथ्वी पर अधिकार जमाया है । दुष्टों को, चाहे वे बन्धु और पुत्रों के समान ही क्यों न रहे हों, दण्ड दिया है । शिष्ट पुरुषों का

सदा सम्मान किया है और किसीको द्वेष का पात्र नहीं समझा है । फिर क्या कारण है, जो मेरे घर में आज तक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ? आप लोग इसका विचार करें ।'

राजा के ये वचन सुनकर प्रजा और पुरोहितों के साथ ब्राह्मणों ने उनके हित का विचार करके गहन वन में प्रवेश किया । राजा का कल्याण चाहनेवाले वे सभी लोग इधर उधर घूमकर ऋषिसेवित आश्रमों की तलाश करने लगे । इतने में उन्हें मुनिश्रेष्ठ लोमशजी के दर्शन हुए ।

लोमशजी धर्म के तत्त्वज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रों के विशिष्ट विद्वान, दीर्घायु और महात्मा हैं । उनका शरीर लोम से भरा हुआ है । वे ब्रह्माजी के समान तेजस्वी हैं । एक एक कल्प बीतने पर उनके शरीर का एक एक लोम विशीर्ण होता है, टूटकर गिरता है, इसीलिए उनका नाम लोमश हुआ है । वे महामुनि तीनों कालों की बातें जानते हैं ।

उन्हें देखकर सब लोगों को बड़ा हर्ष हुआ । लोगों को अपने निकट आया देख लोमशजी ने पूछा : ‘तुम सब लोग किसलिए यहाँ आये हो? अपने आगमन का कारण बताओ । तुम लोगों के लिए जो हितकर कार्य होगा, उसे मैं अवश्य करूँगा ।’

प्रजाजनों ने कहा : ब्रह्मन् ! इस समय महीजित नामवाले जो राजा हैं, उन्हें कोई पुत्र नहीं है । हम लोग उन्हींकी प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्र की भाँति पालन किया है । उन्हें पुत्रहीन देख, उनके दु:ख से दु:खित हो हम तपस्या करने का दृढ़ निश्चय करके यहाँ आये है । द्विजोत्तम ! राजा के भाग्य से इस समय हमें आपका दर्शन मिल गया है । महापुरुषों के दर्शन से ही मनुष्यों के सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं । मुने ! अब हमें उस उपाय का उपदेश कीजिये, जिससे राजा को पुत्र की प्राप्ति हो ।

उनकी बात सुनकर महर्षि लोमश दो घड़ी के लिए ध्यानमग्न हो गये । तत्पश्चात् राजा के प्राचीन जन्म का वृत्तान्त जानकर उन्होंने कहा : 'प्रजावृन्द ! सुनो । राजा महीजित पूर्वजन्म में मनुष्यों को चूसनेवाला धनहीन वैश्य था । वह वैश्य गाँव–गाँव घूमकर व्यापार किया करता था । एक दिन ज्येष्ठ के शुक्लपक्ष में दशमी तिथि को, जब दोपहर का सूर्य तप रहा था, वह किसी गाँव की सीमा में एक जलाशय पर पहुँचा । पानी से भरी हुई बावली देखकर वैश्य ने वहाँ जल पीने का विचार किया । इतने में वहाँ अपने बछड़े के साथ एक गौ भी आ पहुँची । वह प्यास से व्याकुल और ताप से पीड़ित थी, अतः बावली में जाकर जल पीने लगी । वैश्य ने पानी पीती हुई गाय को हाँककर दूर हटा दिया और स्वयं पानी पीने लगा । उसी पापकर्म के कारण राजा इस समय पुत्रहीन हुए हैं । किसी जन्म के पुण्य से इन्हें निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति हुई है ।'

प्रजाजनों ने कहा : मुने ! पुराणों में उल्लेख है कि प्रायश्चितरुप पुण्य से पाप नष्ट होते हैं, अत: ऐसे पुण्यकर्म का उपदेश कीजिये, जिससे उस पाप का नाश हो जाय ।

लोमशजी बोले : प्रजाजनो ! श्रावण मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, वह 'पुत्रदा' के नाम से विख्यात है । वह मनोवांछित फल प्रदान करनेवाली है । तुम लोग उसीका व्रत करो ।

यह सुनकर प्रजाजनों ने मुनि को नमस्कार किया और नगर में आकर विधिपूर्वक 'पुत्रदा एकादशी' के व्रत का अनुष्ठान किया । उन्होंने विधिपूर्वक जागरण भी किया और उसका निर्मल पुण्य राजा को अर्पण कर दिया । तत्पश्चात् रानी ने गर्भधारण किया और प्रसव का समय आने पर बलवान पुत्र को जन्म दिया ।

इसका माहात्म्य सुनकर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है तथा इहलोक में सुख पाकर परलोक में स्वर्गीय गति को प्राप्त होता है ।

19. अजा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : जनार्दन ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार श्रावण) मास के कृष्णपक्ष में कौन सी एकादशी होती है ? कृपया बताइये ।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! एकचित्त होकर सुनो । भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम 'अजा' है । वह सब पापों का नाश करनेवाली बतायी गयी है । भगवान हृषीकेश का पूजन करके जो इसका व्रत करता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ।

पूर्वकाल में हरिश्चन्द्र नामक एक विख्यात चक्रवर्ती राजा हो गये हैं, जो समस्त भूमण्डल के स्वामी और सत्यप्रतिज्ञ थे । एक समय किसी कर्म का फलभोग प्राप्त होने पर उन्हें राज्य से भ्रष्ट होना पड़ा । राजा ने अपनी पत्नी और

पुत्र को बेच दिया । फिर अपने को भी बेच दिया । पुण्यात्मा होते हुए भी उन्हें चाण्डाल की दासता करनी पड़ी । वे मुर्दों का कफन लिया करते थे । इतने पर भी नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र सत्य से विचलित नहीं हुए ।

इस प्रकार चाण्डाल की दासता करते हुए उनके अनेक वर्ष व्यतीत हो गये । इससे राजा को बड़ी चिन्ता हुई । वे अत्यन्त दु:खी होकर सोचने लगे: 'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ? कैसे मेरा उद्धार होगा?' इस प्रकार चिन्ता करते करते वे शोक के समुद्र में डूब गये ।

राजा को शोकातुर जानकर महर्षि गौतम उनके पास आये । श्रेष्ठ ब्राह्मण को अपने पास आया हुआ देखकर नृपश्रेष्ठ ने उनके चरणों में प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़ गौतम के सामने खड़े होकर अपना सारा दु:खमय समाचार कह सुनाया ।

राजा की बात सुनकर महर्षि गौतम ने कहा :‘राजन् ! भादों के कृष्णपक्ष में अत्यन्त कल्याणमयी ‘अजा’ नाम की एकादशी आ रही है, जो पुण्य प्रदान करनेवाली है । इसका व्रत करो । इससे पाप का अन्त होगा । तुम्हारे भाग्य से आज के सातवें दिन एकादशी है । उस दिन उपवास करके रात में जागरण करना ।’ ऐसा कहकर महर्षि गौतम अन्तर्धान हो गये ।

मुनि की बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने उस उत्तम व्रत का अनुष्ठान किया । उस व्रत के प्रभाव से राजा सारे दु:खों से पार हो गये । उन्हें पत्नी पुन: प्राप्त हुई और पुत्र का जीवन मिल गया । आकाश में दुन्दुभियाँ बज उठीं । देवलोक से फूलों की वर्षा होने लगी ।

एकादशी के प्रभाव से राजा ने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया और अन्त में वे पुरजन तथा परिजनों के साथ स्वर्गलोक को प्राप्त हो गये ।

राजा युधिष्ठिर ! जो मनुष्य ऐसा व्रत करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो स्वर्गलोक में जाते हैं । इसके पढ़ने और सुनने से अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है ।

20. पधा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : केशव ! कृपया यह बताइये कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है, उसके देवता कौन हैं और कैसी विधि है?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! इस विषय में मैं तुम्हें आश्चर्यजनक कथा सुनाता हूँ, जिसे ब्रह्माजी ने महात्मा नारद से कहा था ।

नारदजी ने पूछा : चतुर्मुख ! आपको नमस्कार है ! मैं भगवान विष्णु की आराधना के लिए आपके मुख से यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में कौन सी एकादशी होती है?

ब्रह्माजी ने कहा : मुनिश्रेष्ठ ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है । क्यों न हो, वैष्णव जो ठहरे ! भादों के शुक्लपक्ष की एकादशी 'पधा' के नाम से विख्यात है । उस दिन भगवान ह्रषीकेश की पूजा होती है । यह उत्तम व्रत अवश्य करने योग्य है । सूर्यवंश में मान्धाता नामक एक चक्रवर्ती, सत्यप्रतिज्ञ और प्रतापी राजर्षि हो गये हैं । वे अपने औरस पुत्रों की भाँति धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया करते थे । उनके राज्य में अकाल नहीं पड़ता था, मानसिक चिन्ताएँ नहीं सताती थीं और व्याधियों का प्रकोप भी नहीं होता था । उनकी प्रजा निर्भय तथा धन धान्य से समृद्ध थी । महाराज के कोष में केवल न्यायोपार्जित धन का ही संग्रह था । उनके राज्य में समस्त वर्णों और आश्रमों के लोग अपने अपने धर्म में लगे रहते थे । मान्धाता के राज्य की भूमि कामधेनु के समान फल देनेवाली थी । उनके राज्यकाल में प्रजा को बहुत सुख प्राप्त होता था ।

एक समय किसी कर्म का फलभोग प्राप्त होने पर राजा के राज्य में तीन वर्षों तक वर्षा नहीं हुई । इससे उनकी प्रजा भूख से पीड़ित हो नष्ट होने लगी । तब सम्पूर्ण प्रजा ने महाराज के पास आकर इस प्रकार कहा :

प्रजा बोली: नृपश्रेष्ठ ! आपको प्रजा की बात सुननी चाहिए । पुराणों में मनीषी पुरुषों ने जल को 'नार' कहा है । वह 'नार' ही भगवान का 'अयन' (निवास स्थान) है, इसलिए वे 'नारायण' कहलाते हैं । नारायणस्वरुप भगवान विष्णु सर्वत्र व्यापकरुप में विराजमान हैं । वे ही मेघस्वरुप होकर वर्षा करते हैं, वर्षा से अन्न पैदा होता है और अन्न से प्रजा जीवन धारण करती है । नृपश्रेष्ठ ! इस समय अन्न के बिना प्रजा का नाश हो रहा है, अतः ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे हमारे योगक्षेम का निर्वाह हो ।

राजा ने कहा : आप लोगों का कथन सत्य है, क्योंकि अन्न को ब्रह्म कहा गया है । अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही जगत जीवन धारण करता

है । लोक में बहुधा ऐसा सुना जाता है तथा पुराण में भी बहुत विस्तार के साथ ऐसा वर्णन है कि राजाओं के अत्याचार से प्रजा को पीड़ा होती है, किन्तु जब मैं बुद्धि से विचार करता हूँ तो मुझे अपना किया हुआ कोई अपराध नहीं दिखायी देता । फिर भी मैं प्रजा का हित करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करूँगा ।

ऐसा निश्चय करके राजा मान्धाता इने गिने व्यक्तियों को साथ ले, विधाता को प्रणाम करके सघन वन की ओर चल दिये । वहाँ जाकर मुख्य मुख्य मुनियों और तपस्वियों के आश्रमों पर घूमते फिरे । एक दिन उन्हें ब्रह्मपुत्र अंगिरा ऋषि के दर्शन हुए । उन पर दृष्टि पड़ते ही राजा हर्ष में भरकर अपने वाहन से उतर पड़े और इन्द्रियों को वश में रखते हुए दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने मुनि के चरणों में प्रणाम किया । मुनि ने भी 'स्वस्ति' कहकर राजा का अभिनन्दन किया और उनके राज्य के सातों अंगों की कुशलता पूछी । राजा ने अपनी कुशलता बताकर मुनि के स्वास्थय का समाचार पूछा । मुनि ने राजा को आसन और अर्ध्य दिया

। उन्हें ग्रहण करके जब वे मुनि के समीप बैठे तो मुनि ने राजा से आगमन का कारण पूछा ।

राजा ने कहा : भगवन् ! मैं धर्मानुकूल प्रणाली से पृथ्वी का पालन कर रहा था । फिर भी मेरे राज्य में वर्षा का अभाव हो गया । इसका क्या कारण है इस बात को मैं नहीं जानता ।

ऋषि बोले : राजन् ! सब युगों में उत्तम यह सत्ययुग है । इसमें सब लोग परमात्मा के चिन्तन में लगे रहते हैं तथा इस समय धर्म अपने चारों चरणों से युक्त होता है । इस युग में केवल ब्राह्मण ही तपस्वी होते हैं, दूसरे लोग नहीं । किन्तु महाराज ! तुम्हारे राज्य में एक शूद्र तपस्या करता है, इसी कारण मेघ पानी नहीं बरसाते । तुम इसके प्रतिकार का यत्न करो, जिससे यह अनावृष्टि का दोष शांत हो जाय ।

राजा ने कहा : मुनिवर ! एक तो वह तपस्या में लगा है और दूसरे, वह निरपराध है । अत: मैं उसका अनिष्ट नहीं करूँगा । आप उक्त दोष को शांत करनेवाले किसी धर्म का उपदेश कीजिये ।

ऋषि बोले : राजन् ! यदि ऐसी बात है तो एकादशी का व्रत करो । भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में जो 'पधा' नाम से विख्यात एकादशी होती है, उसके व्रत के प्रभाव से निश्चय ही उत्तम वृष्टि होगी । नरेश ! तुम अपनी प्रजा और परिजनों के साथ इसका व्रत करो ।

ऋषि के ये वचन सुनकर राजा अपने घर लौट आये । उन्होंने चारों वर्णों की समस्त प्रजा के साथ भादों के शुक्लपक्ष की 'पधा एकादशी' का व्रत किया । इस प्रकार व्रत करने पर मेघ पानी बरसाने लगे । पृथ्वी जल से आप्लावित हो गयी और हरी भरी खेती से सुशोभित होने लगी । उस व्रत के प्रभाव से सब लोग सुखी हो गये ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! इस कारण इस उत्तम व्रत का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए । 'पधा एकादशी' के दिन जल से भरे हुए घड़े को वस्त्र से ढकँकर दही और चावल के साथ ब्राह्मण को दान देना चाहिए, साथ ही छाता और जूता भी देना चाहिए । दान करते समय निम्नांकित मंत्र का उच्चारण करना चाहिए :

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव लोकानां सुखदायकः ॥

'बुधवार और श्रवण नक्षत्र के योग से युक्त द्वादशी के दिन बुद्धश्रवण नाम धारण करनेवाले भगवान गोविन्द ! आपको नमस्कार है... नमस्कार है ! मेरी पापराशि

का नाश करके आप मुझे सब प्रकार के सुख प्रदान करें । आप पुण्यात्माजनों को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा सुखदायक हैं ।'

राजन् ! इसके पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

21. इन्दिरा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : हे मधुसूदन ! कृपा करके मुझे यह बताइये कि आश्विन के कृष्णपक्ष में कौन सी एकादशी होती है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आश्विन (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार भाद्रपद) के कृष्णपक्ष में 'इन्दिरा' नाम की एकादशी होती है । उसके व्रत के प्रभाव से बड़े बड़े पापों का नाश हो जाता है । नीच योनि में पड़े हुए पितरों को भी यह एकादशी सदगति देनेवाली है ।

राजन् ! पूर्वकाल की बात है । सत्ययुग में इन्द्रसेन नाम से विख्यात एक राजकुमार थे जो माहिष्मतीपुरी के राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते थे । उनका यश सब ओर फैल चुका था ।

राजा इन्द्रसेन भगवान विष्णु की भक्ति में तत्पर हो गोविन्द के मोक्षदायक नामों का जप करते हुए समय व्यतीत करते थे और विधिपूर्वक अध्यात्मतत्त्व के चिन्तन में संलग्न रहते थे । एक दिन राजा राजसभा में सुखपूर्वक बैठे हुए थे इतने में ही देवर्षि नारद आकाश से उतरकर वहाँ आ पहुँचे । उन्हें आया हुआ देख राजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें आसन पर बिठाया । इसके बाद वे इस प्रकार बोले: 'मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से मेरी सर्वथा कुशल है । आज आपके दर्शन से मेरी सम्पूर्ण यज्ञ क्रियाएँ सफल हो गयीं । देवर्षे ! अपने आगमन का कारण बताकर मुझ पर कृपा करें ।

नारदजी ने कहा : नृपश्रेष्ठ ! सुनो । मेरी बात तुम्हें आश्चर्य में डालनेवाली है । मैं ब्रह्मलोक से यमलोक में गया था । वहाँ एक श्रेष्ठ आसन पर बैठा और यमराज ने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की । उस समय यमराज की सभा में मैंने तुम्हारे पिता को भी देखा था । वे व्रतभंग के दोष से वहाँ आये थे । राजन् ! उन्होंने तुमसे कहने के लिए एक सन्देश दिया है उसे सुनो । उन्होंने कहा है:

‘बेटा ! मुझे ‘इन्दिरा एकादशी’ के व्रत का पुण्य देकर स्वर्ग में भेजो ।’ उनका यह सन्देश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ । राजन् ! अपने पिता को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराने के लिए ‘इन्दिरा एकादशी’ का व्रत करो ।

राजा ने पूछा : भगवन् ! कृपा करके ‘इन्दिरा एकादशी’ का व्रत बताइये । किस पक्ष में, किस तिथि को और किस विधि से यह व्रत करना चाहिए ।

नारदजी ने कहा : राजेन्द्र ! सुनो । मैं तुम्हें इस व्रत की शुभकारक विधि बतलाता हूँ । आश्विन मास के कृष्णपक्ष में दशमी के उत्तम दिन को श्रद्धायुक्त चित्त से प्रतःकाल स्नान करो । फिर मध्याह्नकाल में स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक समय भोजन करो तथा रात्रि में भूमि पर सोओ । रात्रि के अन्त में निर्मल प्रभात होने पर एकादशी के दिन दातुन करके मुँह धोओ । इसके बाद भक्तिभाव से निम्नांकित मंत्र पढ़ते हुए उपवास का नियम ग्रहण करो :

अघ स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः ।
श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

'कमलनयन भगवान नारायण ! आज मैं सब भोगों से अलग हो निराहार रहकर कल भोजन करुँगा । अच्युत ! आप मुझे शरण दें |'

इस प्रकार नियम करके मध्याह्नकाल में पितरों की प्रसन्नता के लिए शालग्राम शिला के सम्मुख विधिपूर्वक श्राद्ध करो तथा दक्षिणा से ब्राह्मणों का सत्कार करके उन्हें भोजन कराओ । पितरों को दिये हुए अन्नमय पिण्ड को सूँघकर गाय को खिला दो । फिर धूप और गन्ध आदि से भगवान ह्रषिकेश का पूजन करके रात्रि में उनके समीप जागरण करो । तत्पश्चात् सवेरा होने पर द्वादशी के दिन पुनः भक्तिपूर्वक श्रीहरि की पूजा करो । उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराकर भाई बन्धु, नाती और पुत्र आदि के साथ स्वयं मौन होकर भोजन करो ।

राजन् ! इस विधि से आलस्यरहित होकर यह व्रत करो । इससे तुम्हारे पितर भगवान विष्णु के वैकुण्ठधाम में चले जायेंगे ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! राजा इन्द्रसेन से ऐसा कहकर देवर्षि नारद अन्तर्धान हो गये । राजा ने उनकी बतायी हुई विधि से अन्त: पुर की रानियों, पुत्रों और भृत्योंसहित उस उत्तम व्रत का अनुष्ठान किया ।

कुन्तीनन्दन ! व्रत पूर्ण होने पर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी । इन्द्रसेन के पिता गरुड़ पर आरुढ़ होकर श्रीविष्णुधाम को चले गये और राजर्षि इन्द्रसेन भी निष्कण्टक राज्य का उपभोग करके अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाकर स्वयं स्वर्गलोक को चले गये । इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने 'इन्दिरा एकादशी' व्रत के माहात्म्य का वर्णन किया है । इसको पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।

22. पापांकुशा एकादशी

□

युधिष्ठिर ने पूछा : हे मधुसूदन ! अब आप कृपा करके यह बताइये कि आश्विन के शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है और उसका माहात्म्य क्या है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आश्विन के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, वह 'पापांकुशा' के नाम से विख्यात है । वह सब पापों को हरनेवाली, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, शरीर को निरोग बनानेवाली तथा सुन्दर स्त्री, धन तथा मित्र देनेवाली है । यदि अन्य कार्य के प्रसंग से भी मनुष्य इस एकमात्र एकादशी को उपास कर ले तो उसे कभी यम यातना नहीं प्राप्त होती ।

राजन् ! एकादशी के दिन उपवास और रात्रि में जागरण करनेवाले मनुष्य अनायास ही दिव्यरुपधारी, चतुर्भुज, गरुड़ की ध्वजा से युक्त, हार से सुशोभित और पीताम्बरधारी होकर भगवान विष्णु के धाम को जाते हैं । राजेन्द्र ! ऐसे पुरुष

मातृपक्ष की दस, पितृपक्ष की दस तथा पत्नी के पक्ष की भी दस पीढ़ियों का उद्धार कर देते हैं । उस दिन सम्पूर्ण मनोरथ की प्राप्ति के लिए मुझ वासुदेव का पूजन करना चाहिए । जितेन्द्रिय मुनि चिरकाल तक कठोर तपस्या करके जिस फल को प्राप्त करता है, वह फल उस दिन भगवान गरुड़ध्वज को प्रणाम करने से ही मिल जाता है ।

जो पुरुष सुवर्ण, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, जूते और छाते का दान करता है, वह कभी यमराज को नहीं देखता । नृपश्रेष्ठ ! दरिद्र पुरुष को भी चाहिए कि वह स्नान, जप ध्यान आदि करने के बाद यथाशक्ति होम, यज्ञ तथा दान वगैरह करके अपने प्रत्येक दिन को सफल बनाये ।

जो होम, स्नान, जप, ध्यान और यज्ञ आदि पुण्यकर्म करनेवाले हैं, उन्हें भयंकर यम यातना नहीं देखनी पड़ती । लोक में जो मानव दीर्घायु, धनाढय, कुलीन और निरोग देखे जाते हैं, वे पहले के पुण्यात्मा हैं । पुण्यकर्त्ता पुरुष ऐसे

ही देखे जाते हैं । इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ, मनुष्य पाप से दुर्गति में पड़ते हैं और धर्म से स्वर्ग में जाते हैं ।

राजन् ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, उसके अनुसार 'पापांकुशा एकादशी' का माहात्म्य मैंने वर्णन किया । अब और क्या सुनना चाहते हो?

23. रमा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : जनार्दन ! मुझ पर आपका स्नेह है, अत: कृपा करके बताइये कि कार्तिक के कृष्णपक्ष में कौन सी एकादशी होती है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! कार्तिक (गुजरात महाराष्ट्र के अनुसार आश्विन) के कृष्णपक्ष में 'रमा' नाम की विख्यात और परम कल्याणमयी एकादशी होती है । यह परम उत्तम है और बड़े बड़े पापों को हरनेवाली है ।

पूर्वकाल में मुचुकुन्द नाम से विख्यात एक राजा हो चुके हैं, जो भगवान श्रीविष्णु के भक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे । अपने राज्य पर निष्कण्टक शासन करनेवाले उन राजा के यहाँ नदियों में श्रेष्ठ 'चन्द्रभागा' कन्या के रुप में उत्पन्न हुई । राजा ने चन्द्रसेनकुमार शोभन के साथ उसका विवाह कर दिया । एक बार शोभन दशमी के दिन अपने ससुर के घर आये और उसी दिन समूचे नगर में

पूर्ववत् ढिंढ़ोरा पिटवाया गया कि: 'एकादशी के दिन कोई भी भोजन न करे ।' इसे सुनकर शोभन ने अपनी प्यारी पत्नी चन्द्रभागा से कहा : 'प्रिये ! अब मुझे इस समय क्या करना चाहिए, इसकी शिक्षा दो ।'

चन्द्रभागा बोली : प्रभो ! मेरे पिता के घर पर एकादशी के दिन मनुष्य तो क्या कोई पालतू पशु आदि भी भोजन नहीं कर सकते । प्राणनाथ ! यदि आप भोजन करेंगे तो आपकी बड़ी निन्दा होगी । इस प्रकार मन में विचार करके अपने चित्त को दृढ़ कीजिये ।

शोभन ने कहा : प्रिये ! तुम्हारा कहना सत्य है । मैं भी उपवास करूँगा । दैव का जैसा विधान है, वैसा ही होगा ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके शोभन ने व्रत के नियम का पालन किया किन्तु सूर्योदय होते होते उनका प्राणान्त हो गया ।

राजा मुचुकुन्द ने शोभन का राजोचित दाह संस्कार कराया । चन्द्रभागा भी पति का पारलौकिक कर्म करके पिता के ही घर पर रहने लगी ।

नृपश्रेष्ठ ! उधर शोभन इस व्रत के प्रभाव से मन्दराचल के शिखर पर बसे हुए परम रमणीय देवपुर को प्राप्त हुए । वहाँ शोभन द्वितीय कुबेर की भाँति शोभा पाने लगे । एक बार राजा मुचुकुन्द के नगरवासी विख्यात ब्राह्मण सोमशर्मा तीर्थयात्रा के प्रसंग से घूमते हुए मन्दराचल पर्वत पर गये, जहाँ उन्हें शोभन दिखायी दिये । राजा के दामाद को पहचानकर वे उनके समीप गये । शोभन भी उस समय द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा को आया हुआ देखकर शीघ्र ही आसन से उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम किया । फिर क्रमश : अपने ससुर राजा मुचुकुन्द, प्रिय पत्नी चन्द्रभागा तथा समस्त नगर का कुशलक्षेम पूछा ।

सोमशर्मा ने कहा : राजन् ! वहाँ सब कुशल हैं । आश्चर्य है ! ऐसा सुन्दर और विचित्र नगर तो कहीं किसीने भी नहीं देखा होगा । बताओ तो सही, आपको इस नगर की प्राप्ति कैसे हुई?

शोभन बोले : द्विजेन्द्र ! कार्तिक के कृष्णपक्ष में जो 'रमा' नाम की एकादशी होती है, उसीका व्रत करने से मुझे ऐसे नगर की प्राप्ति हुई है । ब्रह्मन् ! मैंने श्रद्धाहीन होकर इस उत्तम व्रत का अनुष्ठान किया था, इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि यह नगर स्थायी नहीं है । आप मुचुकुन्द की सुन्दरी कन्या चन्द्रभागा से यह सारा वृत्तान्त कहियेगा ।

शोभन की बात सुनकर ब्राह्मण मुचुकुन्दपुर में गये और वहाँ चन्द्रभागा के सामने उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

सोमशर्मा बोले : शुभे ! मैंने तुम्हारे पति को प्रत्यक्ष देखा । इन्द्रपुरी के समान उनके दुर्द्धर्ष नगर का भी अवलोकन किया, किन्तु वह नगर अस्थिर है । तुम उसको स्थिर बनाओ ।

चन्द्रभागा ने कहा : ब्रह्मर्षे ! मेरे मन में पति के दर्शन की लालसा लगी हुई है । आप मुझे वहाँ ले चलिये । मैं अपने व्रत के पुण्य से उस नगर को स्थिर बनाऊँगी ।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! चन्द्रभागा की बात सुनकर सोमशर्मा उसे साथ ले मन्दराचल पर्वत के निकट वामदेव मुनि के आश्रम पर गये । वहाँ ऋषि के मंत्र की शक्ति तथा एकादशी सेवन के प्रभाव से चन्द्रभागा का शरीर दिव्य हो गया तथा उसने दिव्य गति प्राप्त कर ली । इसके बाद वह पति के समीप गयी । अपनी प्रिय पत्नी को आया हुआ देखकर शोभन को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने उसे बुलाकर अपने वाम भाग में सिंहासन पर बैठाया । तदनन्तर

चन्द्रभागा ने अपने प्रियतम से यह प्रिय वचन कहा: 'नाथ ! मैं हित की बात कहती हूँ, सुनिये । जब मैं आठ वर्ष से अधिक उम्र की हो गयी, तबसे लेकर आज तक मेरे द्वारा किये हुए एकादशी व्रत से जो पुण्य संचित हुआ है, उसके प्रभाव से यह नगर कल्प के अन्त तक स्थिर रहेगा तथा सब प्रकार के मनोवांछित वैभव से समृद्धिशाली रहेगा ।'

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार 'रमा' व्रत के प्रभाव से चन्द्रभागा दिव्य भोग, दिव्य रुप और दिव्य आभरणों से विभूषित हो अपने पति के साथ मन्दराचल के शिखर पर विहार करती है । राजन् ! मैंने तुम्हारे समक्ष 'रमा' नामक एकादशी का वर्णन किया है । यह चिन्तामणि तथा कामधेनु के समान सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली है ।

24. प्रबोधिनी एकादशी

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : हे अर्जुन ! मैं तुम्हें मुक्ति देनेवाली कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की 'प्रबोधिनी एकादशी' के सम्बन्ध में नारद और ब्रह्माजी के बीच हुए वार्तालाप को सुनाता हूँ । एक बार नारादजी ने ब्रह्माजी से पूछा : 'हे पिता ! 'प्रबोधिनी एकादशी' के व्रत का क्या फल होता है, आप कृपा करके मुझे यह सब विस्तारपूर्वक बतायें ।'

ब्रह्माजी बोले : हे पुत्र ! जिस वस्तु का त्रिलोक में मिलना दुष्कर है, वह वस्तु भी कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की 'प्रबोधिनी एकादशी' के व्रत से मिल जाती है । इस व्रत के प्रभाव से पूर्व जन्म के किये हुए अनेक बुरे कर्म क्षणभर में नष्ट हो जाते है । हे पुत्र ! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस दिन थोड़ा भी पुण्य करते हैं, उनका वह पुण्य पर्वत के समान अटल हो जाता है । उनके पितृ विष्णुलोक में जाते हैं

। ब्रह्महत्या आदि महान पाप भी 'प्रबोधिनी एकादशी' के दिन रात्रि को जागरण करने से नष्ट हो जाते हैं ।

हे नारद ! मनुष्य को भगवान की प्रसन्नता के लिए कार्तिक मास की इस एकादशी का व्रत अवश्य करना चाहिए । जो मनुष्य इस एकादशी व्रत को करता है, वह धनवान, योगी, तपस्वी तथा इन्द्रियों को जीतनेवाला होता है, क्योंकि एकादशी भगवान विष्णु को अत्यंत प्रिय है ।

इस एकादशी के दिन जो मनुष्य भगवान की प्राप्ति के लिए दान, तप, होम, यज्ञ (भगवान्नामजप भी परम यज्ञ है। **'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'** । यज्ञों में जपयज्ञ मेरा ही स्वरुप है।' – श्रीमद्भगवदगीता) आदि करते हैं, उन्हें अक्षय पुण्य मिलता है ।

इसलिए हे नारद ! तुमको भी विधिपूर्वक विष्णु भगवान की पूजा करनी चाहिए । इस एकादशी के दिन मनुष्य को ब्रह्ममुहूर्त में उठकर व्रत का संकल्प लेना चाहिए और पूजा करनी चाहिए । रात्रि को भगवान के समीप गीत, नृत्य, कथा कीर्तन करते हुए रात्रि व्यतीत करनी चाहिए ।

'प्रबोधिनी एकादशी' के दिन पुष्प, अगर, धूप आदि से भगवान की आराधना करनी चाहिए, भगवान को अर्घ्य देना चाहिए । इसका फल तीर्थ और दान आदि से करोड़ गुना अधिक होता है ।

जो गुलाब के पुष्प से, बकुल और अशोक के फूलों से, सफेद और लाल कनेर के फूलों से, दूर्वादल से, शमीपत्र से, चम्पकपुष्प से भगवान विष्णु की पूजा करते हैं, वे आवागमन के चक्र से छूट जाते हैं । इस प्रकार रात्रि में भगवान की पूजा करके प्रात:काल स्नान के पश्चात् भगवान की प्रार्थना करते हुए गुरु की पूजा

करनी चाहिए और सदाचारी व पवित्र ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर अपने व्रत को छोड़ना चाहिए ।

जो मनुष्य चातुर्मास्य व्रत में किसी वस्तु को त्याग देते हैं, उन्हें इस दिन से पुनः ग्रहण करनी चाहिए । जो मनुष्य 'प्रबोधिनी एकादशी' के दिन विधिपूर्वक व्रत करते हैं, उन्हें अनन्त सुख मिलता है और अंत में स्वर्ग को जाते हैं ।

25. परमा एकादशी

अर्जुन बोले : हे जनार्दन ! आप अधिक (लौंद/मल/पुरुषोत्तम) मास के कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम तथा उसके व्रत की विधि बतलाइये । इसमें किस देवता की पूजा की जाती है तथा इसके व्रत से क्या फल मिलता है?

श्रीकृष्ण बोले : हे पार्थ ! इस एकादशी का नाम 'परमा' है । इसके व्रत से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा मनुष्य को इस लोक में सुख तथा परलोक में मुक्ति मिलती है । भगवान विष्णु की धूप, दीप, नैवेध, पुष्प आदि से पूजा करनी चाहिए । महर्षियों के साथ इस एकादशी की जो मनोहर कथा काम्पिल्य नगरी में हुई थी, कहता हूँ । ध्यानपूर्वक सुनो :

काम्पिल्य नगरी में सुमेधा नाम का अत्यंत धर्मात्मा ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्री अत्यन्त पवित्र तथा पतिव्रता थी । पूर्व के किसी पाप के कारण यह

दम्पति अत्यन्त दरिद्र था । उस ब्राह्मण की पत्नी अपने पति की सेवा करती रहती थी तथा अतिथि को अन्न देकर स्वयं भूखी रह जाती थी ।

एक दिन सुमेधा अपनी पत्नी से बोला: 'हे प्रिये ! गृहस्थी धन के बिना नहीं चलती इसलिए मैं परदेश जाकर कुछ उद्योग करूँ ।'

उसकी पत्नी बोली: 'हे प्राणनाथ ! पति अच्छा और बुरा जो कुछ भी कहे, पत्नी को वही करना चाहिए । मनुष्य को पूर्वजन्म के कर्मों का फल मिलता है । विधाता ने भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह टाले से भी नहीं टलता । हे प्राणनाथ ! आपको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं, जो भाग्य में होगा, वह यहीं मिल जायेगा ।'

पत्नी की सलाह मानकर ब्राह्मण परदेश नहीं गया । एक समय कौण्डिन्य मुनि उस जगह आये । उन्हें देखकर सुमेधा और उसकी पत्नी ने उन्हें प्रणाम

किया और बोले: 'आज हम धन्य हुए । आपके दर्शन से हमारा जीवन सफल हुआ ।' मुनि को उन्होंने आसन तथा भोजन दिया ।

भोजन के पश्चात् पतिव्रता बोली: 'हे मुनिवर ! मेरे भाग्य से आप आ गये हैं । मुझे पूर्ण विश्वास है कि अब मेरी दरिद्रता शीघ्र ही नष्ट होनेवाली है । आप हमारी दरिद्रता नष्ट करने के लिए उपाय बतायें ।'

इस पर कौण्डिन्य मुनि बोले : 'अधिक मास' (मल मास) की कृष्णपक्ष की 'परमा एकादशी' के व्रत से समस्त पाप, दु:ख और दरिद्रता आदि नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य इस व्रत को करता है, वह धनवान हो जाता है । इस व्रत में कीर्तन भजन आदि सहित रात्रि जागरण करना चाहिए । महादेवजी ने कुबेर को इसी व्रत के करने से धनाध्यक्ष बना दिया है ।'

फिर मुनि कौण्डिन्य ने उन्हें ‘परमा एकादशी’ के व्रत की विधि कह सुनायी । मुनि बोले: ‘हे ब्राह्मणी ! इस दिन प्रात: काल नित्यकर्म से निवृत्त होकर विधिपूर्वक पंचरात्रि व्रत आरम्भ करना चाहिए । जो मनुष्य पाँच दिन तक निर्जल व्रत करते हैं, वे अपने माता पिता और स्त्रीसहित स्वर्गलोक को जाते हैं । हे ब्राह्मणी ! तुम अपने पति के साथ इसी व्रत को करो । इससे तुम्हें अवश्य ही सिद्धि और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होगी |’

कौण्डिन्य मुनि के कहे अनुसार उन्होंने ‘परमा एकादशी’ का पाँच दिन तक व्रत किया । व्रत समाप्त होने पर ब्राह्मण की पत्नी ने एक राजकुमार को अपने यहाँ आते हुए देखा । राजकुमार ने ब्रह्माजी की प्रेरणा से उन्हें आजीविका के लिए एक गाँव और एक उत्तम घर जो कि सब वस्तुओं से परिपूर्ण था, रहने के लिए दिया । दोनों इस व्रत के प्रभाव से इस लोक में अनन्त सुख भोगकर अन्त में स्वर्गलोक को गये ।

हे पार्थ ! जो मनुष्य 'परमा एकादशी' का व्रत करता है, उसे समस्त तीर्थों व यज्ञों आदि का फल मिलता है । जिस प्रकार संसार में चार पैरवालों में गौ, देवताओं में इन्द्रराज श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार मासों में अधिक मास उत्तम है । इस मास में पंचरात्रि अत्यन्त पुण्य देनेवाली है । इस महीने में 'पद्मिनी एकादशी' भी श्रेष्ठ है। उसके व्रत से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्यमय लोकों की प्राप्ति होती है ।

26. पद्मिनी एकादशी

अर्जुन ने कहा: हे भगवन् ! अब आप अधिक (लौंद/ मल/ पुरुषोत्तम) मास की शुक्लपक्ष की एकादशी के विषय में बतायें, उसका नाम क्या है तथा व्रत की विधि क्या है? इसमें किस देवता की पूजा की जाती है और इसके व्रत से क्या फल मिलता है?

श्रीकृष्ण बोले : हे पार्थ ! अधिक मास की एकादशी अनेक पुण्यों को देनेवाली है, उसका नाम 'पद्मिनी' है । इस एकादशी के व्रत से मनुष्य विष्णुलोक को जाता है । यह अनेक पापों को नष्ट करनेवाली तथा मुक्ति और भक्ति प्रदान करनेवाली है । इसके फल व गुणों को ध्यानपूर्वक सुनो: दशमी के दिन व्रत शुरु करना चाहिए । एकादशी के दिन प्रात: नित्यक्रिया से निवृत्त होकर पुण्य क्षेत्र में स्नान करने चले जाना चाहिए । उस समय गोबर, मृत्तिका, तिल, कुश तथा आमलकी चूर्ण से विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए । स्नान करने से पहले शरीर में मिट्टी लगाते

हुए उसीसे प्रार्थना करनी चाहिए: 'हे मृत्तिके ! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ । तुम्हारे स्पर्श से मेरा शरीर पवित्र हो । समस्त औषधियों से पैदा हुई और पृथ्वी को पवित्र करनेवाली, तुम मुझे शुद्ध करो । ब्रह्मा के थूक से पैदा होनेवाली ! तुम मेरे शरीर को छूकर मुझे पवित्र करो । हे शंख चक्र गदाधारी देवों के देव ! जगन्नाथ ! आप मुझे स्नान के लिए आज्ञा दीजिये ।'

इसके उपरान्त वरुण मंत्र को जपकर पवित्र तीर्थों के अभाव में उनका स्मरण करते हुए किसी तालाब में स्नान करना चाहिए । स्नान करने के पश्चात् स्वच्छ और सुन्दर वस्त्र धारण करके संध्या, तर्पण करके मंदिर में जाकर भगवान की धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, केसर आदि से पूजा करनी चाहिए । उसके उपरान्त भगवान के सम्मुख नृत्य गान आदि करें ।

भक्तजनों के साथ भगवान के सामने पुराण की कथा सुननी चाहिए । अधिक मास की शुक्लपक्ष की 'पद्मिनी एकादशी' का व्रत निर्जल करना चाहिए । यदि

मनुष्य में निर्जल रहने की शक्ति न हो तो उसे जल पान या अल्पाहार से व्रत करना चाहिए । रात्रि में जागरण करके नाच और गान करके भगवान का स्मरण करते रहना चाहिए । प्रति पहर मनुष्य को भगवान या महादेवजी की पूजा करनी चाहिए ।

पहले पहर में भगवान को नारियल, दूसरे में बिल्वफल, तीसरे में सीताफल और चौथे में सुपारी, नारंगी अर्पण करना चाहिए । इससे पहले पहर में अग्नि होम का, दूसरे में वाजपेय यज्ञ का, तीसरे में अश्वमेघ यज्ञ का और चौथे में राजसूय यज्ञ का फल मिलता है । इस व्रत से बढ़कर संसार में कोई यज्ञ, तप, दान या पुण्य नहीं है । एकादशी का व्रत करनेवाले मनुष्य को समस्त तीर्थों और यज्ञों का फल मिल जाता है ।

इस तरह से सूर्योदय तक जागरण करना चाहिए और स्नान करके ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए । इस प्रकार जो मनुष्य विधिपूर्वक भगवान की पूजा

तथा व्रत करते हैं, उनका जन्म सफल होता है और वे इस लोक में अनेक सुखों को भोगकर अन्त में भगवान विष्णु के परम धाम को जाते हैं । हे पार्थ ! मैंने तुम्हें एकादशी के व्रत का पूरा विधान बता दिया ।

अब जो 'पद्मिनी एकादशी' का भक्तिपूर्वक व्रत कर चुके हैं, उनकी कथा कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो । यह सुन्दर कथा पुलस्त्यजी ने नारदजी से कही थी : एक समय कार्तवीर्य ने रावण को अपने बंदीगृह में बंद कर लिया । उसे मुनि पुलस्त्यजी ने कार्तवीर्य से विनय करके छुड़ाया । इस घटना को सुनकर नारदजी ने पुलस्त्यजी से पूछा : 'हे महाराज ! उस मायावी रावण को, जिसने समस्त देवताओं सहित इन्द्र को जीत लिया, कार्तवीर्य ने किस प्रकार जीता, सो आप मुझे समझाइये ।'

इस पर पुलस्त्यजी बोले : 'हे नारदजी ! पहले कृतवीर्य नामक एक राजा राज्य करता था । उस राजा को सौ स्त्रियाँ थीं, उसमें से किसीको भी राज्यभार

सँभालनेवाला योग्य पुत्र नहीं था । तब राजा ने आदरपूर्वक पण्डितों को बुलवाया और पुत्र की प्राप्ति के लिए यज्ञ किये, परन्तु सब असफल रहे । जिस प्रकार दुःखी मनुष्य को भोग नीरस मालूम पड़ते हैं, उसी प्रकार उसको भी अपना राज्य पुत्र बिना दुःखमय प्रतीत होता था । अन्त में वह तप के द्वारा ही सिद्धियों को प्राप्त जानकर तपस्या करने के लिए वन को चला गया । उसकी स्त्री भी (हरिश्चन्द्र की पुत्री प्रमदा) वस्त्रालंकारों को त्यागकर अपने पति के साथ गन्धमादन पर्वत पर चली गयी । उस स्थान पर इन लोगों ने दस हजार वर्ष तक तपस्या की परन्तु सिद्धि प्राप्त न हो सकी । राजा के शरीर में केवल हड्डियाँ रह गयीं । यह देखकर प्रमदा ने विनयसहित महासती अनसूया से पूछा: मेरे पतिदेव को तपस्या करते हुए दस हजार वर्ष बीत गये, परन्तु अभी तक भगवान प्रसन्न नहीं हुए हैं, जिससे मुझे पुत्र प्राप्त हो । इसका क्या कारण है?

इस पर अनसूया बोली कि अधिक (लौंद/मल) मास में जो कि छत्तीस महीने बाद आता है, उसमें दो एकादशी होती है । इसमें शुक्लपक्ष की एकादशी

का नाम ‘पद्मिनी’ और कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम ‘परमा’ है । उसके व्रत और जागरण करने से भगवान तुम्हें अवश्य ही पुत्र देंगे ।

इसके पश्चात् अनसूयाजी ने व्रत की विधि बतलायी । रानी ने अनसूया की बतलायी विधि के अनुसार एकादशी का व्रत और रात्रि में जागरण किया । इससे भगवान विष्णु उस पर बहुत प्रसन्न हुए और वरदान माँगने के लिए कहा ।

रानी ने कहा : आप यह वरदान मेरे पति को दीजिये ।

प्रमदा का वचन सुनकर भगवान विष्णु बोले : ‘हे प्रमदे ! मल मास (लौंद) मुझे बहुत प्रिय है । उसमें भी एकादशी तिथि मुझे सबसे अधिक प्रिय है । इस एकादशी का व्रत तथा रात्रि जागरण तुमने विधिपूर्वक किया, इसलिए मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ ।’ इतना कहकर भगवान विष्णु राजा से बोले: ‘हे राजेन्द्र !

तुम अपनी इच्छा के अनुसार वर माँगो । क्योंकि तुम्हारी स्त्री ने मुझको प्रसन्न किया है ।'

भगवान की मधुर वाणी सुनकर राजा बोला : 'हे भगवन् ! आप मुझे सबसे श्रेष्ठ, सबके द्वारा पूजित तथा आपके अतिरिक्त देव दानव, मनुष्य आदि से अजेय उत्तम पुत्र दीजिये ।' भगवान तथास्तु कहकर अन्तर्धान हो गये । उसके बाद वे दोनों अपने राज्य को वापस आ गये । उन्हींके यहाँ कार्तवीर्य उत्पन्न हुए थे । वे भगवान के अतिरिक्त सबसे अजेय थे । इन्होंने रावण को जीत लिया था । यह सब 'पद्मिनी' के व्रत का प्रभाव था । इतना कहकर पुलस्त्यजी वहाँ से चले गये ।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : हे पाण्डुनन्दन अर्जुन ! यह मैंने अधिक (लौंद/मल/पुरुषोत्तम) मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का व्रत कहा है । जो मनुष्य इस व्रत को करता है, वह विष्णुलोक को जाता है ।

सोमवार व्रत कथा

दीपक जलाया करता था। उसके इस भक्तिभाव को देखकर एक समय श्री पार्वती जी ने शिवजी महाराज से कहा कि महाराज, यह साहूकार आप का अनन्य भक्त है और सदैव आपका व्रत और पूजन बड़ी श्रद्धा से करता है। इसकी मनोकामना पूर्ण करनी चाहिए।

शिवजी ने कहा– 'हे पार्वती! यह संसार कर्मक्षेत्र है। जैसे किसान खेत में जैसा बीज बोता है वैसा ही फल काटता है। उसी तरह इस संसार में जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल भोगते हैं।'' पार्वती जी ने अत्यन्त आग्रह से कहा– 'महराज! जब यह आपका अनन्य भक्त है और इसको अगर किसी प्रकार का दुःख है तो उसको अवश्य दूर करना चाहिए, क्योंकि आप सदैव अपने भक्तों पर दयालु होते हैं और उनके दुःखों को दूर करते हैं। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो मनुष्य आपकी सेवा तथा व्रत क्यों करेंगे।''

पार्वती जी का ऐसा आग्रह देख शिवजी महाराज कहने लगे– हे पार्वती! इसके कोई पुत्र नहीं है इसी चिन्ता में यह अति दुःखी रहता है। इसके भाग्य में पुत्र न होने पर भी मैं इसको पुत्र की प्राप्ति का वर देता हूँ।

सोमवार व्रत कथा

परन्तु यह पुत्र केवल 12 वर्ष तक जीवित रहेगा। इसके पश्चात् वह मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इससे अधिक मैं और कुछ इसके लिए नहीं कर सकता।'' यह सब बातें साहूकार सुन रहा था। इससे उसको न कुछ प्रसन्नता हुई और न ही कुछ दुःख हुआ। वह पहले जैसा ही शिवजी महाराज का व्रत और पूजन करता रहा। कुछ काल व्यतीत हो जाने पर साहूकार की स्त्री गर्भवती हुई और दसवें महीने उसके गर्भ से अति सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हुई। साहूकार के घर में बहुत खुशी मनाई गई परन्तु साहूकार ने उसकी केवल बारह वर्ष की आयु जान कोई अधिक प्रसन्नता प्रकट नहीं की और न ही किसी को भेद ही बताया। जब वह बालक 11 वर्ष का हो गया तो उस बालक की माता ने उसके पिता से विवाह आदि के लिए कहा तो वह साहूकार कहने लगा कि अभी मैं उसका विवाह नहीं करूंगा। अपने पुत्र को काशी जी पढ़ने के लिए भेजूंगा। फिर साहूकार ने अपने साले अर्थात् बालक के मामा को बुला उसको बहुत सा धन देकर कहा तुम बालक को काशी जी पढ़ने के लिये ले जाओ और रास्ते में जिस

सोमवार व्रत कथा

स्थान पर भी जाओ यज्ञ करते हुए ब्राहमणों को भोजन कराते जाओ। वह दोनों मामा–भानजे यज्ञ करते और ब्राहमणों को भोजन कराते जा रहे थे। रास्ते में उनको एक शहर पड़ा। उस शहर में राजा की कन्या का विवाह था और दूसरे राजा का लड़का जो विवाह कराने के लिए बारात लेकर आया था, वह एक आँख से काना था। उसके पिता को इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि कहीं वर को देख कन्या के माता–पिता विवाह में किसी प्रकार की अड़चन पैदा न कर दें। इस कारण जब उसने अति सुन्दर सेठ के लड़के को देखा तो मन में विचार किया कि क्यों न दरवाजे के समय इस लड़के से वर का काम चलाया जाये। ऐसा विचार कर वर के पिता ने उस लड़के और मामा से बात की तो वे राजी हो गये। फिर उस लड़के को वर के कपड़े पहना तथा घोड़ी पर चढ़ा दरवाजे पर ले गये और सब कार्य प्रसन्नता से पूर्ण हो गया। फिर वर के माता पिता ने सोचा कि यदि विवाह कार्य भी इसी लड़के से करा लिया जाय तो क्या बुराई है? ऐसा विचार कर लड़के और उसके मामा से कहा–यदि आप फेरों का और कन्यादान के

सोमवार व्रत कथा

काम को भी करा दें तो आपकी बड़ी कृपा होगी और मैं इसके बदले में आपको बहुत कुछ धन दूंगा तो उन्होंने स्वीकार कर लिया और विवाह कार्य भी बहुत अच्छी तरह से सम्पन्न हो गया। परन्तु जिस समय लड़का जाने लगा तो उसने राजकुमारी की चुन्दड़ी के पल्ले पर लिख दिया कि तेरा विवाह तो मेरे साथ हुआ है, परन्तु जिस राजकुमार के साथ भेजेंगे वह एक आँख से काना है और मैं काशी जी पढ़ने जा रहा हूँ। लड़के के जाने के पश्चात् उस राजकुमारी ने जब अपनी चुन्दड़ी पर ऐसा लिखा हुआ पाया तो उसने राजकुमार के साथ जाने से मना कर दिया और कहा कि यह मेरा पति नहीं है। मेरा विवाह इसके साथ नहीं हुआ है। वह तो काशी जी पढ़ने गया है। राजकुमारी के माता-पिता ने अपनी कन्या को विदा नहीं किया और बारात वापस चली गयी।

उधर सेठ का लड़का और उसका मामा काशी जी में पहुंच गये। वहाँ जाकर उन्होंने यज्ञ करना और लड़के ने पढ़ना शुरु कर दिया। जब लड़के की आयु बारह साल की हो गई उस दिन उन्होंने यज्ञ रचा रखा था कि लड़के ने

सोमवार व्रत कथा

अपने मामा से कहा–''मामाजी आज मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं है।'' मामा ने कहा– ''अन्दर जाकर सो जाओ।'' लड़का अन्दर जाकर सो गया और थोड़ी देर में उसके प्राण निकल गए। जब उसके मामा ने आकर देखा तो वह मुर्दा पड़ा है तो उसको बड़ा दुःख हुआ और उसने सोचा कि अगर मैं अभी रोना–पीटना मचा दूंगा तो यज्ञ का कार्य अधूरा रह जाएगा। अतः उसने जल्दी से यज्ञ का कार्य समाप्त कर ब्राहाणों के जाने के बाद रोना–पीटना आरम्भ कर दिया। संयोगवश उसी समय शिव–पार्वतीजी उधर से जा रहे थे। जब उन्होंने जोर–जोर से रोने की आवाज सुनी तो पार्वती जी कहने लगीं–''महाराज! कोई दुखिया रो रहा है इसके कष्ट को दूर कीजिये। जब शिव–पार्वती ने पास जाकर देखा तो वहां एक लड़का मुर्दा पड़ा था। पार्वती जी के कहने लगीं–महाराज यह तो उसी सेठ का लड़का है जो आपके वरदान से हुआ था। शिवजी कहने लगे–'हे पार्वती! इसकी आयु इतनी थी सो यह भोग चुका।'' तब पार्वती जी ने कहा– 'हे महाराज! इस बालक को और आयु दो नहीं तो इसके माता–पिता तड़प–तड़प कर मर

सोमवार व्रत कथा

जायेंगे।'' पार्वती जी के बार-बार आग्रह करने पर शिवजी ने उसको जीवन वरदान दिया और शिवजी महाराज की कृपा से लड़का जीवित हो गया। शिव-पार्वती कैलाश पर्वत चले गये।

तब वह लड़का और मामा उसी प्रकार यज्ञ करते तथा ब्राहाणों को भोजन कराते अपने घर की ओर चल पड़े। रास्ते में उसी शहर में आए जहां उसका विवाह हुआ था। वहां पर आकर उन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया तो उस लड़के के ससुर ने उसको पहचान लिया और अपने महल में ले जाकर उसकी बडी खातिर की, साथ ही बहुत दास-दासियों सहित आदर पूर्वक लड़की और जमाई को विदा किया। जब वह अपने शहर के निकट आए तो मामा ने कहा कि मैं पहले तुम्हारे घर जाकर खबर कर लेता हूं। जब उस लड़के का मामा घर पहुँचा तो लड़के के माता-पिता घर की छत पर बैठे थे और यह प्रण कर रखा था कि यदि हमारा पुत्र सकुशल लौट आया तो हम राजी-खुशी नीचे आ जायेंगे नहीं तो छत से गिरकर अपने प्राण खो देंगे। इतने में उस लड़के के मामा ने आकर यह समाचार दिया कि आपका पुत्र आ गया है

सोमवार व्रत कथा

तो उनको विश्वास नहीं आया तब उसके मामा ने शपथपूर्वक कहा कि आपका पुत्र अपनी स्त्री के साथ बहुत सारा धन साथ लेकर आया है तो सेठ ने आनन्द के साथ उसका स्वागत किया और बड़ी प्रसन्नता के साथ रहने लगे। इसी प्रकार से जो कोई भी सोमवार के व्रत को धारण करता है अथवा इस कथा को पढ़ता या सुनाता है उसकी समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होती है।

पूजा विधि

सर्व सुख, रक्त विकार, राज्य सम्मान तथा पुत्र की प्राप्ति के लिये मंगलवार का व्रत उत्तम है । इस व्रत मे गेहूँ ओर गुड़ का भोजन करना चाहिए। भोजन दिन रात मे एक बार ही ग्रहण करना ठीक है। व्रत २१ सप्ताह तक करे । मंगलवार के व्रत से मनुष्य के समस्त दोष नष्ट हो जाते है । व्रत के पूजन के समय लाल पुष्पो को चढ़ावे ओर लाल वस्त्र धारण करे। अन्त मे हनुमान जी की पूजा करनी चाहिए तथा मंगलवार की कथा सुननी चाहिए ।

मंगलवार व्रत कथा कथा प्रारम्भ

एक ब्राह्मण दम्पति के कोई सन्तान नही थी, जिसके कारण पति-पत्नि दु:खी थे। वह ब्राह्मण हनुमान जी की पुजा हेतु वन चला गया। वह पुजा के साथ म्हावीर जी से एक पुत्र की प्राप्ति के लिए कामना करने प्रकट किया करता था। घर पर उसकी पत्नि मंगलवार व्रत पुत्र प्राप्ति के लिए किया करती थी । मंगल के दिन व्रत के अन्त भोजन ग्रहण करती थी। मंगल के दिन व्रत के अंत भोजन बनाकर हनुमान जी को भोग लगाने के बाद स्वयं भोजन ग्रहण करती थी । एक बार कोई व्रत आ गया। जिसके कारण ब्राह्मणी भोजन न बना सकी तब हनुमान जी का भोग भी नही लगाया। वह अपने मन मे ऐसा प्रण करके सो गई कि अब अगले मंगलवार के दिन तो उसे मूर्छा आ गई तब हनुमान जी उसकी लगन और निष्ठा को देखकर प्रसन्न हो गए। उन्होने उसे दर्शन दिया और कहा- “मै तुमसे अति प्रसन्न हुँ। मै तुझको एक सुन्दर बालक देता हुँ। जो तेरी सेवा किया करेगा।” हनुमान जी बाल रूप मे उसको दर्शन देकर अंतर्धान हो गए । सुन्दर बालक पाकर ब्राह्मणी अति प्रसन्न हुई। ब्राह्मणी ने बालक का नाम मंगल रखा। कुछ समय पश्चात् ब्राह्मण वन से लौटकर आया । प्रसन्नचित सुन्दर बालक को घर मे कीड़ा करते देखकर पत्नी से बोला- “यह बालक कौन है ?” पत्नी ने कहा- “मंगलवार के व्रत से प्रसन्न होकर हनुमान जी ने दर्शन देकर मुझे बालक दिया है।” पत्नी की बात छल से भरी जान उसने सोचा यह कुल्टा व्णभिचारिणी अपनी कुलषता छुपाने के लिए बात बना रही है। एक दिन उसका पति कुएँ पर पानी भरने चला तो पत्नी ने कहा मंगल को साथ ले जाओ। वह मंगल को साथ ले चला और उसको कुएँ मे डालकर वापिस पानी भरकर घर आया तपो पत्नी ने पूछा मंगल कहाँ है ? तभी मंगल मुस्कराता हुआ घर आ गया। उसको देख ब्राह्मण आश्चर्य चकित हुआ रात्रि को हनुमान जी ने उसको स्वप्न मे कहा- “यह बालक मैने दिया है तुम पत्नी को कुल्टा क्यो कहते हो।” पति यह जानकर हर्षित हुआ। फिर पति-पत्नि मंगल का व्रत रख अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करने लगे। जो मनुष्य मंगलवार के व्रत को नियम से करता है अथवा इस कथा को पढ़ता ओर सुनता है ।उसके हनुमान जी की कृपा से सब कष्ट दूर होकर सर्व सुख प्राप्त होता है।

।। समाप्त ।।

पूजा विधि

ग्रह शान्ति तथा सर्व-सुखो की इच्छा रखने वालो को बुधवार का व्रत करना चाहिए । इस व्रत मे रात दिन मे एक बार भोजन ही करना चाहिए । इस व्रत के समय हरी वस्तुओ का उपयोग करना श्रेष्ठ है । इस व्रत के अंत मे शंकर जी की पूजा धुप, बेल-पत्र आदि से करना चाहिए।साथ ही कथा सुन कर आरती के बाद प्रसाद लेकर जाना चाहिए। बीच मे नही जाना चाहिए ।

बुधवार व्रत कथा कथा प्रारम्भ

एक समय एक व्यक्ति अपनी पत्नी को विदा करवाने अपनी ससुराल गया। वहाँ पर कुछ दिन रहने के बाद सास-ससुर से विदा करने के लिए कहा । किन्तु सब ने कहा कि आज बुधवार है आज के दिन गमन नही करते है । वह व्यक्ति किसी प्रकार न माना ओर हठधर्मी करके बुधवार के दिन ही पत्नी को विदा कराकर अपने नगर को चल पड़ा। रहा मे उसकी पत्नी को प्यास लगी तो उसने अपने पति को कहा कि मुझे बहुत जोर से प्यास लगी है । तब वह व्यक्ति लोटा लेकर रथ से उतरकर जल लेने चला गया । जैसे ही वह पत्नी के निकट आया तो वह यह देखकर आश्चर्य से चकित रह गया कि ठकि अपनी ही जैसी सूरत तथा वैसी ही वेश-भूषा मे वह व्यक्ति उसकी पत्नी के पास रथ मे बैठा हुआ है । उसने ,कोध से कहा कि तू कौन है जो मेरी पत्नी के निक ट बैठा हुआ है । दूसरा व्यक्ति बोला यह मेरी पत्नी है। मै अभी-अभी सुसराल से विदा करा कर ला रहा हूं । वे दोनो व्यक्ति परस्पर झगड़ने लगे। तभी राज्य के सिपाही आकर लोटे वाले व्यक्ति को पकड़ने लगे । स्त्री से पूछा, तुम्हारा असली पति कौन सा है ? तब पत्नी शान्त ही रही क्योकि दोनो एक जैसे थे वह किसे अपना पति कहे । वह व्यक्ति ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ बोला- हे परमेश्वर यह क्या लीला है कि सच्चा झूठा बन रहा है । तभी आकाशवाणी हुई कि मूर्ख आज बुधवार के दिन तुझे गमन नही करना था । तूने किसी की बात नही मानी । यह सब लीला बुधदेव भगवान की है । उस व्यक्ति ने बुधदेव भगवान से प्रार्थना की और अपनी गलती के लिए क्षमा मांगी । तब बुधदेव जी अनतर्ध्यान हो गए। वह अपनी स्त्री को लेकर घर आया तथा बुधवार का व्रत वे दोनो पति पत्नि नियमपूर्वक करने लगे । जो व्यक्ति इस कथा को श्रवण करता तथा सुनाता है उसको बुधवार के दिन यात्रा करने मे कोई दोष नही लगता है, उसको सर्व प्रकार से सुखो की प्राप्ति होती है ।

।। समाप्त ।।

पूजा विधि

इस दिन बृहस्पतेश्वर महादेव जी की पूजा होती है । दिन मे एक समय ही भोजन करें । पीले वस्त्र धारण करें ।भोजन भी चने की दाल का होना चाहिए, नमक नही खाना चाहिए । पीले रंग के फुल, चने की दाल, पीले कपड़े तथा पीले चन्दन से पूजा करनी चाहिए। पूजन के पश्चात् कथा सुननी चाहिए । इस व्रत को करने से बृहस्पति जी अति प्रसन्न होते है तथा धन और विद्या का लाभ होता है । स्त्रियो के लिए यह व्रत अति आवश्यक है । इस व्रत मे केले का पूजन होता है ।

बृहस्पतिवार व्रत कथा प्रारम्भ

किसी गांव मे एक साहूकार रहता था, जिसके घर मे अनन, वस्त्र और धन किसी की कोई कमी नही थी, परन्तु उसकी स्त्री बहुत ही कृपण थी। किसी कसी भिक्षार्थी को कुछ नही देती, सारे दिन घर के कामकाज मे लगी रहती। एक समय एक साधु-महात्मा बृहस्पतिवार के दिन उसके द्वार पर आये और भिक्षा की याचना की। स्त्री उस समय घर के आंगन को लीप रही थी, इस कारण साधु महाराज से कहने लगी कि महाराज इस समय तो मै घर लीप रही हूँ आपको कुछ नही दे सकती, फिर किसी अवकाश समय आना। साधु महात्मा खाली हाथ चले गए। कुछ दिन के पश्चात् वही साधु महात्मा आए उसी तरह भिक्षा मांगी। साहूकारनी उस समय लड़के को खिला रही थी। कहने लगी- महाराज मै क्या करूँ अवकाश नही है, इसलिए आपको भिक्षा नही दे सकती। तीसरी बार महात्मा आए तो उसने उन्हे उसी तरह टालना चाहा परन्तु महात्मा जी कहने लगे कि यदि तुमको बिल्कुल ही अवकाश हो जाए तो क्या मुझको दोगी ? साहुकारनी कहने लगी कि हाँ महाराज यदि ऐसा हो जाए तो आपकी बड़ी कृपा होगी। साधु- महात्मा जी कहने लगे कि अच्छा मै एक उपाय बताता हूँ। तुम बृहस्पतिवार को दिन चढ़े उठो और सारे घर मे झाड़ू लगा कर कूड़ा एक कोने मे जमा करके रख दो। घर मे चौका इत्यादि मन लगाओ। फिर स्नान आदि करके घर वालो से कह दो, उस दिन सब हजामत अवश्य बनवाये। रसोई बनाकर चूल्हे के पीछे रखा करो, सामने कभी रक्खो। सांयकाल को अन्धेरा होने के बाद दीपक जलाओ तथा बृहस्पतिवार को पीले वस्त्र मत धारण करो, न पीले रंग की चीजो का भोजन करो। यदि ऐसा करोगे तो तुमको घर का कोई काम नही करना पड़ेगा। साहूकारनी ने ऐसा ही किया। बृहस्पतिवार को दिन चढे उठी, झाड़ू लगाकर कूड़े को घर के एक कोने मे जमा करके रख दिया। पुरूषो ने हजामत बनवाई। भोजन बनवाकर चूल्हे के पीछे रखा। वह सब बृहस्पतिवारो को ऐसा ही करती रही। अब कुछ काल बाद उसके घर मे खाने को दाना न रहा। थोड़े दिनो मे महात्मा फिर

कमशः

आए और भिक्षा मांगी परन्तु सेठानी ने कहा महाराज मेरे घर मे खाने को अन्न नही है, आपको क्या दे सकती हूँ । तब महात्मा ने कहा कि जब तुम्हारे घर मे सब कुछ था तब भी कुछ नही देती थी । अब पूरा-पूरा अवकाश है तब भी कुछ नही दे रही हो, तुम क्या चाहती हो वह कहो ? तब सेठानी ने हाथ जोड़ कर कहा की महाराज अब कोई ऐसा उपाय बताओ कि मेरे पहले जैसा धन-धान्य हो जाय । अब मै प्रतिज्ञा करती हूँ कि अवश्यमेव आप जैसा कहेगे वैसा ही करूँगी । तब महात्मा जी बोले - "बृहस्पतिवार को प्रात: काल उठकर स्नानादि से निवृत हो घर को गौ के गोबर से लीपो तथा घर के पुरूष हजामत न बनवाये । भूखो को अन्न-जल देती रहा करो । ठीक सांय काल दीपक जलाओ । यदि ऐसा करोगी तो तुम्हारी सब मनोकामनाएं भगवान् बृहस्पति जी की कृपा से पूर्ण होगी । सेठानी ने ऐसा ही किया और उसके घर मे धन-धान्य वैसा ही होगा जैसा पहले था । इस प्रकार भगवान् बृहस्पति जी की कृपा से अनेक प्रकार के सुख भोगकर दीर्घकाल तक जीवित रही ।

॥ समाप्त ॥

विधि :

इस व्रत को करने वाले कथा के पूर्व कलश को पूर्ण भरे, उसके ऊपर गुड़ व चने से भरी कटोरी रखे, कथा कहते व सुनते समय हाथ मे भुने चने व गुड़ रखे सुनने वाले 'सन्तोषी माता की जय' इस प्रकार जय-जयकार से बोलते जाएं। कथा समाप्त होने पर हाथ का गुड़ और चना गौ माता को खिलाएं। कलश मे रखा हुआ गुड़ व चना सबको प्रसाद के रूप मे बाँट दे। कथा समाप्त होने और आरती के बाद कलश के जल को घर में सब जगह छिड़के, बचा हुआ जल तुलसी की क्यारी मे डाले। माता भावना की भूखी है कम ज्यादा का कोई विचार नही, अतएव जितना भी बन पड़े प्रसाद अर्पण कर श्रद्धा और प्रेम से प्रसन्न मन से व्रत करना चाहिए। व्रत के उद्यापन मे अढ़ाई सेर खाजा, चने का शाक, मोएनदार पूड़ी खीर, नैवेद्य रखे। घी का दीपक जला संतोषी माता की जय-जयकार बोल नारियल फोड़े। इस दिन ८ लड़को को भोजन कराएं। देवर, जेठ, घर के ही लड़के हो तो दूसरो को बुलाना नही अगर कुटूम्ब मे न मिलें तो ब्राह्मणो के, रिश्तेदारो के या पड़ोसी के लड़के बुलाए। उन्हे खटाई की कोई वस्तु न दे तथा भोजन करा यथाशक्ति दक्षिणा दे।

शुक्रवार व्रत कथा प्रारम्भ

एक समय की बात है कि एक नगर मे कायस्थ, ब्राह्मण और वैश्य जाति के तीनो लड़को मे परस्पर मित्रता थी। उन तीनोका विवाह हो गया था। ब्राह्मण और कायस्थ के लड़को का गौना भी हो गया था, परन्तु वैय के लड़के का गौना नही हुआ था। एक दिन कायस्थ के लड़के ने कहा- "हे मित्र ! तुम मुकलावा करके अपनी स्त्री को घर क्यो नही लाते? स्त्री के बिना घर कैसा बुरा लगता है।"

यह बात वैश्य के लड़के को जंच गई। वह कहने लगा कि मै अभी जाकर मुकलावा लेकर आता हूँ। ब्राह्मण के लड़के ने कहा अभी मत जाओ क्योकि शुक्र अस्त हो रहा है, जब उदय हो तब जा कर ले आना। परन्तु वैश्य के लड़के को ऐसी जिद हो गई कि किसी प्रकार से नही माना। जब उसके घरवालो ने सुना तो उन्होने बहुत समझाणा परन्तु वह किसी प्रकार से नही माना और अपनी ससुराल चला गया। उसको आया देखकर सुसराल वाले भी चकराए। जमाता का स्वागत सत्कार करने के बाद उन्होनेट पुछा आपका आना कैसे हुआ ? वैश्य पुत्र कहने लगा कि मै अपनी पत्नी को विदा कराने के लिए आया हूँ। सुसराल वालो ने भी उसे बहुत समझाया कि इन दिनो शुक्र अस्त है, उदय होने पर ले जाना, परन्तु उसने एक न सुनी और अपनी पत्नी को ले जाने का आग्रह करता रहा। जब वह किसी प्रकार न माना तो उन्होने लाचार होकर अपनी पुत्री को विदा कर दिया।

वैश्य पुत्र अपनी पत्नी को एक रथ मे बिठा कर अपने घर की ओर चल पड़ा। थोड़ी दूर जाने के बाद मार्ग मे उसके रथका पहिया टूटकर गिर गया और बैल का पैर टूट गया। उसकी पत्नी भी गिर पड़ी और घायल हो गई। जब आगे चले तो रास्ते मे डाकू मिले। उसके पास जो धन, वत्र तथा आभूषण थे वह सब उन्होने छीन लिए ।

इस प्रकार अनेक कष्टौं का सामना कर जब पति पत्नि अपने घर पहूँचे तो आते ही वैश्य के लड़के को सर्प ने काट लिया, वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

क्रमश:

तब उसकी स्त्री अत्यन्त विलाप कर रोने लगी। वैश्य ने अपने पुत्र को वैद्यो को दिखलाया तो वैद्य कहने लगे-यह तीन दिन में मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। जब उसके मित्र ब्राह्मण को पता लगातो उसने कहा- "सनातन धर्म की प्रथा है कि जिस समय शुक्र के अस्त हो कोई अपनी स्त्री को नही लाता। परन्तु यह शुक्र के शस्त के समय स्त्री को विदा कराके ले आया है इस कारण सारे विघ्न उपस्थित हुए है। यदि यह दोनो सुसराल वापिस चले जाएँ और शुक्र के उदय होने पर पुनः आवे तो निश्चय ही विघ्न टल सकता है।

सेठ ने अपने पुत्र और उसकी स्त्री को शीघ्र ही उसकी सुसराल वापिस पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचते ही वैश्य पुत्र की मूर्च्छा दूर हो गई और साधारण उपचार से ही वह सर्प विष से मुक्त हो गया। अपने दामाद को स्वास्थ्य लाभ करता रहा और जब शुक्र का उदय हुआ तब हर्ष पूर्वक उसकी सुसराल वालो ने उसको अपनी पुत्री के साथ विदा किया। इस के पश्चात् पति पत्नि दोनो घर आकर आनन्द से रहने लगे। इस व्रत के करने से अनेक विघ्न दूर होते है।

।। समाप्त ।।

विधि :

इस दिन शनिदेव की पूजा होती है। काला तिल. काला वस्त्र, तेल, उड़द शनिदेव को अति प्रिय है, इसलिए इनके द्वारा शनिदेव की पूजा की जाती है। शनि स्तोत्र का पाठ भी विशेष लाभदायक सिद्ध होता है।

शनिवार व्रत की कथा

एक समय सूर्य, चन्द्रमा, मँगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन सब ग्रहों मे आपस मे विवाद हो गया कि हममे सबसे बड़ा कौन है? सब अपने आपको बड़ा कहते थे। जब आपस मे कोई निश्चय न हो सका तो सब आपस मे झगड़ते हुए देवराज इन्द्र के पास गए और कहने लगे कि आप सब देवताओ के राजा है इसलिए आप हमारा न्याय करके बतलाएं कि हम नवो ग्रहो मे कौन सबसे बड़ा ग्रह कौन है?

देवराज इन्द्र देवातओ का प्रश्न सुनकर घबरा गए और कहने लगे कि मुझमे यह सामर्थ्य नही है कि मै किसी को बड़ा या छोटा बतला सकूँ। मै अपने मुख से कुछ नही कह सकता। हाँ एक उपाय हो सकता है। इस समय पृथ्वी पर राजा विक्रमादित्य दूसरो के दु:खो का निवारण करने वाले है इसलिए आप सब मिलकर उन्ही के पास जाएँ, वही आपके विवाद का निवारण करेंगे।

क्रमश:

सभी ग्रह देवता देवलोक से चलकर भू-लोक मे जाकर राजा विक्रमादित्य की सभा मे उपस्थित हुए और अपना प्रश्न राजा के सामने रखा । राजा विक्रमादित्य ग्रहों की बात सुनकर गहरी चिन्ता मे पड़ गए कि मै अपने मुख से किसको बड़ा और किसको छोटा बतलाऊँगा ? जिसको छोटा बतलाऊँगा वही क्रोध करेगा । उनका झगड़ा निपटाने के लिए उन्होने एक उपाय सोचा और सोना, चाँदी, काँसा, पीतल, सीसा, रांगा, जस्ता, अभ्रक और लोहा नौ धातुओ के नौ आसन बनवाए । सब आसनो को क्रम से जैसे सोना सबसे पहले और लोहा सबसे पीछे बिछाया गया । इसके पश्चात् राजा ने सब ग्रहो से कहा कि आप सब अपना-अपना आसन ग्रहण करें, जिसका आसन सबसे आगे वह सब से बड़ा और जिसका सबसे पीछे वह सबसे छोटा जानिए । क्योकि लोहा सबसे पीछे था और शनिदेव का शासन था इसलिए शनिदेव ने समझ लिया कि राजा ने मुझको सबसे छोटा बना दिया है।

इस निर्णय पर शनिदेव को बहुत क्रोध आया । उन्होने कहा कि राजा तू मुझे नही जानता । सूर्य एक राशि पर एक महीना, चन्द्रमा सवा दो महीना दो दिन, मँगल ड़ेढ महीना, बृस्पति तेरह महीने, बुध और शुक्र एक-एक महीने विचरण करते है । परन्तु मै एक राशि पर ढाई वर्ष से लेकर साढे सात वर्ष तक रहता हूँ । बड़े-बड़े देवताओ को भी मैने भीषण दु:ख दिया है। राजन् सुनो ! श्रीरामचन्द्रजी को साढे साती आई और उन्हे वनवास हो गया। रावण पर आई तो राम ने वानरो की सेना लेकर लंका पर चढाई कर दी और रावण के कुल का नाश कर दिया । हे राजन् ! अब तुम सावधान रहना।

राजा विक्रमादित्य ने कहा- जो भाग्य मे होगा, देखा जाएगा।

इसके बाद अन्य ग्रह तो प्रसन्नता के साथ अपने-अपने स्थान पर चले गए परन्तु शनिदेव क्रोध के साथ वहाँ से सिधारे।

कुछ काल व्यतीत होने पर जब राजा विक्रमादित्य को साढे साती की दशा आई तो शनिदेव घोड़ो के सौदागर बनकर अनेक घोड़ो के सहित

क्रमश:

राजा विक्रमादित्य की राजधानी मे आए। जब राजा ने धोड़ो के सौदागर के आने की खबर सुनी तो अपने अश्वपाल को अच्छे-अच्छे घोड़े खरीदने की आज्ञा दी। अश्वपाल ऐसी अच्छी नस्ल के घोड़े देखकर और एक अच्छा सा घोड़ा चुनकर सवारी के लिए उस पर चढे ।

राजा के पीठ पर चढते ही घोड़ा तेजी से भागा। घोड़ा बहुत दूर एक घने जंगल मे जाकर राजा को छोड़कर अन्तर्ध्यान हो गया। इसके बाद राजा विक्रमादित्य अकेला जंगल मे भटकता फिरता रहा। भूख-प्यास से दु:खी राजा ने भटकते-भटकते एक ग्वाले को देखा। ग्वाले ने राजा को प्यास से व्याकुल देखकर पानी पिलाया। राजा की अंगुली मे एक अंगूठी थी। वह अंगूठी उसने निकाल कर प्रसन्नता के साथ ग्वाले को दे दी और स्वयं शहर की ओर चल दिया। राजा शहर मे पहुँचकर एक सेठ की दुकान पर जाकर बैठ गया और अपने आपको उज्जैन का रहने वाला तथा अपना नाम वीका बतलाया। सेठ ने उसको एक कुलीन मनुष्य समझकर जल आदि पिलाया। भाग्यवश उस दिन सेठ की दुकान पर बहुत अधिक बिक्री हुई तब सेठ उसको भाग्यवान् पुरुष समझकर भोजन के लिएअपने साथ घर ले गया। भोजन करते समय राजा विक्रमादित्य ने एक आश्चर्यजनक घटना देखी, जिस खूंटी पर हार लटक रहा था वह खंटी उस हार को निगल रही थी।

भोजन के पश्चात् जब सेठ कमरे मे आया तो उसे कमरे मे हार नही मिला। उसने यही निश्चय किया कि सिवाय वीका के कोई और इस कमरे मे नही आया, अत: अवश्य ही उसी ने हार चोरी किया है। परन्तु वीका ने हार लेने से इन्कार कर दिया। इस पर पाँच सात आदमी उसको पकड़कर नगर कोतवाल के पास ले गए। फौजदार ने उसको राजा के सामने उपस्थित कर दिया और कहा कि यह आदमी भला प्रतीत होता है, चोर मालूम नही होता, परन्तु सेठ का कहना है कि इस के सिवाय और कोई घर मे आया ही नही, इसलिए अवश्य ही चोरी इस ने की है। राजा ने आज्ञा दी की इस के हाथ पैर काटकर चौरंगिया किया जाए। तुरन्त राजा की आज्ञा का पालन किया गया और वीका के हाथ पैर काट दिये गए।

क्रमश:

कुछ काल व्यतीत होने पर एक तेली उसको अपने घर ले गया और उसको कोल्हू पर बिठा धिया। वीका उस पर बैठा हुआ अपनी जबान से बैल हांकता रहा। इस काल मे राजा की शनि की दशा समाप्त हो गई। वर्षा ऋतु के समय के वह मल्हार राग गाने लगा। यह राग सुनकर उस शहर के राजा की कन्या मनभावनी उस राग पर मोहित हो गई राजकन्या ने राग गाने वाले की खबर लाने के लिए अपनी दासी को भेजा। दासी सारे शहर मे घूमती रही। जब वह तेली के घर के निकट से निकली तब क्या देखती है कि तेली के घर मे चौरंगिया राग गा रहा। दासी ने लौटकर राजकुमारी को सब वृतांत सुना दिया। बस उसी क्षण राजकुमारी मनभावनी ने अपने मन मे यह प्रण लिया चाहे कुछ भी हो मैने चौरंगिया के साथ ही विवाह करना है।

प्रात: काल होते ही जब दासी ने राजकुमारी मनभावनी को जगाना चाहा तो राजकुमारी अनशन व्रत लेकर पड़ी रही। दासी ने रानी के पास जाकर राजकुमारी के न उठने का वृतांत कहा। रानी ने वहाँ आकर राजकुमारी को जघाया और उसके दु:ख का कारण पूछा। राजकुमारी ने कहा कि माताजी मैने यह प्रण कर लिया है कि तेली के घर मे जो चौरंगिया है मै उसी के साथ विवाह करूँगी। माता ने कहा- पगली, तू यह क्या कह रही है? तुझे किसी देश के राजा के साथ परिणाया जाएगा। कन्या कहने लगी कि माताजीमै अपना प्रण कभी नही तोडंगी। माता ने चिन्तित होकर यह बात महाराज को बताई। महाराज ने भी आकर उसे समझाया कि मै अभी देश-देशान्तर मे अपने दूत भेजकर सुयोग्य, रूपवान एवं बड़े-से-बड़े गुणी राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह करूँगा। ऐसी बात तुम्हे कभी नही विचारनी चाहिए। परन्तु राजकुमारी ने कहा- "पिताजी मै अपने प्राण त्याग दूंगी परन्तु किसी दूसरे से विवाह नही करूँगी।" यह सुनकर राजा ने क्रोध से कहा यदि तेरे भाग्य मे ऐसा ही लिखा है तो जैसी तेरी इच्छा हो वैसा ही कर। राजा ने तेली को बुलाकर कहा कि तेरे घर मे जो चौरंगिया है उसके साथ साथ मै अपनी कन्या का विवाह करना चाहता हूँ। तेली ने कहा महाराज यह कैसे हो सकता है? राजा ने कहा कि भाग्य के लिखे को कोई नही टाल सकता। अपने घर जाकर विवाह की तैयारी करो।

क्रमश:

राजा ने सारी तैयारी कर तोरण और बन्दनवार लगवाकर राजकुमारी का विवाह चौरंगिया के साथ कर दिया। रात्रि को जब विक्रमादित्य और राजकुमारी महल मे सोये तप आधी रात के समय शनिदेव ने विक्रमादित्य को स्वप्न दिया और कहा की राजा मुझको छोटा बतलाकर तुमने कितना दु:ख उठाया? राजा ने शनिदेव से क्षमा माँगी । शनिदेव ने राजा को क्षमा कर दिया और प्रसन्न होकर विक्रमादित्य को हाथ-पैर दिये। तब राजा विक्रमादित्य ने शनिदेव से प्रार्थना की - "महाराज मेरी प्रार्थना स्वीकार करें, जैसा दु:ख आपने मुझे दिया है ऐसा और किसी को न दें।" शनिदेव ने कहा - तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार है, जो मनुष्य मेरी कथा सुनेगा या कहेगा उसको मेरी दशा मे कभी भी दु:ख नही होगा जो नित्य मेरा ध्यान करेगा या चीटियो को आटा डालेगा उसके सब मनोरथ पूर्ण होगे । इतना कह कर शनिदेव अपने धाम को चले गए।

जब राजकुमारी मनभावनी की आँख खुली और उसने चौरंगिया को हाथ-पाँव साथ देखा तो आश्चर्यचकित हो गई उसको देखकर राजा विक्रमादित्य ने अपना समस्त हाल कहा कि मै उज्जैन का राजा विक्रमादित्य हूँ। यह घटना सुनकर राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न हुई । प्रात: काल राजकुमारी से उसकी सखियों ने पिछली रात का हाल - चाल पूछा तो उसने अपने पति का समस्त वृतांत कह सुनाया। तब सबने प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि ईवर ने आपकी मनोकामना पूर्ण कर दी । जब उस सेठ ने यह घटना सुनी तो वह राजा विक्रमादित्य के पास आया और उनके पैरो पर गिरकर क्षमा मांगने लगा कि आप पर मैने चोरी का झूठा दोष लगाया । आप जो चाहे मुझे दण्ड दे । राजा ने कहा - मुझ पर शनिदेव का कोप था इसी कारण यह सब दु:ख मुझको प्राप्त हुए, इसमे तुम्हारा कोई दोष नही है । तुम अपने घर जाकर अपना कार्य करो, तुम्हारा कोई अपराध नही । सेठ बोला- "महाराज मुझे तभी शान्ति मिलेगी जब आप मेरे घर चलकर प्रीतिपूर्वक भोजन करेंगे"। राजा ने कहा जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही करें।

क्रमश:

सेठ ने अपने घर जाकर अनेक प्रकार के सुन्दर व्यंजन बनवाए और राजा विक्रमादित्य को प्रीतिभोज दिया। जिस समय राजा भोजन कर रहे थे एक आश्चर्यजनक घटना घटती सबको दिखाई दी। जो खूंटी पहले हार निगल गई थी, वह अब हार उगल रही थी । जब भोजन समाप्त हो गया तो सेठ ने हाथ जोड़कर बहुत सी मौहरें राजा को भेंट की और कहा- "मेरी श्रीकंवरी नामक एक कन्या है उसका आप पाणिग्रहण करें। राजा विक्रमादित्य ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब सेठ ने अपनी कन्या का विवाह राजा के साथ कर दिया और बहुत सा दान-दहेज आदि दिया। कुछ दिन तक उस राज्य मे निवास करने के पचात् राजा विक्रमादित्य ने अपने श्वसुर राजा से कहा कि अब मेरी उज्जैन जाने की इच्छा है।

कुछ दिन बाद विदा लकिर राजकुमारी मनभावनी, सेठ की कन्या तथा दोनो जगह से मिला दहेज मे प्राप्त अनेक दास-दासी, रथ और पालकियो सहित राजा विक्रमादित्य उज्जैन की तरफ चले। जब वे शहर के निकट पहुंचे और पुरवासियो ने राजा के आने का सम्वाद सुना तो उज्जैन की समस्त प्रजा अगवानी के लिए आई। प्रसन्नता से राजा अपने महल मे पधारे। सारे नगर मे भारी उत्सव मनाया गया और रात्रि को दीपमाला की गई। दूसरे दिन राजा ने अपने पूरे राज्य मे यह घोषणा करवाई कि शनि देवता सब ग्रहो मे सर्वोपरि है । मैने इनको छोटा बतलाया इसी से मुझको यह दु:ख प्राप्त हुआ।

इस प्रकार सारे राज्य मे सदा शनिदेव की पूजा और कथा होने लगी। राजा और प्रजा अनेक प्रकार के सुख भोगती रही। जो कोई शनिदेव की इस कथा को पढ़ता या सुनता है, शनिदेव की कृपा से उसके सब दु:ख दूर हो जाते है। व्रत के दिन शनिदेव की कथा को आवश्य पढना चाहिए।

।। समात ।।

पूजा विधि

सर्व मनोकानाओ की पूर्ति हैतु रविवार का व्रत श्रेष्ठ है / इस व्रत की विधि इस प्रकार है / प्रात: काल स्नान आदि से निवृत हो स्वच्छ वस्त्र धारण करे / शान्तचित्त होकर परमात्मा का स्मारण करे / भोजन तथा फलाहार सूर्य के प्रकाश रहते ही कर लेना उचित है । यदि निराहार रहने पर सूर्य छिप जाए तो दूसरे दिन सूर्य उदय होने पर अर्घ्य देने के बाद ही भोजन करे । व्रत के दिन नमकीन तेलयुक्त भोजन कदापि ना करे ।इस व्रत को करने से मान-सम्मान बढ़ता है तथा शत्रुओ का क्षय होता है आँख की पीड़ा के अतिरिक्त अन्य सब पीड़ाये दूर होती है /

कथा प्रारंम्भ

एक बुढिया थी । उसका नियम था प्रति रविवार को सबेरे स्वेरे ही स्नान आदि कर घर को गौ के गोबर से लीपकर फिर भोजन तैयार कर भगवान को भोग लगा कर स्वयं भोजन करती थी । ऐसा व्रत करने से उसका घर अनेक प्रकार के धन धान्य से पूर्ण था । श्री हरि की कृपा से घर मे किसी प्रकार का विघ्न या दु:ख नही था । सब प्रकार से घर मे आनन्द रहता था । इस तरह कुछ दिन बीत जाने पर उसकी एक पड़ोसन जिसकी गौ का गोबर वह बुढ़िया लाया करती थी । विचार करने लगी कि यह वृद्धा सर्वदा मेरी गौ का गोबर ले जाती है । इसलिए अपनी गौ को घर के भीतर बांधने लगी । बुढ़िया को गोबर ना मिलने से रविवार के दिन अपने घर को न लीप सकी । इसलिए उसने न तो भोजन बनाया न भगवान को भोग लगाया तथा स्वयं भी भोजन नही किया । इस प्रकार उसने निराहार व्रत किया । रात्रि हो गई और वह भूखी सो गई । रात्रि मे भगवान ने उसे स्वप्न दिया और भोजन न बनाने तथा लगाने का कारण पूछा । वृद्धा ने गोबर न मिलने का कारण सुनाया तब भगवान ने कहा कि माता हम तुमको ऐसी गौ देते है जिससे सभी इच्छाएं पूर्ण होती है क्योकि तुम हमेशा रविवार को गौ के गोबर से घर को लीपकर भोजन बनाकर मेरा भोग लगाकर खुद भोजन करती हो । इससे मै खुश होकर तुमको वरदान देता हूँ । निर्धन को धन और बाँझ स्त्रियो को पुत्र देकर दु:खो को दूर करता हूँ तथा अन्त समय मे मोक्ष देता हूँ ।

स्वप्न मे ऐसा वरदान देकर भगवान तो अन्तर्धान हो गए और वृद्धा की आँख खुली तो वह देखती है कि आंगन मे एक अति सुन्दर गौ और बछड़ा बंधे हुए है। वह गाय और बछड़े को देखकर अतीव प्रसन्न हुई और उसको घर के बाहर बाँध दिया और वही खाने को चारा डाल दिया। जब उसकी पड़ोसन ने बुढ़िया के घर के बाहर एक अति सुन्दर गौ और बछड़ा देखा तो द्वेष के कारण उसका हृदय जल उठा और उसने देखा कि गाय ने सोने का गोबर किया है तो वह उस गाय का गोबर ले गई और अपनी गाय का गोबर उसकी जगह पर रख गई। वह नित्यप्रति ऐसा ही करती रही और सीधी - साधी बुढ़िया को इसकी खबर नही होने दी तब सर्वव्यापी ईश्वर ने सोचा कि चलाक पड़ोसन के कर्म से बुढ़िया ठगी जा रही है तो ईश्वर ने संध्या के समय अपनी माया से बहुत जोर की आँधी चला दी। बुढ़िया ने अन्धेरी के भय से अपनी गौ को अन्दर बाँध लिया। प्रातः काल जब बुढ़िया ने देखा कि गौ ने सोने का गोबर दिया है तो उसके आश्चर्य की सीमा नही रही और वह प्रतिदिन गऊ को घर के भीतर बांधने लगी। उधर पड़ोसन ने देखा की बुढ़िया गऊ को घर के भीतर बांधने लगी है और उसका सोने का गोबर उठाने का दाँव नही चलता तो वह ईर्ष्या और डाह से जल उठी और कुछ उपाय न देख पड़ोसन ने उस देश के राजा की सभा मे जाकर कहा महाराज मेरे पड़ोस मे एक वृद्धा के पास ऐसी गऊ है जो आप जैसे राजाओं के ही योग्य है, वह नित्य सोने का गोबर देती है। आप उस सोने से प्रजा का पालन करिए।

वह वृद्धा इतने सोने का क्या करेगी । राजा ने यह बात सुन अपने दूतों को वृद्धा के घर से गऊ लाने की आज्ञा दी । वृद्धा प्रातः ईश्वर का भोग लगा भोजन ग्रहण करने ही जा रही थी कि राजा के कर्मचारी गऊ खोल कर ले गए । वृद्धा काफी रोई - चिल्लाई किन्तु कर्मचारियों के समक्ष कोई क्या कहता । उस दिन वृद्धा गऊ के वियोग मे भोजन न खा सकी और रात भर रो-रो ईश्वर से गऊ को पुन: पाने के लिए प्रार्थना करती रही । उधर राजा गऊ को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ लेकिन सुबह जैसे ही वह उठा सारा महल गोबर से भरा दिखाई देने लगा । राजा यह देख घबरा गया । भगवान ने रात्रि मे राजा को स्वप्न मे कहा कि हे राजा ! गाय को वृद्धा को लौटाने मे ही तेरा भला है उसके रविवार के व्रत से प्रसन्न होकर मैंने उसे गाय दी थी । प्रातः होने पर राजा ने वृद्धा को बुलाकर बहुत से धन के साथ सम्मान के सहित गऊ और बछड़ा लौटा दिया। उसकी पड़ोसिन को बुलाकर उचित दण्ड दिया । इतना करने के बाद राजा के महल से गन्दगी दूर हुई ।उसी दिन से राजा ने नगरवासियों को आदेश दिया कि राज्य की तथा अपनी समस्त मनोकामनाओ की पूर्ति के लिए रविवार का व्रत करो । व्रत करने से नगर के लोग सुखी जीवन व्यतीत करने लगे । कोई भी बीमारी तथा प्रकृति का प्रकोप उस नगर पर नही होता था । सारी प्रजा सुख से रहने लगी ।

।। समाप्त ।।

सोमवार व्रत कथा

विधि

सोमवार का व्रत साधारणतया दिन के तीसरे पहर तक होता है। व्रत में फलाहार या पारायण का कोई खास नियम नहीं है किन्तु यह आवश्यक है कि दिन रात में केवल एक समय भोजन करें। सोमवार के व्रत में शिवजी पार्वती का पूजन करना चाहिए। सोमवार के व्रत तीन प्रकार के हैं साधारण प्रति सोमवार, सौम्य प्रदोष और सोलह सोमवार, विधि तीनों की एक जैसी है। शिव पूजन के पश्चात् कथा सुननी चाहिए।

सोमवार व्रत कथा प्रारम्भ

एक बहुत धनवान साहूकार था, जिसके घर धन आदि किसी प्रकार की कमी नहीं थी। परन्तु उसको एक दुःख था कि उसके कोई पुत्र नहीं था। वह इसी चिन्ता में रात-दिन रहता था और वह पुत्र की कामना के लिए प्रति सोमवार को शिवजी का व्रत और पूजन किया करता था तथा सायंकाल को शिव मन्दिर में जाकर के शिवजी के श्री विग्रह के सामने

सोमवार व्रत कथा

दीपक जलाया करता था। उसके इस भक्तिभाव को देखकर एक समय श्री पार्वती जी ने शिवजी महाराज से कहा कि महाराज, यह साहूकार आप का अनन्य भक्त है और सदैव आपका व्रत और पूजन बड़ी श्रद्धा से करता है। इसकी मनोकामना पूर्ण करनी चाहिए।

शिवजी ने कहा– 'हे पार्वती! यह संसार कर्मक्षेत्र है। जैसे किसान खेत में जैसा बीज बोता है वैसा ही फल काटता है। उसी तरह इस संसार में जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल भोगते हैं।'' पार्वती जी ने अत्यन्त आग्रह से कहा– 'महराज! जब यह आपका अनन्य भक्त है और इसको अगर किसी प्रकार का दुःख है तो उसको अवश्य दूर करना चाहिए, क्योंकि आप सदैव अपने भक्तों पर दयालु होते हैं और उनके दुःखों को दूर करते हैं। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो मनुष्य आपकी सेवा तथा व्रत क्यों करेंगे।''

पार्वती जी का ऐसा आग्रह देख शिवजी महाराज कहने लगे– हे पार्वती! इसके कोई पुत्र नहीं है इसी चिन्ता में यह अति दुःखी रहता है। इसके भाग्य में पुत्र न होने पर भी मैं इसको पुत्र की प्राप्ति का वर देता हूँ।

सोमवार व्रत कथा

परन्तु यह पुत्र केवल 12 वर्ष तक जीवित रहेगा। इसके पश्चात् वह मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इससे अधिक मैं और कुछ इसके लिए नहीं कर सकता।'' यह सब बातें साहूकार सुन रहा था। इससे उसको न कुछ प्रसन्नता हुई और न ही कुछ दुःख हुआ। वह पहले जैसा ही शिवजी महाराज का व्रत और पूजन करता रहा। कुछ काल व्यतीत हो जाने पर साहूकार की स्त्री गर्भवती हुई और दसवें महीने उसके गर्भ से अति सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हुई। साहूकार के घर में बहुत खुशी मनाई गई परन्तु साहूकार ने उसकी केवल बारह वर्ष की आयु जान कोई अधिक प्रसन्नता प्रकट नहीं की और न ही किसी को भेद ही बताया। जब वह बालक 11 वर्ष का हो गया तो उस बालक की माता ने उसके पिता से विवाह आदि के लिए कहा तो वह साहूकार कहने लगा कि अभी मैं उसका विवाह नहीं करूंगा। अपने पुत्र को काशी जी पढ़ने के लिए भेजूंगा। फिर साहूकार ने अपने साले अर्थात् बालक के मामा को बुला उसको बहुत सा धन देकर कहा तुम बालक को काशी जी पढ़ने के लिये ले जाओ और रास्ते में जिस

सोमवार व्रत कथा

स्थान पर भी जाओ यज्ञ करते हुए ब्राहमणों को भोजन कराते जाओ। वह दोनों मामा–भानजे यज्ञ करते और ब्राहमणों को भोजन कराते जा रहे थे। रास्ते में उनको एक शहर पड़ा। उस शहर में राजा की कन्या का विवाह था और दूसरे राजा का लड़का जो विवाह कराने के लिए बारात लेकर आया था, वह एक आँख से काना था। उसके पिता को इस बात की बड़ी चिन्ता थी कि कहीं वर को देख कन्या के माता–पिता विवाह में किसी प्रकार की अड़चन पैदा न कर दें। इस कारण जब उसने अति सुन्दर सेठ के लड़के को देखा तो मन में विचार किया कि क्यों न दरवाजे के समय इस लड़के से वर का काम चलाया जाये। ऐसा विचार कर वर के पिता ने उस लड़के और मामा से बात की तो वे राजी हो गये। फिर उस लड़के को वर के कपड़े पहना तथा घोड़ी पर चढ़ा दरवाजे पर ले गये और सब कार्य प्रसन्नता से पूर्ण हो गया। फिर वर के माता पिता ने सोचा कि यदि विवाह कार्य भी इसी लड़के से करा लिया जाय तो क्या बुराई है? ऐसा विचार कर लड़के और उसके मामा से कहा–यदि आप फेरों का और कन्यादान के

सोमवार व्रत कथा

काम को भी करा दें तो आपकी बड़ी कृपा होगी और मैं इसके बदले में आपको बहुत कुछ धन दूंगा तो उन्होंने स्वीकार कर लिया और विवाह कार्य भी बहुत अच्छी तरह से सम्पन्न हो गया। परन्तु जिस समय लड़का जाने लगा तो उसने राजकुमारी की चुन्दड़ी के पल्ले पर लिख दिया कि तेरा विवाह तो मेरे साथ हुआ है, परन्तु जिस राजकुमार के साथ भेजेंगे वह एक आँख से काना है और मैं काशी जी पढ़ने जा रहा हूँ। लड़के के जाने के पश्चात् उस राजकुमारी ने जब अपनी चुन्दड़ी पर ऐसा लिखा हुआ पाया तो उसने राजकुमार के साथ जाने से मना कर दिया और कहा कि यह मेरा पति नहीं है। मेरा विवाह इसके साथ नहीं हुआ है। वह तो काशी जी पढ़ने गया है। राजकुमारी के माता–पिता ने अपनी कन्या को विदा नहीं किया और बारात वापस चली गयी।

उधर सेठ का लड़का और उसका मामा काशी जी में पहंच गये। वहाँ जाकर उन्होंने यज्ञ करना और लड़के ने पढ़ना शुरु कर दिया। जब लड़के की आय बारह साल की हो गई उस दिन उन्होंने यज्ञ रचा रखा था कि लड़के ने

सोमवार व्रत कथा

अपने मामा से कहा-''मामाजी आज मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं है।''
मामा ने कहा- ''अन्दर जाकर सो जाओ।'' लड़का अन्दर जाकर सो गया और थोड़ी देर में उसके प्राण निकल गए। जब उसके मामा ने आकर देखा तो वह मुर्दा पड़ा है तो उसको बड़ा दुःख हुआ और उसने सोचा कि अगर मैं अभी रोना-पीटना मचा दूंगा तो यज्ञ का कार्य अधूरा रह जाएगा। अतः उसने जल्दी से यज्ञ का कार्य समाप्त कर ब्राहाणों के जाने के बाद रोना-पीटना आरम्भ कर दिया। संयोगवश उसी समय शिव-पार्वतीजी उधर से जा रहे थे। जब उन्होंने जोर-जोर से रोने की आवाज सुनी तो पार्वती जी कहने लगीं-''महाराज! कोई दुखिया रो रहा है इसके कष्ट को दूर कीजिये। जब शिव-पार्वती ने पास जाकर देखा तो वहां एक लड़का मुर्दा पड़ा था। पार्वती जी के कहने लगीं-महाराज यह तो उसी सेठ का लड़का है जो आपके वरदान से हुआ था। शिवजी कहने लगे-''हे पार्वती! इसकी आयु इतनी थी सो यह भोग चुका।'' तब पार्वती जी ने कहा- 'हे महाराज! इस बालक को और आयु दो नहीं तो इसके माता-पिता तड़प-तड़प कर मर

सोमवार व्रत कथा

जायेंगे।'' पार्वती जी के बार–बार आग्रह करने पर शिवजी ने उसको जीवन वरदान दिया और शिवजी महाराज की कृपा से लड़का जीवित हो गया। शिव–पार्वती कैलाश पर्वत चले गये।

तब वह लड़का और मामा उसी प्रकार यज्ञ करते तथा ब्राहाणों को भोजन कराते अपने घर की ओर चल पड़े। रास्ते में उसी शहर में आए जहां उसका विवाह हुआ था। वहां पर आकर उन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया तो उस लड़के के ससुर ने उसको पहचान लिया और अपने महल में ले जाकर उसकी बडी खातिर की, साथ ही बहुत दास–दासियों सहित आदर पूर्वक लड़की और जमाई को विदा किया। जब वह अपने शहर के निकट आए तो मामा ने कहा कि मैं पहले तुम्हारे घर जाकर खबर कर लेता हूं। जब उस लड़के का मामा घर पहुँचा तो लड़के के माता–पिता घर की छत पर बैठे थे और यह प्रण कर रखा था कि यदि हमारा पुत्र सकुशल लौट आया तो हम राजी–खुशी नीचे आ जायेंगे नहीं तो छत से गिरकर अपने प्राण खो देंगे। इतने में उस लड़के के मामा ने आकर यह समाचार दिया कि आपका पुत्र आ गया है

सोमवार व्रत कथा

तो उनको विश्वास नहीं आया तब उसके मामा ने शपथपूर्वक कहा कि आपका पुत्र अपनी स्त्री के साथ बहुत सारा धन साथ लेकर आया है तो सेठ ने आनन्द के साथ उसका स्वागत किया और बड़ी प्रसन्नता के साथ रहने लगे। इसी प्रकार से जो कोई भी सोमवार के व्रत को धारण करता है अथवा इस कथा को पढ़ता या सुनाता है उसकी समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होती है।

पूजा विधि

सर्व सुख, रक्त विकार, राज्य सम्मान तथा पुत्र की प्राप्ति के लिये मंगलवार का व्रत उत्तम है । इस व्रत मे गेहूँ ओर गुड़ का भोजन करना चाहिए। भोजन दिन रात मे एक बार ही ग्रहण करना ठीक है। व्रत २१ सप्ताह तक करे । मंगलवार के व्रत से मनुष्य के समस्त दोष नष्ट हो जाते है । व्रत के पूजन के समय लाल पुष्पो को चढ़ावे ओर लाल वस्त्र धारण करे। अन्त मे हनुमान जी की पूजा करनी चाहिए तथा मंगलवार की कथा सुननी चाहिए ।

मंगलवार व्रत कथा कथा प्रारम्भ

एक ब्राह्मण दम्पति के कोई सन्तान नही थी, जिसके कारण पति-पत्नि दु:खी थे। वह ब्राह्मण हनुमान जी की पुजा हेतु वन चला गया। वह पुजा के साथ म्हावीर जी से एक पुत्र की प्राप्ति के लिए कामना करने प्रकट किया करता था। घर पर उसकी पत्नि मंगलवार व्रत पुत्र प्राप्ति के लिए किया करती थी । मंगल के दिन व्रत के अन्त भोजन ग्रहण करती थी। मंगल के दिन व्रत के अंत भोजन बनाकर हनुमान जी को भोग लगाने के बाद स्वयं भोजन ग्रहण करती थी । एक बार कोई व्रत आ गया। जिसके कारण ब्राह्मणी भोजन न बना सकी तब हनुमान जी का भोग भी नही लगाया। वह अपने मन मे ऐसा प्रण करके सो गई कि अब अगले मंगलवार के दिन तो उसे मूर्छा आ गई तब हनुमान जी उसकी लगन और निष्ठा को देखकर प्रसन्न हो गए। उन्होने उसे दर्शन दिया और कहा- "मै तुमसे अति प्रसन्न हुँ। मै तुझको एक सुन्दर बालक देता हुँ। जो तेरी सेवा किया करेगा।" हनुमान जी बाल रूप मे उसको दर्शन देकर अंतर्धान हो गए । सुन्दर बालक पाकर ब्राह्मणी अति प्रसन्न हुई। ब्राह्मणी ने बालक का नाम मंगल रखा। कुछ समय पश्चात् ब्राह्मण वन से लौटकर आया । प्रसन्नचित सुन्दर बालक को घर मे क्रीड़ा करते देखकर पत्नी से बोला- "यह बालक कौन है ?" पत्नी ने कहा- "मंगलवार के व्रत से प्रसन्न होकर हनुमान जी ने दर्शन देकर मुझे बालक दिया है।" पत्नी की बात छल से भरी जान उसने सोचा यह कुल्टा व्यभिचारिणी अपनी कुलषता छुपाने के लिए बात बना रही है। एक दिन उसका पति कुएँ पर पानी भरने चला तो पत्नी ने कहा मंगल को साथ ले जाओ। वह मंगल को साथ ले चला और उसको कुएँ मे डालकर वापिस पानी भरकर घर आया तपो पत्नी ने पूछा मंगल कहाँ है ? तभी मंगल मुस्कराता हुआ घर आ गया। उसको देख ब्राह्मण आश्चर्य चकित हुआ रात्रि को हनुमान जी ने उसको स्वप्न मे कहा- "यह बालक मैने दिया है तुम पत्नी को कुल्टा क्यो कहते हो।" पति यह जानकर हर्षित हुआ। फिर पति-पत्नि मंगल का व्रत रख अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करने लगे। जो मनुष्य मंगलवार के व्रत को नियम से करता है अथवा इस कथा को पढ़ता और सुनता है ।उसके हनुमान जी की कृपा से सब कष्ट दूर होकर सर्व सुख प्राप्त होता है।

।। समाप्त ।।

पूजा विधि

ग्रह शान्ति तथा सर्व-सुखो की इच्छा रखने वालो को बुधवार का व्रत करना चाहिए । इस व्रत मे रात दिन मे एक बार भोजन ही करना चाहिए । इस व्रत के समय हरी वस्तुओ का उपयोग करना श्रेष्ठ है । इस व्रत के अंत मे शंकर जी की पूजा धुप, बेल-पत्र आदि से करना चाहिए।साथ ही कथा सुन कर आरती के बाद प्रसाद लेकर जाना चाहिए। बीच मे नही जाना चाहिए ।

बुधवार व्रत कथा कथा प्रारम्भ

एक समय एक व्यक्ति अपनी पत्नी को विदा करवाने अपनी ससुराल गया। वहाँ पर कुछ दिन रहने के बाद सास-ससुर से विदा करने के लिए कहा। किन्तु सब ने कहा कि आज बुधवार है आज के दिन गमन नही करते है। वह व्यक्ति किसी प्रकार न माना ओर हठधर्मी करके बुधवार के दिन ही पत्नी को विदा कराकर अपने नगर को चल पड़ा। रहा मे उसकी पत्नी को प्यास लगी तो उसने अपने पति को कहा कि मुझे बहुत जोर से प्यास लगी है। तब वह व्यक्ति लोटा लेकर रथ से उतरकर जल लेने चला गया। जैसे ही वह पत्नी के निकट आया तो वह यह देखकर आश्चर्य से चकित रह गया कि ठकि अपनी ही जैसी सूरत तथा वैसी ही वेश-भूषा मे वह व्यक्ति उसकी पत्नी के पास रथ मे बैठा हुआ है। उसने ्कोध से कहा कि तू कौन है जो मेरी पत्नी के निक ट बैठा हुआ है। दूसरा व्यक्ति बोला यह मेरी पत्नी है। मै अभी-अभी सुसराल से विदा करा कर ला रहा हूं। वे दोनो व्यक्ति परस्पर झगड़ने लगे। तभी राज्य के सिपाही आकर लोटे वाले व्यक्ति को पकड़ने लगे। स्त्री से पूछा, तुम्हारा असली पति कौन सा है ? तब पत्नी शान्त ही रही क्योकि दोनो एक जैसे थे वह किसे अपना पति कहे। वह व्यक्ति ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ बोला- हे परमेश्वर यह क्या लीला है कि सच्चा झूठा बन रहा है। तभी आकाशवाणी हुई कि मूर्ख आज बुधवार के दिन तुझे गमन नही करना था। तूने किसी की बात नही मानी। यह सब लीला बुधदेव भगवान की है। उस व्यक्ति ने बुधदेव भगवान से प्रार्थना की और अपनी गलती के लिए क्षमा मांगी। तब बुधदेव जी अनतर्ध्यान हो गए। वह अपनी स्त्री को लेकर घर आया तथा बुधवार का व्रत वे दोनो पति पत्नि नियमपूर्वक करने लगे। जो व्यक्ति इस कथा को श्रवण करता तथा सुनाता है उसको बुधवार के दिन यात्रा करने मे कोई दोष नही लगता है, उसको सर्व प्रकार से सुखो की प्राप्ति होती है।

।। समाप्त ।।

पूजा विधि

इस दिन बृहस्पतेश्वर महादेव जी की पूजा होती है । दिन मे एक समय ही भोजन करें । पीले वस्त्र धारण करें ।भोजन भी चने की दाल का होना चाहिए, नमक नही खाना चाहिए । पीले रंग के फुल, चने की दाल, पीले कपड़े तथा पीले चन्दन से पूजा करनी चाहिए। पूजन के पश्चात् कथा सुननी चाहिए । इस व्रत को करने से बृहस्पति जी अति प्रसन्न होते है तथा धन और विद्या का लाभ होता है । स्त्रियो के लिए यह व्रत अति आवश्यक है । इस व्रत मे केले का पूजन होता है ।

बृहस्पतिवार व्रत कथा प्रारम्भ

किसी गांव मे एक साहूकार रहता था, जिसके घर मे अनन, वस्त्र और धन किसी की कोई कमी नही थी, परन्तु उसकी स्त्री बहुत ही कृपण थी । किसी कसी भिक्षार्थी को कुछ नही देती, सारे दिन घर के कामकाज मे लगी रहती । एक समय एक साधु-महात्मा बृहस्पतिवार के दिन उसके द्वार पर आये और भिक्षा की याचना की । स्त्री उस समय घर के आंगन को लीप रही थी, इस कारण साधु महाराज से कहने लगी कि महाराज इस समय तो मै घर लीप रही हूँ आपको कुछ नही दे सकती, फिर किसी अवकाश समय आना । साधु महात्मा खाली हाथ चले गए । कुछ दिन के पश्चात् वही साधु महात्मा आए उसी तरह भिक्षा मांगी । साहूकारनी उस समय लड़के को खिला रही थी । कहने लगी- महाराज मै क्या करूँ अवकाश नही है, इसलिए आपको भिक्षा नही दे सकती । तीसरी बार महात्मा आए तो उसने उन्हे उसी तरह टालना चाहा परन्तु महात्मा जी कहने लगे कि यदि तुमको बिल्कुल ही अवकाश हो जाए तो क्या मुझको दोगी ? साहुकारनी कहने लगी कि हाँ महाराज यदि ऐसा हो जाए तो आपकी बड़ी कृपा होगी । साधु- महात्मा जी कहने लगे कि अच्छा मै एक उपाय बताता हूँ । तुम बृहस्पतिवार को दिन चढ़े उठो और सारे घर मे झाड़ू लगा कर कूड़ा एक कोने मे जमा करके रख दो । घर मे चौका इत्यादि मन लगाओ । फिर स्नान आदि करके घर वालो से कह दो, उस दिन सब हजामत अवश्य बनवाये । रसोई बनाकर चूल्हे के पीछे रखा करो, सामने कभी रक्खो । सांयकाल को अन्धेरा होने के बाद दीपक जलाओ तथा बृहस्पतिवार को पीले वस्त्र मत धारण करो, न पीले रंग की चीजो का भोजन करो । यदि ऐसा करोगे तो तुमको घर का कोई काम नही करना पड़ेगा । साहूकारनी ने ऐसा ही किया । बृहस्पतिवार को दिन चढे उठी, झाड़ू लगाकर कूड़े को घर के एक कोने मे जमा करके रख दिया । पुरूषो ने हजामत बनवाई । भोजन बनवाकर चूल्हे के पीछे रखा । वह सब बृहस्पतिवारो को ऐसा ही करती रही । अब कुछ काल बाद उसके घर मे खाने को दाना न रहा । थोड़े दिनो मे महात्मा फिर

कमशः

आए और भिक्षा मांगी परन्तु सेठानी ने कहा महाराज मेरे घर मे खाने को अन्न नही है, आपको क्या दे सकती हूँ । तब महात्मा ने कहा कि जब तुम्हारे घर मे सब कुछ था तब भी कुछ नही देती थी । अब पूरा-पूरा अवकाश है तब भी कुछ नही दे रही हो, तुम क्या चाहती हो वह कहो ? तब सेठानी ने हाथ जोड़ कर कहा की महाराज अब कोई ऐसा उपाय बताओ कि मेरे पहले जैसा धन-धान्य हो जाय । अब मै प्रतिज्ञा करती हूँ कि अवश्यमेव आप जैसा कहेगे वैसा ही करूँगी । तब महात्मा जी बोले - "बृहस्पतिवार को प्रात: काल उठकर स्नानादि से निवृत हो घर को गौ के गोबर से लीपो तथा घर के पुरूष हजामत न बनवाये । भूखो को अन्न-जल देती रहा करो । ठीक सांय काल दीपक जलाओ । यदि ऐसा करोगी तो तुम्हारी सब मनोकामनाएं भगवान् बृहस्पति जी की कृपा से पूर्ण होगी । सेठानी ने ऐसा ही किया और उसके घर मे धन-धान्य वैसा ही होगा जैसा पहले था । इस प्रकार भगवान् बृहस्पति जी की कृपा से अनेक प्रकार के सुख भोगकर दीर्घकाल तक जीवित रही ।

॥ समाप्त ॥

विधि :

इस व्रत को करने वाले कथा के पूर्व कलश को पूर्ण भरे, उसके ऊपर गुड़ व चने से भरी कटोरी रखे, कथा कहते व सुनते समय हाथ मे भुने चने व गुड़ रखे सुनने वाले 'सन्तोषी माता की जय' इस प्रकार जय-जयकार से बोलते जाएँ। कथा समाप्त होने पर हाथ का गुड़ और चना गौ माता को खिलाएँ। कलश मे रखा हुआ गुड़ व चना सबको प्रसाद के रूप मे बाँट दे। कथा समाप्त होने और आरती के बाद कलश के जल को घर में सब जगह छिड़के, बचा हुआ जल तुलसी की क्यारी मे डाले। माता भावना की भूखी है कम ज्यादा का कोई विचार नही, अतएव जितना भी बन पड़े प्रसाद अर्पण कर श्रद्धा और प्रेम से प्रसन्न मन से व्रत करना चाहिए। व्रत के उद्यापन मे अढ़ाई सेर खाजा, चने का शाक, मोएनदार पूड़ी खीर, नैवेद्य रखे। घी का दीपक जला संतोषी माता की जय-जयकार बोल नारियल फोड़े। इस दिन ८ लड़को को भोजन कराएं। देवर, जेठ, घर के ही लड़के हो तो दूसरो को बुलाना नही अगर कुटुम्ब मे न मिलें तो ब्राह्मणो के, रिश्तेदारो के या पड़ोसी के लड़के बुलाए। उन्हे खटाई की कोई वस्तु न दे तथा भोजन करा यथाशक्ति दक्षिणा दे।

शुक्रवार व्रत कथा प्रारम्भ

एक समय की बात है कि एक नगर मे कायस्थ, ब्राह्मण और वैश्य जाति के तीनो लड़को मे परस्पर मित्रता थी। उन तीनोका विवाह हो गया था। ब्राह्मण और कायस्थ के लड़को का गौना भी हो गया था, परन्तु वैय के लड़के का गौना नही हुआ था। एक दिन कायस्थ के लड़के ने कहा- "हे मित्र ! तुम मुकलावा करके अपनी स्त्री को घर क्यो नही लाते? स्त्री के बिना घर कैसा बुरा लगता है।"

यह बात वैश्य के लड़के को जंच गई। वह कहने लगा कि मै अभी जाकर मुकलावा लेकर आता हूँ। ब्राह्मण के लड़के ने कहा अभी मत जाओ क्योकि शुक्र अस्त हो रहा है, जब उदय हो तब जा कर ले आना। परन्तु वैश्य के लड़के को ऐसी जिद हो गई कि किसी प्रकार से नही माना। जब उसके घरवालो ने सुना तो उन्होने बहुत समझाणा परन्तु वह किसी प्रकार से नही माना और अपनी ससुराल चला गया। उसको आया देखकर सुसराल वाले भी चकराए। जमाता का स्वागत सत्कार करने के बाद उन्होनेट पुछा आपका आना कैसे हुआ ? वैश्य पुत्र कहने लगा कि मै अपनी पत्नी को विदा कराने के लिए आया हूँ। सुसराल वालो ने भी उसे बहुत समझाया कि इन दिनो शुक्र अस्त है, उदय होने पर ले जाना, परन्तु उसने एक न सुनी और अपनी पत्नी को ले जाने का आग्रह करता रहा। जब वह किसी प्रकार न माना तो उन्होने लाचार होकर अपनी पुत्री को विदा कर दिया।

वैश्य पुत्र अपनी पत्नी को एक रथ मे बिठा कर अपने घर की ओर चल पड़ा। थोड़ी दूर जाने के बाद मार्ग मे उसके रथका पहिया टूटकर गिर गया और बैल का पैर टूट गया। उसकी पत्नी भी गिर पड़ी और घायल हो गई। जब आगे चले तो रास्ते मे डाकू मिले। उसके पास जो धन, वत्र तथा आभूषण थे वह सब उन्होने छीन लिए ।

इस प्रकार अनेक कष्टों का सामना कर जब पति पत्नि अपने घर पहूँचे तो आते ही वैश्य के लड़के को सर्प ने काट लिया, वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

क्रमश:

तब उसकी स्त्री अत्यन्त विलाप कर रोने लगी। वैश्य ने अपने पुत्र को वैद्यो को दिखलाया तो वैद्य कहने लगे-यह तीन दिन में मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। जब उसके मित्र ब्राह्मण को पता लगातो उसने कहा- "सनातन धर्म की प्रथा है कि जिस समय शुक्र के अस्त हो कोई अपनी स्त्री को नही लाता। परन्तु यह शुक्र के शस्त के समय स्त्री को विदा कराके ले आया है इस कारण सारे विघ्न उपस्थित हुए है। यदि यह दोनो सुसराल वापिस चले जाएँ और शुक्र के उदय होने पर पुनः आवे तो निश्चय ही विघ्न टल सकता है।

सेठ ने अपने पुत्र और उसकी स्त्री को शीघ्र ही उसकी सुसराल वापिस पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचते ही वैश्य पुत्र की मूर्च्छा दूर हो गई और साधारण उपचार से ही वह सर्प विष से मुक्त हो गया। अपने दामाद को स्वास्थ्य लाभ करता रहा और जब शुक्र का उदय हुआ तब हर्ष पूर्वक उसकी सुसराल वालो ने उसको अपनी पुत्री के साथ विदा किया। इस के पश्चात् पति पत्नि दोनो घर आकर आनन्द से रहने लगे। इस व्रत के करने से अनेक विघ्न दूर होते है।

॥ समाप्त ॥

विधि :

इस दिन शनिदेव की पूजा होती है। काला तिल. काला वस्त्र, तेल, उड़द शनिदेव को अति प्रिय है, इसलिए इनके द्वारा शनिदेव की पूजा की जाती है। शनि स्तोत्र का पाठ भी विशेष लाभदायक सिद्ध होता है।

शनिवार व्रत की कथा

एक समय सूर्य, चन्द्रमा, मँगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन सब ग्रहों मे आपस मे विवाद हो गया कि हममे सबसे बड़ा कौन है? सब अपने आपको बड़ा कहते थे। जब आपस मे कोई निश्चय न हो सका तो सब आपस मे झगड़ते हुए देवराज इन्द्र के पास गए और कहने लगे कि आप सब देवताओ के राजा है इसलिए आप हमारा न्याय करके बतलाएं कि हम नवो ग्रहो मे कौन सबसे बड़ा ग्रह कौन है?

देवराज इन्द्र देवातओ का प्रश्न सुनकर घबरा गए और कहने लगे कि मुझमे यह सामर्थ्य नही है कि मै किसी को बड़ा या छोटा बतला सकूँ। मै अपने मुख से कुछ नही कह सकता। हाँ एक उपाय हो सकता है। इस समय पृथ्वी पर राजा विक्रमादित्य दूसरो के दु:खो का निवारण करने वाले है इसलिए आप सब मिलकर उन्ही के पास जाएँ, वही आपके विवाद का निवारण करेंगे।

क्रमश:

सभी ग्रह देवता देवलोक से चलकर भू-लोक मे जाकर राजा विक्रमादित्य की सभा मे उपस्थित हुए और अपना प्रश्न राजा के सामने रखा । राजा विक्रमादित्य ग्रहों की बात सुनकर गहरी चिन्ता मे पड़ गए कि मै अपने मुख से किसको बड़ा और किसको छोटा बतलाऊँगा ? जिसको छोटा बतलाऊँगा वही क्रोध करेगा । उनका झगड़ा निपटाने के लिए उन्होने एक उपाय सोचा और सोना, चाँदी, काँसा, पीतल, सीसा, रांगा, जस्ता, अभ्रक और लोहा नौ धातुओ के नौ आसन बनवाए । सब आसनो को क्रम से जैसे सोना सबसे पहले और लोहा सबसे पीछे बिछाया गया । इसके पश्चात् राजा ने सब ग्रहो से कहा कि आप सब अपना-अपना आसन ग्रहण करें, जिसका आसन सबसे आगे वह सब से बड़ा और जिसका सबसे पीछे वह सबसे छोटा जानिए । क्योकि लोहा सबसे पीछे था और शनिदेव का शासन था इसलिए शनिदेव ने समझ लिया कि राजा ने मुझको सबसे छोटा बना दिया है।

इस निर्णय पर शनिदेव को बहुत क्रोध आया । उन्होने कहा कि राजा तू मुझे नही जानता । सूर्य एक राशि पर एक महीना, चन्द्रमा सवा दो महीना दो दिन, मँगल डेढ़ महीना, बृस्पति तेरह महीने, बुध और शुक्र एक-एक महीने विचरण करते है । परन्तु मै एक राशि पर ढाई वर्ष से लेकर साढे सात वर्ष तक रहता हूँ । बड़े-बड़े देवताओ को भी मैने भीषण दु:ख दिया है। राजन् सुनो ! श्रीरामचन्द्रजी को साढे साती आई और उन्हे वनवास हो गया। रावण पर आई तो राम ने वानरो की सेना लेकर लंका पर चढाई कर दी और रावण के कुल का नाश कर दिया । हे राजन् ! अब तुम सावधान रहना।

राजा विक्रमादित्य ने कहा- जो भाग्य मे होगा, देखा जाएगा।

इसके बाद अन्य ग्रह तो प्रसन्नता के साथ अपने-अपने स्थान पर चले गए परन्तु शनिदेव क्रोध के साथ वहाँ से सिधारे।

कुछ काल व्यतीत होने पर जब राजा विक्रमादित्य को साढे साती की दशा आई तो शनिदेव घोड़ो के सौदागर बनकर अनेक घोड़ो के सहित

क्रमश:

राजा विक्रमादित्य की राजधानी मे आए। जब राजा ने घोड़ो के सौदागर के आने की खबर सुनी तो अपने अश्वपाल को अच्छे-अच्छे घोड़े खरीदने की आज्ञा दी। अश्वपाल ऐसी अच्छी नस्ल के घोड़े देखकर और एक अच्छा सा घोड़ा चुनकर सवारी के लिए उस पर चढे ।

राजा के पीठ पर चढते ही घोड़ा तेजी से भागा। घोड़ा बहुत दूर एक घने जंगल मे जाकर राजा को छोड़कर अन्तर्ध्यान हो गया। इसके बाद राजा विक्रमादित्य अकेला जंगल मे भटकता फिरता रहा। भूख-प्यास से दु:खी राजा ने भटकते-भटकते एक ग्वाले को देखा। ग्वाले ने राजा को प्यास से व्याकुल देखकर पानी पिलाया। राजा की अंगुली मे एक अंगूठी थी। वह अंगूठी उसने निकाल कर प्रसन्नता के साथ ग्वाले को दे दी और स्वयं शहर की ओर चल दिया। राजा शहर मे पहुँचकर एक सेठ की दुकान पर जाकर बैठ गया और अपने आपको उज्जैन का रहने वाला तथा अपना नाम वीका बतलाया। सेठ ने उसको एक कुलीन मनुष्य समझकर जल आदि पिलाया। भाग्यवश उस दिन सेठ की दुकान पर बहुत अधिक बिक्री हुई तब सेठ उसको भाग्यवान् पुरुष समझकर भोजन के लिएअपने साथ घर ले गया। भोजन करते समय राजा विक्रमादित्य ने एक आश्चर्यजनक घटना देखी, जिस खूंटी पर हार लटक रहा था वह खूंटी उस हार को निगल रही थी।

भोजन के पश्चात् जब सेठ कमरे मे आया तो उसे कमरे मे हार नही मिला। उसने यही निश्चय किया कि सिवाय वीका के कोई और इस कमरे मे नही आया, अत: अवश्य ही उसी ने हार चोरी किया है। परन्तु वीका ने हार लेने से इन्कार कर दिया। इस पर पाँच सात आदमी उसको पकड़कर नगर कोतवाल के पास ले गए। फौजदार ने उसको राजा के सामने उपस्थित कर दिया और कहा कि यह आदमी भला प्रतीत होता है, चोर मालूम नही होता, परन्तु सेठ का कहना है कि इस के सिवाय और कोई घर मे आया ही नही, इसलिए अवश्य ही चोरी इस ने की है। राजा ने आज्ञा दी की इस के हाथ पैर काटकर चौरंगिया किया जाए। तुरन्त राजा की आज्ञा का पालन किया गया और वीका के हाथ पैर काट दिये गए।

क्रमश:

कुछ काल व्यतीत होने पर एक तेली उसको अपने घर ले गया और उसको कोल्हू पर बिठा धिया। वीका उस पर बैठा हुआ अपनी जबान से बैल हांकता रहा। इस काल मे राजा की शनि की दशा समाप्त हो गई। वर्षा ऋतु के समय के वह मल्हार राग गाने लगा। यह राग सुनकर उस शहर के राजा की कन्या मनभावनी उस राग पर मोहित हो गई राजकन्या ने राग गाने वाले की खबर लाने के लिए अपनी दासी को भेजा। दासी सारे शहर मे घूमती रही। जब वह तेली के घर के निकट से निकली तब क्या देखती है कि तेली के घर मे चौरंगिया राग गा रहा। दासी ने लौटकर राजकुमारी को सब वृतांत सुना दिया। बस उसी क्षण राजकुमारी मनभावनी ने अपने मन मे यह प्रण लिया चाहे कुछ भी हो मैने चौरंगिया के साथ ही विवाह करना है।

प्रात: काल होते ही जब दासी ने राजकुमारी मनभावनी को जगाना चाहा तो राजकुमारी अनशन व्रत लेकर पड़ी रही। दासी ने रानी के पास जाकर राजकुमारी के न उठने का वृतांत कहा। रानी ने वहाँ आकर राजकुमारी को जघाया और उसके दु:ख का कारण पूछा। राजकुमारी ने कहा कि माताजी मैने यह प्रण कर लिया है कि तेली के घर मे जो चौरंगिया है मै उसी के साथ विवाह करूँगी। माता ने कहा- पगली, तू यह क्या कह रही है? तुझे किसी देश के राजा के साथ परिणाया जाएगा। कन्या कहने लगी कि माताजीमै अपना प्रण कभी नही तोडंगी। माता ने चिन्तित होकर यह बात महाराज को बताई। महाराज ने भी आकर उसे समझाया कि मै अभी देश-देशान्तर मे अपने दूत भेजकर सुयोग्य, रूपवान एवं बड़े-से-बड़े गुणी राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह करूँगा। ऐसी बात तुम्हे कभी नही विचारनी चाहिए। परन्तु राजकुमारी ने कहा- "पिताजी मै अपने प्राण त्याग दूंगी परन्तु किसी दूसरे से विवाह नही करूँगी।" यह सुनकर राजा ने क्रोध से कहा यदि तेरे भाग्य मे ऐसा ही लिखा है तो जैसी तेरी इच्छा हो वैसा ही कर। राजा ने तेली को बुलाकर कहा कि तेरे घर मे जो चौरंगिया है उसके साथ साथ मै अपनी कन्या का विवाह करना चाहता हूँ। तेली ने कहा महाराज यह कैसे हो सकता है? राजा ने कहा कि भाग्य के लिखे को कोई नही टाल सकता। अपने घर जाकर विवाह की तैयारी करो।

क्रमश:

राजा ने सारी तैयारी कर तोरण और बन्दनवार लगवाकर राजकुमारी का विवाह चौरंगिया के साथ कर दिया। रात्रि को जब विक्रमादित्य और राजकुमारी महल मे सोये तप आधी रात के समय शनिदेव ने विक्रमादित्य को स्वप्न दिया और कहा की राजा मुझको छोटा बतलाकर तुमने कितना दु:ख उठाया? राजा ने शनिदेव से क्षमा माँगी । शनिदेव ने राजा को क्षमा कर दिया और प्रसन्न होकर विक्रमादित्य को हाथ-पैर दिये। तब राजा विक्रमादित्य ने शनिदेव से प्रार्थना की - "महाराज मेरी प्रार्थना स्वीकार करें, जैसा दु:ख आपने मुझे दिया है ऐसा और किसी को न दें।" शनिदेव ने कहा - तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार है, जो मनुष्य मेरी कथा सुनेगा या कहेगा उसको मेरी दशा मे कभी भी दु:ख नही होगा जो नित्य मेरा ध्यान करेगा या चीटियो को आटा डालेगा उसके सब मनोरथ पूर्ण होगे । इतना कह कर शनिदेव अपने धाम को चले गए।

जब राजकुमारी मनभावनी की आँख खुली और उसने चौरंगिया को हाथ-पाँव साथ देखा तो आश्चर्यचकित हो गई उसको देखकर राजा विक्रमादित्य ने अपना समस्त हाल कहा कि मै उज्जैन का राजा विक्रमादित्य हूँ। यह घटना सुनकर राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न हुई । प्रात: काल राजकुमारी से उसकी सखियों ने पिछली रात का हाल - चाल पूछा तो उसने अपने पति का समस्त वृतांत कह सुनाया। तब सबने प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि ईवर ने आपकी मनोकामना पूर्ण कर दी । जब उस सेठ ने यह घटना सुनी तो वह राजा विक्रमादित्य के पास आया और उनके पैरो पर गिरकर क्षमा मांगने लगा कि आप पर मैने चोरी का झूठा दोष लगाया । आप जो चाहे मुझे दण्ड दे । राजा ने कहा - मुझ पर शनिदेव का कोप था इसी कारण यह सब दु:ख मुझको प्राप्त हुए, इसमे तुम्हारा कोई दोष नही है । तुम अपने घर जाकर अपना कार्य करो, तुम्हारा कोई अपराध नही । सेठ बोला- "महाराज मुझे तभी शान्ति मिलेगी जब आप मेरे घर चलकर प्रीतिपूर्वक भोजन करेंगे"। राजा ने कहा जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही करें।

क्रमश:

सेठ ने अपने घर जाकर अनेक प्रकार के सुन्दर व्यंजन बनवाए और राजा विक्रमादित्य को प्रीतिभोज दिया। जिस समय राजा भोजन कर रहे थे एक आश्चर्यजनक घटना घटती सबको दिखाई दी। जो खूंटी पहले हार निगल गई थी, वह अब हार उगल रही थी । जब भोजन समाप्त हो गया तो सेठ ने हाथ जोड़कर बहुत सी मोहरें राजा को भेंट की और कहा- "मेरी श्रीकंवरी नामक एक कन्या है उसका आप पाणिग्रहण करें। राजा विक्रमादित्य ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब सेठ ने अपनी कन्या का विवाह राजा के साथ कर दिया और बहुत सा दान-दहेज आदि दिया। कुछ दिन तक उस राज्य मे निवास करने के पचात् राजा विक्रमादित्य ने अपने श्वसुर राजा से कहा कि अब मेरी उज्जैन जाने की इच्छा है।

कुछ दिन बाद विदा लकिर राजकुमारी मनभावनी, सेठ की कन्या तथा दोनो जगह से मिला दहेज मे प्राप्त अनेक दास-दासी, रथ और पालकियो सहित राजा विक्रमादित्य उज्जैन की तरफ चले। जब वे शहर के निकट पहुंचे और पुरवासियो ने राजा के आने का सम्वाद सुना तो उज्जैन की समस्त प्रजा अगवानी के लिए आई। प्रसन्नता से राजा अपने महल मे पधारे। सारे नगर मे भारी उत्सव मनाया गया और रात्रि को दीपमाला की गई। दूसरे दिन राजा ने अपने पूरे राज्य मे यह घोषणा करवाई कि शनि देवता सब ग्रहो मे सर्वोपरि है । मैने इनको छोटा बतलाया इसी से मुझको यह दु:ख प्राप्त हुआ।

इस प्रकार सारे राज्य मे सदा शनिदेव की पूजा और कथा होने लगी। राजा और प्रजा अनेक प्रकार के सुख भोगती रही। जो कोई शनिदेव की इस कथा को पढ़ता या सुनता है, शनिदेव की कृपा से उसके सब दु:ख दूर हो जाते है। व्रत के दिन शनिदेव की कथा को आवश्य पढना चाहिए।

।। समात ।।

पूजा विधि

सर्व मनोकानाओ की पूर्ति हेतु रविवार का व्रत श्रेष्ठ है / इस व्रत की विधि इस प्रकार है / प्रातः काल स्नान आदि से निवृत हो स्वच्छ वस्त्र धारण करे / शान्तचित्त होकर परमात्मा का स्मारण करे / भोजन तथा फलाहार सूर्य के प्रकाश रहते ही कर लेना उचित है । यदि निराहार रहने पर सूर्य छिप जाए तो दूसरे दिन सूर्य उदय होने पर अर्ध्य देने के बाद ही भोजन करे । व्रत के दिन नमकीन तेलयुक्त भोजन कदापि ना करे ।इस व्रत को करने से मान-सम्मान बढ़ता है तथा शत्रुओ का क्षय होता है आँख की पीड़ा के अतिरिक्त अन्य सब पीड़ाये दूर होती है /

कथा प्रारंम्भ

एक बुढिया थी । उसका नियम था प्रति रविवार को सबेरे स्वेरे ही स्नान आदि कर घर को गौ के गोबर से लीपकर फिर भोजन तैयार कर भगवान को भोग लगा कर स्वयं भोजन करती थी । ऐसा व्रत करने से उसका घर अनेक प्रकार के धन धान्य से पूर्ण था । श्री हरि की कृपा से घर मे किसी प्रकार का विघ्न या दु:ख नही था । सब प्रकार से घर मे आनन्द रहता था । इस तरह कुछ दिन बीत जाने पर उसकी एक पड़ोसन जिसकी गौ का गोबर वह बुढ़िया लाया करती थी । विचार करने लगी कि यह वृद्धा सर्वदा मेरी गौ का गोबर ले जाती है । इसलिए अपनी गौ को घर के भीतर बांधने लगी । बुढ़िया को गोबर ना मिलने से रविवार के दिन अपने घर को न लीप सकी । इसलिए उसने न तो भोजन बनाया न भगवान को भोग लगाया तथा स्वयं भी भोजन नही किया । इस प्रकार उसने निराहार व्रत किया । रात्रि हो गई और वह भूखी सो गई । रात्रि मे भगवान ने उसे स्वप्न दिया और भोजन न बनाने तथा लगाने का कारण पूछा । वृद्धा ने गोबर न मिलने का कारण सुनाया तब भगवान ने कहा कि माता हम तुमको ऐसी गौ देते है जिससे सभी इच्छाएं पूर्ण होती है क्योंकि तुम हमेशा रविवार को गौ के गोबर से घर को लीपकर भोजन बनाकर मेरा भोग लगाकर खुद भोजन करती हो । इससे मै खुश होकर तुमको वरदान देता हूँ । निर्धन को धन और बाँझ स्त्रियो को पुत्र देकर दु:खो को दूर करता हूँ तथा अन्त समय मे मोक्ष देता हूँ ।

स्वप्न मे ऐसा वरदान देकर भगवान तो अन्तर्धान हो गए और वृद्धा की आँख खुली तो वह देखती है कि आंगन मे एक अति सुन्दर गौ और बछड़ा बंधे हुए है । वह गाय और बछड़े को देखकर अतीव प्रसन्न हुई और उसको घर के बाहर बाँध दिया और वही खाने को चारा डाल दिया । जब उसकी पड़ोसन ने बुढ़िया के घर के बाहर एक अति सुन्दर गौ और बछड़ा देखा तो द्वेष के कारण उसका हृदय जल उठा और उसने देखा कि गाय ने सोने का गोबर किया है तो वह उस गाय का गोबर ले गई और अपनी गाय का गोबर उसकी जगह पर रख गई । वह नित्यप्रति ऐसा ही करती रही और सीधी - साधी बुढ़िया को इसकी खबर नही होने दी तब सर्वव्यापी ईश्वर ने सोचा कि चलाक पड़ोसन के कर्म से बुढ़िया ठगी जा रही है तो ईश्वर ने संध्या के समय अपनी माया से बहुत जोर की आँधी चला दी । बुढ़िया ने अन्धेरी के भय से अपनी गौ को अन्दर बाँध लिया । प्रातः काल जब बुढ़िया ने देखा कि गौ ने सोने का गोबर दिया है तो उसके आश्चर्य की सीमा नही रही और वह प्रतिदिन गऊ को घर के भीतर बांधने लगी । उधर पड़ोसन ने देखा की बुढ़िया गऊ को घर के भीतर बांधने लगी है और उसका सोने का गोबर उठाने का दाँव नही चलता तो वह ईर्ष्या और डाह से जल उठी और कुछ उपाय न देख पड़ोसन ने उस देश के राजा की सभा मे जाकर कहा महाराज मेरे पड़ोस मे एक वृद्धा के पास ऐसी गऊ है जो आप जैसे राजाओं के ही योग्य है, वह नित्य सोने का गोबर देती है। आप उस सोने से प्रजा का पालन करिए।

वह वृद्धा इतने सोने का क्या करेगी । राजा ने यह बात सुन अपने दूतों को वृद्धा के घर से गऊ लाने की आज्ञा दी । वृद्धा प्रात: ईश्वर का भोग लगा भोजन ग्रहण करने ही जा रही थी कि राजा के कर्मचारी गऊ खोल कर ले गए । वृद्धा काफी रोई - चिल्लाई किन्तु कर्मचारियों के समक्ष कोई क्या कहता । उस दिन वृद्धा गऊ के वियोग मे भोजन न खा सकी और रात भर रो-रो ईश्वर से गऊ को पुन: पाने के लिए प्रार्थना करती रही । उधर राजा गऊ को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ लेकिन सुबह जैसे ही वह उठा सारा महल गोबर से भरा दिखाई देने लगा । राजा यह देख घबरा गया । भगवान ने रात्रि मे राजा को स्वप्न मे कहा कि हे राजा ! गाय को वृद्धा को लौटाने मे ही तेरा भला है उसके रविवार के व्रत से प्रसन्न होकर मैंने उसे गाय दी थी । प्रात: होने पर राजा ने वृद्धा को बुलाकर बहुत से धन के साथ सम्मान के सहित गऊ और बछड़ा लौटा दिया। उसकी पड़ोसिन को बुलाकर उचित दण्ड दिया । इतना करने के बाद राजा के महल से गन्दगी दूर हुई ।उसी दिन से राजा ने नगरवासियो को आदेश दिया कि राज्य की तथा अपनी समस्त मनोकामनाओ की पूर्ति के लिए रविवार का व्रत करो । व्रत करने से नगर के लोग सुखी जीवन व्यतीत करने लगे । कोई भी बीमारी तथा प्रकृति का प्रकोप उस नगर पर नही होता था । सारी प्रजा सुख से रहने लगी ।

।। समाप्त ।।